महारानी लक्ष्मीबाई

का

जीवन-चरित

लेखक

ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा

(प्रथम संस्करण)

यूनियन प्रेस, प्रयाग

१९०९

[मूल्य २)

पंडित रघुनाथ सहाय पाठक के प्रबन्ध से यूनियन प्रेस प्रयाग में केवल टाइटेल पेज
और भूमिका छापी गई और बाक़ी कुल पुस्तक देश सेवक प्रेस नागपूर से
छप कर ग्रन्थकर्ता द्वारा प्रकाशित

समर्पण

इस पुस्तक को

स्वदेशाभिमानी, स्वदेश-इतिहासप्रेमी,

एवं

स्वदेश बांधवों का सेवा में

प्रेम पूर्वक

समर्पण करता हूं।

सूर्यकुमार वर्मा

अनुक्रमणिका

परिचय

आज तक जितनी ऐतिहासिक भारतीय वीर रानियां अपने अपने वीर, साहसी कर्मों से सारे संसार को आश्चर्य्यान्वित करके अपनी अक्षय कीर्त्ति स्थापित कर गई हैं, उन सब की अग्रगण्य, मुकट मणि, अन्तिम भारतीय वीर रानी झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई थीं; ऐसा कहने में कुछ हर्ज नहीं है। सन् १८५७ के भारतीय सिपाही-विद्रोह के समय से इस वीर रानी का नाम भारतवर्ष में, व्यापक हो रहा है। इस वीर रानी के अतुल पराक्रम और साहस की प्रशंसा, नर, नारी, बालक, युवा और जरठ सब ही बड़े प्रेम और अभिमान के साथ सदा किया करते हैं। रानी लक्ष्मीबाई की वीरता का समाचार सुनकर ऐसा कौन हतभागी मनुष्य होगा जो एक बार भारत की प्राचीन वीरता का स्मरण कर विचार सागर में निमग्न न हो जाता हो। क्या ऐसी गुण-विशिष्ट, स्वाधीनता प्रिय, वीर रमणी का चरित भारतीय इतिहास में स्थान पाने योग्य नहीं है? परन्तु शोक! हमारे दुर्भाग्य के कारण भारतवासी निज जन्म भूमि के इतिहास से ऐसे पराङ् मुख और अभिमानशून्य हो गए हैं कि इस वीर रानी का सम्पूर्ण जीवन चरित दुष्प्राप्य है।

परन्तु आज कल देश में विद्या प्रचार की उन्नति के कारण देश वासियों के हृदय में, स्वदेशी इतिहास, भारतीय वीर पुरुषों और वीर स्त्रियों के जीवन चरित पढ़ने और उनके प्राप्त करने की भी रुचि दिनों दिन बढ़ रही है। यह देश हित के लिए शुभ लक्षण है। परन्तु ऐसे समय में भी लक्ष्मी बाई के चरित का जितना प्रकाश पड़ना चाहिए उतना क्यों नहीं पड़ता? इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि सत्य एवं विश्वासनीय घटनाओं की दुष्प्राप्यता और दूसरे सब से बड़ा और प्रधान

कारण यह कि, महारानी लक्ष्मीबाई का सम्बन्ध सिपाही-विद्रोह से था। वे बाग़ियों की अगुआओं में से एक प्रधान और प्रबल अगुआ समझी जाती हैं। सिपाही-विद्रोह के कलङ्क का टीका उनके माथे पर लग जाने के कारण, उनका जीवन-चरित लिखना मानो अपनी दया-मय ब्रिटिश सरकार के राम राज्य के विरुद्ध लेखनी चलाकर अपने सर पर भी एक कलंक का टीका लगाकर महा पातक करना है। इस प्रधान कारण का विचार करके व्यर्थ राज-भक्ति व्यक्त करने वाले लेखक गण मौन व्रत साधन किए हुए बैठे हैं। परन्तु जिन महारानी लक्ष्मी-बाई ने बड़े बड़े भीषण युद्धों में अति शूर वीर, पराक्रमी और रण कुशल अंगरेज़ी योद्धाओं से युद्ध करके उनको परास्त किया। उनकी उस वीरता, अतुल पराक्रम और साहस को बिना इतिहास में स्थान दिए क्या हम लोग सदा उनको स्मरण रख सकेंगे? यह बात असम्भव सी जान पड़ती है। जब तक सिपाही-विद्रोह के वृद्ध पुरुष और महा-रानी के सेवक जन विद्यमान हैं तब तक उनके मुख से उस वीर रानी के चरित को आख्यायिका रूप में भले ही सुन लो; परन्तु जब कठिन काल का कराल चक्र उनको भी अपने तले दबा लेगा तब यह स्पष्ट ही है कि यह बात हम को दुष्प्राप्य हो जायगी। तात्पर्य यह है कि जब तक किसी महान विषय को इतिहास में स्थान नहीं दिया जाता तब तक उसका चिर स्मरणीय रहने का विचार करना सर्वथा निर्मूल है। जिस समय तक उन दन्तकथाओं को कहने वाले मनुष्य जीवित हैं तब तक तो हम लोग उनका अपूर्व यश गान सुनकर थोड़े समय के लिए आकाश मंडल में, इन्द्र धनुष की क्षणिक कालीन शोभा के समान अपने मन में आमोद प्रमोद कर लें परन्तु वह शोभा अधिक समय तक न ठहर कर थोड़ी देर में ही कराल कालके विषम गाल में पड़ कर शीघ्र ही नष्ट हो जायगी। इस कारण महान पुरुषों और स्त्रियों के जीवन चरितों को तद्देशीय इतिहास में लिखा जाना बहुत ही आवश्यकीय है; नहीं तो उनके वह अपूर्व, असाधारण कार्य योंही व्यर्थ चले जावेंगे। मानों उन्होंने इस संसार में आकर अपने देश, अपनी समाज और अपनी

जाति के लिए कुछ किया ही नहीं। और न भविष्यत में उनकी सन्तान पर उनके अलौकिक कार्यों का प्रकाश पड़ सकता है और न उनकी सन्तान अपने पूर्वजों के अनुकरणीय कर्मों का अनुकरण करके सारे संसार को चकित और स्तम्भित कर सकती हैं। फिर बताओ, भला, उनके जन्म लेने से ही लाभ क्या ? अङ्गरेज़ी के विख्यात कवि पोप ने अपनी अपूर्व कविता Temple of Fame अर्थात 'कीर्ति मठ' में इतिहास लेखकों को एक प्रधान स्थान दिया है। कवि कहता है:—

"Full in the passage of each spacious gate,
The sage historians in white garments wait,
Graved over the seats the form of Time was found,
His scythe removed and both his pinions bound." *

इससे यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक देश के महान, अमूल्य मानव रत्न समूह उस देश के इतिहास में स्थान पाए बिना, प्रलय काल पर्यन्त अपनी अप्रतिम दिव्य प्रभा से, संसार को प्रदीप्त करते रहेंगे; यह असम्भव है। सारांश यह कि प्रत्येक देश में तद्देशीय महान स्त्री पुरुषों की कीर्ति ज्योति को चिर प्रदीप्त बनाए रखने का मूल आधार—अक्षय-दीपक—इतिहास ही है। सैकड़ों वर्ष से हमारे देश वासी निज देशीय इतिहास के मर्म को भूल जाने के कारण इस ओर उनका विशेष ध्यान नहीं था। भारतवर्ष के हर एक प्रान्त में ऐसे मनुष्य सैकड़ों हज़ारों हो गए हैं जो शत्रु सेना को घास मूली की तरह क्षण भर में काट कर फेंक देते थे। कितनों ने ही हिन्दू राज्य का झंडा अटक पार तक लहरा दिया। कितनो ने राज काज कुशलतादि अनेक गुणों से अंगरेज़, पुर्तगीज़, फ्रेंच आदि विदेशीय लोगों की दाल नहीं गलने दी। कितनो ने तो स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के लिए भीषण खड्ग की तीक्ष्ण धार की कुछ भी परवाह न करके निज असाधारण बुद्धिबल से संसार को चकित करके अपना जीवन सफल किया। जहां पर लोग ऐसे ऐसे वीर

* हमारे देश के कवियों का भी यही विचार है बिल्हण ने कहा है:—
लंकापतेः संकुचितं यशो यत् यत्कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्रः।
स सर्व एवाद्य कवेः प्रभावो न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः ॥ १ ॥

विद्वानों की चरितावली लिखने का साहस नहीं करते वहां पर सिपाही-विद्रोह से सम्बन्ध रखने वाली और भारत के प्रभु अङ्गरेजों को अपने बाहु बल से उनके गर्व को खर्व करने वाली एक बिचारी अबला के चरित्र को कौन पूछता है ? परन्तु यदि पूर्ण विचार दृष्टि से देखा जावे तो कोई भी विचारवान पुरुष ऐसा न मिलेगा जो यह न कहे कि सन् १८५७ का सिपाही-विद्रोह एक महान राज नैतिक घटना होने के कारण उसका वृत्तान्त पूर्ण रूप से विचार करने और निष्पक्षपात दृष्टि से आलोचना करने योग्य है। परन्तु उपरोक्त लिखित दो प्रधान कारणों से उस सिपाही-विद्रोह का वृत्तान्त अथवा उससे सम्बन्ध रखने वाले प्रसिद्ध स्त्री पुरुषों का जीवन चरित्र लिखने के लिए किसी ने अपना ध्यान उस ओर आकर्षित नहीं किया। के, म्यलसन आदि अनेक अङ्गरेज़ इतिहासज्ञ विद्वान लोगों ने, सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह के विषय में, अनेक बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे हैं। और बहुत से विद्वान इतिहासज्ञ रसिक अङ्गरेज़ लोग अब भी इस विषय पर अनेक ग्रन्थ लिखते जाते हैं। उस समय के प्रख्यात प्रख्यात कर्नलों से लेकर बड़े लाट गवर्नर जनरल तक का जीवन वृत्तान्त मिलता है। उन्हीं अङ्गरेज़ ग्रन्थकारों की पुस्तकों में कहीं कहीं मौक़े मौक़े पर एतद्देशीय सुप्रसिद्ध पुरुषों का कुछ कुछ वृत्तान्त मिलता है। उन लोगों ने उस समय के वीर मनुष्यों की स्तुति और उनके गुणों की प्रशंसा करने में कभी आगा पीछा नहीं किया। परन्तु हमें उनकी स्तुति, निन्दा अथवा प्रशंसा से कुछ प्रयोजन नहीं; क्योंकि अपने गुणों को व्यक्त करना यह उनका काम है। हमारा कार्य तो यह है कि हम अपने पूर्वजों की मान मर्यादा की रक्षा करने का उपाय सोचें। क्योंकि बिना उनकी मान रक्षा किए कभी हम संसार में किसी बड़े और कठिन कार्य करने के योग्य नहीं हो सकते। भारतीय दंड-संग्रह के प्रणेता मेकाले का कथन है कि :— "A people which takes no pride in the noble achievements of their ancestors will never achieve any thing worthy to be remembered with pride by their descendants." अर्थात् जो मनुष्य अपने पूर्वजों के उत्तम कर्मों की सराहना नहीं करता है वह कदापि

अपनी सन्तान के लिए कोई अभिमान जनक, स्मरणीय कार्य नहीं कर पावेगा। इन मार्मिक वचनों को स्मरण कर यह हमारी शोचनीय स्थिति बहुत दिनों तक न रह कर, विद्या प्रचार के प्रभाव से दिन बदिन कम होती जावेगी और शीघ्र ही हम लोगों को स्वदेशी इतिहास में रुचि, प्रीति और उसके प्रति अभिमान पैदा हो जावेगा। यह बात वर्तमान समय की दशा की ओर विचार करके कहना कुछ अत्युक्ति न होगा।

आज तक सन् १८५७ की झांसी की वीर रानी, महारानी लक्ष्मीबाई का वृहत् जीवन-चरित्र न लिखा जाने के कारण दिनों दिन उनके चरित्र पढ़ने की इच्छा और उत्कंठा लोगों की और भी बढ़ती गई। महारानी को मरे अभी बहुत समय नहीं हुआ। उनकी कीर्ति का गान करने वाले अभी बहुत लोग जीवित हैं। उनके मुख से महारानी की अप्रतिम वीरता और अपूर्व साहस की कहानियां सुनकर लोगों को उनके संपूर्ण वृहत् जीवन-चरित्र पढ़ने की लालसा बढ़ती ही जा रही है। जिन महारानी की तुलना फ्रांस की प्रसिद्ध सेना नायका "जोन आफ़ आर्क" से की जाती है उनका चरित्र जानने की भला किसे न इच्छा होगी? सिपाही-विद्रोह का इतिहास लिखने वाले प्रसिद्ध इतिहास लेखक म्यलसन साहब ने भी रानी के सम्बन्ध में लिखा है:-"अङ्गरेज़ी-सरकार की दृष्टि से रानी का दोष कुछ ही हो परन्तु उस शूर वीर स्त्री के सम्बन्ध में उसके स्वदेश बान्धव लोग यही समझेंगे कि उनके साथ बुरा बर्ताव होने के कारण से ही वे बाग़ियों में शामिल हुईं। उनका पक्ष ठीक था। बुन्देलखण्ड और मध्य भारत में भी असंतोष फैलने के कारणों में से मुख्य कारण लार्ड डलहौसी का उनके साथ बुरा बर्ताव था। उनको वह स्त्री सदैव वीर नारी प्रतीत होगी *"। शत्रु भी जिसकी प्रशंसा करें क्या

* Whatever her faults in British eyes may have been, her countrymen will ever believe that she was driven by ill treatment into rebellion, that her cause was a righteous cause: And that the treatment she received at the hands of Lord Dalhousie was one of the main causes of the disaffection in Bundelkhand and Central India in 1857-8. *To them she will lways be a heroine.*

—*Malleson's History of the Indian Mutiny.*

उसका चरित जानने और पढ़ने को उस जाति और देश के लोग कभी अवहेलना कर सकते हैं ? क्या ऐसा करना कृतघ्नता नहीं है ? इन्हीं सब बातों का विचार करके और भय को त्यागकर महाराष्ट्र देश के प्रसिद्ध इतिहास लेखक श्रीयुत दत्तात्रय बलवंत पारसनीस ने महारानी का वृहत् चरित लिखने का संकल्प किया। आप ने चरित लिखने के लिए सामिग्री इकट्ठा करना आरम्भ की। कई वर्ष के कठिन परिश्रम और खोज के बाद आप ने बहुत ही सुन्दर, महारानी का जीवन-चरित मराठी भाषा में लिखा। इस चरित के प्रकाशित होते ही चारों ओर पारसनीस महोदय की विद्या, बुद्धि और खोज की प्रशंसा होने लगी। महारानी लक्ष्मी बाई के चरित के सम्बन्ध में जहां जहां पर लोगों को भ्रम था उन्हीं उन्हीं स्थलों को आप ने खूब ही विस्तार पूर्वक प्रमाणों के साथ लिख कर लोगों के भ्रम को निर्मूल करने का प्रयत्न किया है। जो लोग उनके जीवन को दूषित और कलङ्कित करते थे उनका मुंह तोड़ उत्तर देकर उनके जीवन को निर्दोष और निष्कलङ्क सिद्ध किया है। अङ्गरेज़ ग्रन्थकारों के मतों की भी आप ने खूब ही अच्छी तरह विवेचना की है। सारांश यह कि अब तक इतना वृहत्, खोज पूर्ण, सप्रमाण महारानी लक्ष्मीबाई का जीवन-चरित किसी ने किसी भाषा में नहीं लिखा। जिन प्रमाणों को तलाश करके आप ने अपनी पुस्तकों में दिए हैं उनकी खोज करना तो दूर की बात है उस ओर लोगों का विचार ही बहुत कम पहुंचता था। महारानी लक्ष्मीबाई महाराष्ट्र रमणी अवश्य हैं, परन्तु उनका सम्बन्ध हमारे प्रान्त से अधिक घनिष्ट है। काशी में उनका जन्म हुआ, ब्रह्मावर्त में उनका पालन पोषण हुआ और हमारे प्रान्त झांसी में उन्होंने राजसी सुख और पश्चात् अनेक दुःख उठाकर वीर अङ्गरेज़ों को अपने अतुल पराक्रम और कुशाग्र बुद्धि से चकित किया। उन्हीं के चरित से हमारे प्रान्त बासी अनभिज्ञ। यही सब बातें सोचकर हमे महारानी लक्ष्मीबाई का वृहत् चरित लिखने की उत्कंठा हुई। परन्तु उसे लिखने का हमारे पास कोई साधन न था। पारसनीस की जिस मराठी पुस्तक का उल्लेख ऊपर

किया गया है उसी पुस्तक को एक दिन हमारे मित्र पंडित गणपति जानकी राम दुबे बी० ए० ने हमें पढ़ने को दी। पुस्तक को पढ़ते ही हमारे ध्यान में यह बात आई कि यदि इसका हिन्दी अनुवाद किया जाय तो अवश्य हमारा अभीष्ट कार्य सिद्ध हो सकता है। उसी मराठी पुस्तक का आधार लेकर हमने इस पुस्तक को लिखा है। पहले यह पुस्तक धीरे धीरे नागपूर से निकलने वाली "हिन्दी-ग्रन्थमाला" में "देश सेवक प्रेस" नागपूर से छपती रही। परन्तु "ग्रन्थमाला" के बन्द हो जाने से भूमिका और टायटेल पेज यूनियन प्रेस, प्रयाग में छपाना पड़ा। यूनियन प्रेस के स्वामी के हम बहुत कृतज्ञ हैं कि उन्होंने भूमिका और टाइटल छापकर पुस्तक को तय्यार कर दिया। यदि वे सहायता न करते तो पुस्तक अब तक छप कर प्रकाशित न हो सकती। पुस्तक लिखते समय हमें अपने प्रिय मित्र श्रीयुत पंडित कृष्ण नारायण लघाटे बी० ए० एल० एल० बी० से बहुत कुछ उत्तेजना और सहायता मिली है। अतएव हम इस उपकार के लिए उनके भी कृतज्ञ हैं। समय पर प्रूफ न मिलने के कारण, पुस्तक के बहुत से भाग का प्रूफ हम स्वयं नहीं देख सके; इसी कारण छपने में कुछ अशुद्धियां रह गई हैं; आशा है पाठक गण इस त्रुटि को क्षमा करेंगे।

हमारी इस अल्प सेवा को हिन्दी भाषा भाषी जन हंसक्षीर न्याय के समान स्वीकार करेंगे यही उस जगन्नियन्ता परमात्मा से प्रार्थना है।

लश्कर, ग्वालियर;
कार्तिकी पूर्णिमा, सम्वत् १९६५ बिक्रमी

सूर्यकुमार वर्मा।

झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई

का

जीवन-चरित।

पहिला अध्याय

कुलवृत्तान्त, जन्म, बाल्यावस्था, विवाह और झांसी का वर्णन।

महाराष्ट्र देश में सतारा के समीप कृष्णा नदी के किनारे वाई नाम का एक ग्राम है। उस ग्राम में कृष्णराव तांबे नाम के एक सद्गुण-सम्पन्न महाराष्ट्र ब्राह्मण रहते थे। वे पेशवाई के समय में एक उच्च पदाधिकारी थे। उनके बलवन्तराव नाम का एक शूर और पराक्रमी पुत्र था। उसने भी पूना के पेशवा की कृपा से फौज में एक उत्तम पद पाया। उसके मोरोपन्त और सदाशिव-राव नाम के दो पुत्र हुए। मोरोपन्त पर चिमाजी आपा साहिब की, जो द्वितीय बाजीराव पेशवा के सहोदर थे, बड़ी कृपा थी। जिस समय महा-राष्ट्र के अंतिम पेशवा बाजीराव ने, सन् १८१८ ईसवी में, आठ लाख की पेन्शन लेकर ब्रह्मावर्त्त में रहना स्वीकार किया, उस समय अंगरेज सरकार

ने चिमाजी आपा साहिब को पेशवाई की गद्दी पर बिठलाना चाहा; परंतु उन्होंने नाम मात्र की पेशवाई को स्वीकार न करके काशीजी में अपना रहना निश्चय किया। मोरोपन्त तांबे भी इनके कृपाभाजन होने के कारण इन्हींके साथ काशीजी गये और वहां उनका कुल काम काज करते रहे। श्रीमान् की ओर से उन्हें ५०) रुपये मासिक वेतन मिलता था।

मोरोपन्त की पत्नी का नाम भागीरथी बाई था। यह स्त्री बड़ी सुशील, चतुर, रूपवान और सर्वगुणसम्पन्न थी। पति और पत्नी में सदैव बड़ा प्रेम रहता था। संसार में प्रेम से बढ़ कर और कोई पवित्र वस्तु नहीं है; परंतु वह प्रेम सच्चा और शुद्ध हृदय से किया गया हो। यदि दो मनुष्य प्रेमबद्ध होकर किसी दुस्तर से दुस्तर कार्य को करना चाहें तो वह सरलता पूर्वक किया जा सकता है। किसी कवि ने ठीक कहा है कि 'अगर दो दिल मिल कर चाहें तो पहाड़ भी तोड़ सकते हैं'। फिर यदि पति और पत्नी में परस्पर सच्चा प्रेम हो तो यह बताने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती कि, संसार-यात्रा किस प्रकार उत्तम रीति से निर्वाह हो सकती है। ऐसा ही सच्चा प्रेम मोरोपन्त और उनकी पत्नी में था। इस पतिव्रता स्त्री का वर्णन करते करते हमें नीचे लिखी हुई पंक्तियों का स्मरण होता है:—"पत्यनुकूला चतुरा प्रियंवदा या सुरूपसंपूर्णा। सहजस्नेहरसाला कुलवनिता केन तुल्या स्यात्॥" ऐसे शुद्ध और पवित्र प्रेमबीज के फल भला क्योंकर मीठे और उत्तम न होंगे? कार्त्तिक बदी १४ सम्वत १८९१ (तारीख १९ नवम्बर सन् १८३५ ई.) को मोरोपन्त के घर में कन्या का जन्म हुआ। संतान की उत्पत्ति का जो आनन्द मनुष्य को होता है वह संसार में सब लोगों को विदित ही है; इसी प्राकृत रीत्यनुसार मोरोपन्त को भी आनन्द हुआ। उनके सब मित्र, स्नेही, बंधुओं ने भी इस आनन्द में उनको बधाई दी। सब लोगों ने मिल कर आशीर्वाद दिया कि 'ईश्वर आपकी इस सन्तान को चिरायु करे और भविष्यत में यह बड़े यश और पराक्रम को प्राप्त करै।' यद्यपि यह आशीर्वाद, केवल वर्तमान समय के विचारों पर दृष्टि देकर, साधारण रीति से दिया गया था, तथापि यही वाक्य समय पाकर सार्थक हुआ। काशीजी के विख्यात् ज्योतिषियों ने जातकादि का विचार कर यह भविष्य कथन किया था कि "यह बालिका

राजलक्ष्मी से अलंकृत होकर अत्यन्त शौर्यशालिनी स्त्री होगी"। उस समय उसके कोमल अंग और शान्त मुख को देखकर किसी को स्वप्न में भी यह अनुमान न था कि यह बालिका इस प्रकार शूर वीर होगी और अपने पराक्रमी कामों से जगत-विजयी अंगरेजों को भी चकित कर देगी!

माता पिता ने इस कन्या का नाम मनूबाई रक्खा; यही कन्या पतिगृह में जाकर लक्ष्मीबाई के नाम से प्रसिद्ध हुई। जिस समय चिमाजी आपासाहिब ने अपना शरीर त्याग किया उस समय मोरोपन्त के कुटुम्बपालनार्थ काशी में कोई सहारा न रहा; परन्तु चिमाजी के भाई, बाजीराव पेशवा ने, जो उस समय ब्रह्मावर्त में रहते थे, इन सब को अपने पास बुला लिया। बाजीराव की भी मोरोपन्त पर बड़ी कृपा होगई। वे अपना समय सुख-पूर्वक उन्हींके पास रहकर बिताने लगे। परन्तु दुर्दैव-वश उनकी पत्नी का देहान्त होगया था और हमारी चरित्र-नायिका, बालिका मनूबाई, तीन ही चार वर्ष की अवस्था में माताविहीन होगई थी। पत्नी के मरने पर मोरोपन्त को सारा गृहकार्य स्वयं अपने सिर पर लेना पड़ा। वे बालिका मनू का लालन पालन अपने आपही करने लगे। मनू भी दिनों दिन चन्द्रकलावत बढ़ने लगी। वह अपने पिता के साथ साथ सदा पुरुषमंडली में रहा करती थी। वह बाल्यावस्था से ही बड़ी रूपवती थी। उसके विशाल नेत्र और गौर वर्ण को देखकर, कौन ऐसा अभागा पुरुष होगा जिसको आनंद न होता होगा? बाजीराव पेशवा और उनके समीपवर्ती लोग उस बालिका का सौंदर्य देखकर उसको छबीली कहकर पुकारते थे। बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहिब और राव साहिब भी उस समय बालक ही थे; वे दोनों मनूबाई के साथ नाना प्रकार के खेल खेला करते थे। प्राचीन शिक्षा प्रणाली के अनुसार मनूबाई की शिक्षा का भी प्रबंध किया गया। वह अपनी स्वाभाविक चपलता के कारण जो कुछ नाना साहिब को करते देखती उसीके लिये हठ करती। जब कभी वे घोड़े पर सवार होकर वायुसेवन के लिये बाहर जाते थे तब वह भी उनके साथ घोड़े पर सवार होकर जाती थी। इस विषय में यह किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि, एक दिन नाना साहिब हाथी पर सवार होकर घूमने को निकले। मनूबाई ने भी हाथी पर सवार होने

की ज़िद की। बाजीराव साहिब ने, नाना साहिब से, लड़की को हाथी पर बिठा लेने का, संकेत किया; परंतु नाना साहिब ने देखी अनदेखी करके अपने पिता के संकेत पर कुछ भी ध्यान न दिया। इधर लड़की अपने हठ को परित्याग नहीं करती थी! उसका हठ देखकर मोरोपन्त को क्रोध आया। वे क्रोधित होकर बोले "क्या तेरे भाग्य में हाथी बदा है? क्यों निरर्थक हठ करती है?" लड़की ने चपलता पूर्वक शीघ्र उत्तर दिया कि "हां; मेरे भाग्य में एक छोड़ दस हाथी बदे हैं"। यह वाक्य, समय पाकर, यथार्थ में सत्य हुआ। कहने का तात्पर्य यह है कि, मनूबाई ने बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र के साथ साथ विद्याभ्यास, शारीरिक व्यायाम, युद्धकला आदि की उपयुक्त शिक्षा प्राप्त की। यही बालकपन की शिक्षा, उसकी भावी तेजस्विता और अलौकिक साहस की नीव है।

किसी अच्छी बात का अनुकरण करना मानो पारस पत्थर है। जिसको यह छू जाता है वह सोना हुए बिना नहीं रहता। बाल्यावस्था में कोमल चित्त पर जो भाव अंकित हो जाते हैं वही भविष्यत में मनुष्य की उन्नति अथवा अवनति का कारण होते हैं। यही हाल हमारी चरित्रनायिका का हुआ। क्षत्रियत्व का बीज इस बालिका के हृदय में मानो यहीं से बोया गया।

कालचक्र किसी के रोके नहीं रुकता। वह अपना कार्य संसार में किये ही जाता है। सांसारिक मनुष्य चाहे उससे शिक्षा लें अथवा न लें; उसका कार्य कभी बन्द होनेवाला नहीं। वह सदैव एकसा अपना कार्य करता रहता है। इसी प्रकार अब हमारी चरित्रनायिका बालिका मनू कोरी बालिका ही नहीं रही। प्रकृति ने जो नियम निर्धारित कर दिये हैं वे समय पर फलीभूत हुए बिना नहीं रहते। तात्पर्य यह है कि, बाल्यावस्था के बाद युवावस्था के चिन्ह मनूबाई में दर्शित होने लगे। तब मोरोपन्त को कन्या के विवाह की चिन्ता हुई। वे रात दिन इसी विचार में निमग्न रहते। ब्रह्मावर्त में उनकी जाति का कोई ब्राह्मण न था जिसके साथ वे अपनी लड़की के पाणिग्रहण की बातचीत करते। इस कारण वे अन्य स्थानों में लड़के की खोज करने लगे। दैवात् एक दिन तात्यादीक्षित नाम के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी

झांसी से, बाजीराव से मिलने के लिये, ब्रह्मावर्त आये। मोरोपन्त ने इस अवसर को अच्छा जान अपनी लड़की मनूबाई का जन्मपत्र ज्योतिषीजी को दिखलाकर कहा कि, यदि इसके योग्य कोई वर आपके ध्यान में झांसी या किसी अन्य स्थान में हो तो कृपा करके मेरे इस भार को हलका कीजिये। दीक्षित जी ने जन्मपत्र देखकर कहा कि 'भविष्यत् में यह लड़की किसी राजपद पर आरूढ़ होगी'। उस समय ज्योतिषीजी के वाक्य सुनकर कौन था जिसको आनंद न हुआ हो?

थोड़े ही दिनों के बाद, सन् १८४२ ई. में, झांसी के महाराजा श्रीमान् गंगाधरराव के साथ मनूबाई का विवाह बड़ी धूम धाम से हुआ। विवाह समय की एक अद्भुत घटना बताने योग्य है। जिस समय भांवरें पड़ रही थीं और वर-कन्या के दुपट्टों की गांठ बांधी जा रही थी, उस समय मनूबाई ने पुरोहितजी से कहा कि 'पुरोहितजी, जरा गांठ खूब मजबूत बांधना'। यह वाक्य सुनकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उस समय उस चातुर्यपूर्ण लड़की का इस वाक्य से यही अभिप्राय था कि मेरी और पति की प्रेमगांठ दृढ़ बनी रहे। पतिगृह में मनूबाई का नाम लक्ष्मीबाई रक्खा गया। विवाह के पश्चात गंगाधरराव ने लड़की के पक्षवालों को बहुत कुछ पुरस्कार दिया। मोरोपंत को भी ३००) रुपये मासिक देकर झांसी दरबार में एक सरदारी की जगह दी गई। मोरोपंत की प्रथम पत्नी का देहान्त हो गया था। उन्होंने अब तक अपना दूसरा विवाह नहीं किया था; परन्तु झांसी आने पर गुलसराय के वासुदेव शिवराव खानवलकर की कन्या के साथ उन्होंने अपना द्वितीय विवाह किया। मोरोपंत की इस पत्नी का नाम चिमनाबाई था।

यहां पर अब झांसी का भी थोड़ासा वर्णन करना आवश्यक जान पड़ता है। क्योंकि पठकों को कहीं यह भ्रम न हो जाय कि, महाराष्ट्र ब्राह्मणों का राज्य बुन्देलखंड प्रान्त में किस प्रकार हुआ; वे तो दक्षिण के महाराष्ट्र-देश निवासी हैं। इस लिये उनके यहां आने का कारण और राज्य स्थापित करने का वर्णन करना कुछ अप्रासंगिक न होगा। मध्य-भारत में

बुन्देलखण्ड * नाम का एक अत्यंत रमणीय, विस्तृत और प्रसिद्ध प्रदेश है। उसमें बहुतसी छोटी बड़ी देशी रियासतें हैं। झांसी उन्हीं में से एक प्रसिद्ध और वलाढ्य देशी-राज्य की मुख्य नगरी थी। वर्तमान समय में उसका प्राचीन वैभव सब नष्ट हो गया है। अब यह शहर अंगरेजों के आधीन है। ओरछा के राजा वीरसिंह देव का बनवाया हुआ प्रचंड किला अपनी वर्तमान जीर्ण दशा में भी, अपने पूर्व वैभव और विशाल स्वरूप का कुछ न कुछ परिचय देता ही है। यहां प्राचीन हिंदुओं की स्वाधीनता के और कोई चिन्ह नहीं पाये जाते। महारानी लक्ष्मीबाई के राजमहल का इतना रूपांतर हो गया है कि, उसके स्वरूप के साथ साथ उसका नाम तक बदल गया है! जहां किसी समय हिंदूधर्म, स्वाधीनता और गौरव की रक्षा के हेतु बड़े बड़े शास्त्री, पंडित, राजनीतिज्ञ, धर्मज्ञ और स्वदेशभक्तों की सभा होती थी, वहां अब अंगरेजों का होटल (भोजनगृह) है!! इसीसे कहा गया है कि काल की महिमा बड़ी विचित्र है!!!

झांसी की प्राचीनता के विषय में अधिक प्रमाण नहीं मिलते। सिर्फ सन् १५०० ईस्वी से इसका कुछ कुछ वृत्तान्त प्रकट होता है। पहले पहल यह प्रान्त ओरछा के राजा वीरसिंह देव के आधीन था। उस समय झांसी एक छोटासा गांव था। परन्तु वीरसिंह देव ने वहां एक बहुत बड़ा किला बनवाया। महाराज वीरसिंह देव बड़े पराक्रमी राजा थे। इन्होंने

* **बुंदेलखंड**, अर्थात बुंदेले लोगों के रहने की जगह। बुंदेले, राजपूतों की एक जाति का नाम है। ये लोग बुंदेले नाम से क्यों प्रसिद्ध हुए इसकी एक आख्यायिका है:— काशीजी में जिस समय क्षत्रियों का राज्य था उस समय उनके वंश में **पंचम** नामक एक राजा हुआ। उसको उसके भाइयों ने राज्य से बाहर निकाल दिया। वह दुःखित अवस्था में घूमता फिरता विंध्याचल पर्वत पर **विंध्यवासिनी** देवी के मंदिर में गया और वहां देवी की आराधना राज्यप्राप्ति के लिये करने लगा। बहुत दिनों तक तपश्चर्या करने के पश्चात देवी को प्रसन्न करने के लिये उसने अपना सिर काटकर देवी के आगे रखदिया। इस बात से प्रसन्न होकर देवी ने उसको जीवित करदिया और उसे बरदान मांगने की आज्ञा दी। उसने कहा कि मुझे राज्य प्राप्त हो। देवी ने प्रसन्न होकर उसे वर दिया कि तुझे राज्य प्राप्त होगा। उसके सिर काटने से कुछ **रक्तबिंदु** देवी पर पड़े थे; उन्हीं बिन्दुओं के पड़ने से देवी ने उसे **बिंदु** अथवा **बिंद** कहकर सम्बोधन किया था। उसीका बिगड़ते बिगड़ते **बुंदेला** शब्द होगया है।

सन् १६०२ ईस्वी में अकबर बादशाह के मन्त्री और प्रसिद्ध इतिहास-लेखक अबुलफ़ज़ल का युद्ध में वध किया था। इसी अनर्थ के कारण अकबर ने अपने पुत्र सलीम को फौज देकर बुन्देलखंड पर चढ़ाई करने के लिये भेजा। परन्तु वीरसिंह ने सन्मुख लड़ाई नहीं की। वे इधर उधर आना कानी करते रहे। अकबर की मृत्यु के बाद उसका लड़का सलीम, सन् १६०५ ईस्वी में, गद्दी पर बैठा। उसने वीरसिंह देव का कसूर माफ करदिया। परन्तु १६२७ ईस्वी में जब दिल्ली की गद्दी पर शाहजहां आरूढ़ हुआ तब फिर वीरसिंह देव ने लूटमार शुरू करदी। जब प्रजा इनके अत्याचार से अति दुःखित हुई तब शाहजहां ने इनकी जागीर जप्त करली। उस समय से १७०७ तक झांसी-प्रान्त दिल्ली के आधीन रहा। सन् १७०७ में जब बहादुर शाह गद्दी पर बैठा तब झांसी का परगना छत्रसाल को जागीर में मिला। छत्रसाल पंवार राजपूत था। इसकी राजधानी पन्ना थी। इसके पिता का नाम चम्पतराय था। छत्रसाल स्वधर्माभिमानी और बहुत बड़ा शूर वीर राजा था। इसने सारे बुंदेलखंड प्रान्त पर अपना आधिपत्य जमाया। आज भी इसका कीर्तिनाद सारे भारत में व्याप्त हो रहा है। महाकवि भूषण ने इसके विषय में इस प्रकार लिखा है:—

कवित्त।

रैया राव चम्पत को चढो छत्रसालसिंह भूषण भनत गजराज जोम जमकैं।
भादों की घटासी उठी गरदें गगन घेरें सेलें समसेरैं फेरैं दामिनी सी दमकैं।
खान उमरावन के और राजा रावन के सुन सुन उर लागे घन कैसी धमकैं।
बैहर बगारन की अरिके अगारन की नागती तगारन नगारन की धमकैं॥
हैवर हरदसाज गैबर गरद समै पैदर के ठट्ठ फौज जुरी तुरकाने की।
भूषण भनत राय चम्पत को छत्रसाल रोप्यो रण व्हैके ढाल हिंदुआने की।
कैयक हजार बैरी एक बार मार डारे, रंजक दगत मानो अगिनि रिसाने की।
सेर अफगान सेन सगर सुतन लगी, कपिल सराय लों तराप तोप खाने की॥
दारा साहि औरंग जुरे हैं दोऊ दिल्ली दल एकै गये भाजि एकै गए रूंधि जाल में।
बाजी कर कोई दगाबाजी कर राखे काऊ जेहि कैसहू प्रकार प्रान बचत न काल में।
हाथी ते उतरि हाड़ा जूझो लोह लंगर दै एती लाज. कामें जेती लाज छत्रसाल में।
तन तरवारन में मन परमेश्वर में प्राण स्वामी कारज में माथो हरि माल में॥

सारे बुन्देलखण्ड का राज्य छत्रसाल ने बड़ी उत्तमतापूर्वक चलाया। उसके कामों से उसकी सारी प्रजा बहुतही संतुष्ट रही। परन्तु जिनका स्वभाव दूसरों का अभ्युदय देखकर जलना ही है उनको दूसरों की राह में कांटे बोए बिना कल नहीं पड़ती। वे दूसरों के सुख और वैभव को सहन नहीं कर सकते। किसी संस्कृत-कवि ने ठीक कहा है:—

अहो सहन्ते बत नो परोदयं
निसर्गतोऽन्तर्मलिनाह्यसाधवः।

अर्थात् स्वभावसेही जिनका अंतःकरण मलिन हो रहा है, ऐसे असचरित लोग दूसरे का अभ्युदय सहन नहीं कर सकते। यही हाल उस समय मुसलमान-अधिकारियों का था। वे भारतवर्षीय हिंदू-राजाओं के वैभव को देख नहीं सकते थे। इसी कारण मालवे के सूबेदार और इलाहाबाद के नव्वाब मुहम्मदखां बंगस, समय समय पर, छत्रसाल को तंग किया करते थे। परंतु यह भी बड़ा पराक्रमी और शूर वीर था। एक समय मालवा के सूबेदार ने इसको कुछ कर देने को लिखा और यह भी कहला भेजा कि यदि तुम कर देना स्वीकार न करोगे तो हमको तुमसे महा भयंकर संग्राम करना पड़ेगा। इसका उत्तर भी छत्रसाल ने बहुतही उत्तम दिया, जिसका वर्णन एक कवि ने इस प्रकार किया है:—

देवागढ देश नाहीं, दक्खिन नरेश नाहीं, चांदा बाद नाहीं जहां घने महल पाइ हो।
सौदागर सान नाहीं, देवन को थान नाहीं, जहां तुम पाहुने ले बहुतक उठि धाइ हो।
मैं तो सुत चम्पति को, युद्ध बिच लेहौं हाथ, यही जिय जानि उलटी चौथि दै पठाइयो।
लिख के परवाना महाराज छत्रसाल जू ने औरन के धोखे यहां कबहूं न आइयो॥

इस प्रकार के कटु और धृष्टता के वाक्य सुनकर मालवे के सूबेदार ने क्रोधवश होकर युद्ध की तय्यारियां कर दीं। परन्तु अकेले, छत्रसाल से लड़कर, विजय-लाभ करना सहल नहीं है; यह सोचकर उसने अपनी सहायता के लिये मुहम्मदखां बंगस को बुलाया। उधर बादशाह से भी सहायता के लिये विनती की गई। मुहम्मदखां का सारा सामान और बादशाह की पूरी सहायता पाकर सूबेदार युद्ध के लिये आ पहुंचा। इधर-छत्रसाल ने भी महाराष्ट्र-देश के राजा श्रीमान् छत्रपति साहू महाराज के प्रधान मंत्री बाजीराव पेशवा को अपनी सहायता के लिये यह लिखा कि "आपके

प्राचीन धर्म—गौ ब्राह्मण की रक्षा—के निमित्तही मैंने यह युद्ध अपने ऊपर लिया है। उधर बादशाह की पूर्ण सहायता, इधर मैं अकेला—केवल धर्म के सहारे—खड़ा हूँ। यदि इस समय आप मेरी सहायता न करेंगे तो आपके सनातन वैदिक धर्म की रक्षा का होना कठिन है"। यह भी किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि छत्रसाल ने नीचे लिखा हुआ दोहा बाजीराव के पास भेजा था।

जो गति ग्राह गजेन्द्र की सो गति भई है आज।
बाजी जात बुंदेल की राखो बाजी लाज।

इसके उत्तर में बाजीराव साहिब ने लिखा कि हम पूर्ण रूप से आपकी धर्म-रक्षा के निमित्त सहायता करेंगे। आप तो स्वयं वीर हैं। आप अकेलेही दिल्ली की बादशाहत को तहस नहस कर सकते हैं। पत्र के साथ एक दोहा भी उत्तर में भेजा हुआ लोग बतलाते हैं। वह दोहा यह है:—

वे हैंगे छत्तापता तुम हेंगे छतसाल।
वे दिल्ली की ढाल तू दिल्ली ढाहनवाल।

बाजीराव ने महाराज छत्रपति शाहूजी से अनुमति लेकर अपनी सारी फौज साथ ली और बुन्देलखंड की ओर पयान किया। अनुमान २१-२२ दिनों में वे बुन्देलखंड जा पहुंचे। कई दिनों तक लड़ाई करने के बाद शाही फौज और मुहम्मदखां बंगस ने जब देखा कि मरहठों से मुकाबिला करना मानो जान बूझकर काल के गाल में जाना है, तब उन्होंने सोच विचार कर सुलह कर ली। सुलह हो जाने के बाद छत्रसाल ने बाजीराव से पन्ना में भेंट की। छत्रसाल ने बड़े भक्तिभाव के साथ उनका स्वागत किया।

बुंदेले प्रभु छत्रसाल ने अपने राज्य का कुछ भाग बाजीराव को नजर किया। इतना देने पर भी दानी छत्रसाल को संतोष न हुआ। उसने मरते समय अपने राज्य के तीन भाग किये और बाजीराव को पुत्रवत् मानकर एक करोड़ आय का एक भाग उनको जागीर में दे दिया *। बाजीराव ने इस भाग के तीन हिस्से करके तीन सूबेदार नियत किये। पहिले भाग पर गोविन्दपन्त बुंदेले † को नियत किया; और सागर, गुलसराय और जालौन

---

*छत्रसाल के दो पुत्र थे--जगतराजदेव और हरदेव। इसी कारण उसने अपने राज्य के तीन भाग किये और उसमें से एक बाजीराव को दिया।

† गोविन्दपंत बुंदेले पानीपत की लड़ाई में नजीबखां रुहेले के हाथ से मारे गये। इनके

इत्यादि ४० लाख का इलाका उनके अधिकार में दिया। दूसरा भाग बांदा और कालपी प्रान्त—४० लाख का—शमशेरबहादुर * के सिपुर्द हुआ। बाकी २० लाख रुपये का झांसी-प्रान्त नारो शंकर मोतीवाले † के आधीन हुआ। इस प्रकार तीन सूबेदार नियत करके बाजीराव दक्षिण को चले गये।

दो पुत्र थे जिन्होंने कुछ दिनों तक कालपी में राज्य किया। इनके वंशज अब तक गुलसराय (संयुक्तप्रांत, जिला झांसी) में विद्यमान हैं। उनको अंगरेज सरकार ने अनुमान ३ लाख का इलाका खाने के लिये छोड रक्खा है।

* बाजीराव के पास एक यवन-वेश्या थी। उसका नाम मस्तानी था। उससे बाजीराव को एक पुत्र हुआ जिसका नाम शमशेरबहादुर रक्खा गया। बांदा और कालपी का इलाका इसी शमशेरबहादुर के आधीन किया गया था। वह सन् १८१६ तक बराबर इसीके वंशजों के आधीन रहा। सन् १८१७ इसवी में बांदा का राज्य अंगरेज सरकार ने अपने राज्य में मिला लिया और उसके बदले में ४ लाख सालाना पेनशन नियत कर दी। शमशेरबहादुर के वंशज अबतक इंदौर में मौजूद है, जिनको १३ हजार सालाना पेनशन सरकार से मिलती है।

† पेशवाई के समय के इतिहास को बहुत कुछ पढ़ने पर भी यह स्पष्ट प्रकट नहीं होता कि झांसी की सूबेदारी पर पहिले पहिल कौन नियत हुआ। हां, इस बात का पता लगता है कि पहिले गंगाधरपंत झांसी के सूबेदार नियत हुये, पश्चात गोविंदपंत बुंदेले। उनके बाद सन १७४२ ईस्वी में नारोशंकर सूबेदार नियत होकर आये। सन १७५७ में पेशवा ने नारोशंकर को वापस बुलाकर महदाजी गोविन्द को भेजा। उन्होंने रुहेलखंड को भी अपने अधिकार में कर लिया। वे वहां केवल दो वर्ष तक रहे। उनके पश्चात रघुनाथ हरी नेवालकर सूबेदार होकर आये। सन १८५७ ईस्वी तक इन्हीके वंशधर झांसी में राज्य करते रहे। पहिले कुछ दिनों तक इनके वंश के लोग पेशवाओं के कुछ कुछ आधीन रहे; परन्तु कुछ दिनों के बाद वे बिलकुल स्वाधीन राजा होगये। नारो शंकर मोतीवाले के संबंध में फारेस्ट साहिब ने "गवर्नमेन्ट सिलेकशन्स" में ऐसा लिखा है:—

"In the reign of Shahu Raja of Satara, the first of the family [Raja Bahadar family] whose name was Naro Shankar Dani (of the sect of Rigvedi Brahman) was nominated by Nana Saheb Peishwa to collect the revenues of Jhansi in Hindustan. He held the office for fourteen years without contributing one rupee to Government, and eventually assumed a Nowbut as a military leader, for which reasons he was re-called to Poona. And, on his entry, he not only caused his Nowbut to be beaten throughout the city, but came directly to the Peishwa's Palace, where he claimed apartments. Having sufficient address to satisfy the Peishwa of his conduct, he was henceforward treated as one of the great military chiefs of the empire and known by the name of Motiwala, from an enormous pearl which he wore."

सन् १७५६ ईसवी में झांसी के पूर्वाधिकारी गुसाइयों ने राजविद्रोह कर सूबेदार को अपने आधीन कर लिया। जब यह बात पेशवा को मालूम हुई तब उन्होंने रघुनाथ हरी नेवालकर नामक एक बुद्धिमान और बहादुर पुरुष को झांसी का सूबेदार नियत करके दक्षिण से बुन्देलखंड को रवाना किया। रघुनाथ हरी ने झांसी में आकर गुसाइयों का मान मर्दन किया। पेशवाओं का राज्य झांसी में फिर से उत्तमतापूर्वक स्थापित हुआ। जब यह समाचार पेशवा को पूने में विदित हुआ तब उन्होंने प्रसन्न होकर झांसी की सूबेदारी रघुनाथ हरी को वंशपरम्परा के लिये दे दी। गुसाई के शरण आने पर रघुनाथ हरी ने उसे १० हजार की जागीर वंश-परम्परा के लिये दी। यह जागीर अब तक उसके वंशजों में कायम है। रघुनाथ हरी ने झांसी के स्थायी सूबेदार होने पर बुन्देलों से राज्य-रक्षणार्थ बहुत सी सेना भी एकत्रित की। जिन गुसाइयों ने पहिले गदर मचाया था उनके चार मठ—आनंत, आभात, आखात और नागा— थे। इनमें से हर एक में एक एक हजार आदमी रहते थे और हर एक आदमी को भोजन के लिये चार चार रुपये मासिक मिलते थे। उन लोगों से काम केवल इतना ही लिया जाता था कि जब कभी लड़ाई की जरूरत पड़े तब वे गुसाइयों की सहायता करें। रघुनाथ हरी ने अपने बुद्धिबल और कौशल से इन सब को तितर बितर कर के सारा स्थान झांसी-प्रान्त में मिला लिया। बुन्देलखंड में महाराष्ट्रियों की राज्यमर्यादा बढ़ाने में रघुनाथ हरी के भाई लक्ष्मणराव और शिवराव भाऊ ने भी बड़ी सहायता की। यही रघुनाथ हरी हमारी चरितनायिका श्रीमती लक्ष्मीबाई के भर्त्तृवंश के मूल पुरुष हैं। इन्होंने बुन्देलखंड में महाराष्ट्रियों का विजयध्वज स्थापित करके यह सिद्ध कर दिया कि मरहटों में कितना धर्माभिमान और तेजस्विता है।

रघुनाथ हरी ने जब अपना बल और पराक्रम वृद्धावस्था के कारण कम होते देखा तब उन्होंने अपने भाई शिवराव भाऊ को झांसी की सूबेदारी दे दी, और आप काशीजी जाकर ईश्वरचिन्तन में निमग्न हुए। वे वहां १७९६ ईस्वी में स्वर्गधाम पधारे। उस समय पूना में पेशवा की गद्दी पर द्वितीय बाजीराव विराजमान थे। उनके शासनकाल में सम्पूर्ण महाराष्ट्र-देश

में अव्यवस्था और अंधेर हो रहा था। सब मरहटे सरदार स्वतंत्र होने का उद्योग कर रहे थे। इस परिस्थिति से अंगरेजों ने भी अपना कुछ लाभ कर लेने का उद्योग आरंभ किया। लेक साहिब ने, झांसी के सूबेदार शिवराव भाऊ और बृटिश सरकार में, एक नूतन संधि स्थापित की। तारीख ६ फेब्रुवरी १८०४ को जो संधिपत्र हुआ उसमें यह लिखा है कि, शिवराव भाऊ और बृटिश सरकार मित्र हैं। संकट समय में उन्हें परस्पर सहायता करना चाहिये। इनकी मित्रता को देख बुन्देलखंड के अन्यान्य राजा लोग भी बृटिश सरकार के आश्रय में रहने की इच्छा प्रकट करने लगे। यथार्थ में इन्हींके समय में बृटिश-राज्य की जड़ बुन्देलखंड में मजबूत हुई। यह बात निम्न वाक्यों से प्रकट होगी:—

"The example of the Subadar [of Jhansi] has induced several other Chiefs in that quarter [Bundelkhand] to place themselves under the protection of the British Government"—*Despatch of the Governor—General-in-Council to the Secret Committee, 12th April 1840. Vol. 5. p. 92.*

शिवराव भाऊ के तीन पुत्र—कृष्णराव, रघुनाथराव और गंगाधरराव-थे। इनके पश्चात कृष्णराव के पुत्र रामचंद्रराव झांसी की सूबेदारी पर नियत हुए। रामचंद्रराव के बालक होने के कारण उनकी माता सखूबाई और झांसी के पुराने राजमंत्री गोपालराव राज्य का काम चलाते थे। सखूबाई बड़ी क्रूर-स्वभाव की स्त्री थी। रामचंद्रराव जब राज्य का कार्य स्वयं देखने के योग्य हुए तब उन्होंने सब काम स्वतंत्र रूप से अपने हाथ में ले लिया। यह काम उनकी माता के मन न भाया। अपने हाथ से राज्याधिकार का चला जाना और पुत्र का स्वतंत्र होना उन्हें सहन न हुआ। वे अपने पुत्र को नष्ट करने और राज्य का काम अपने आप चलाने के लिये नाना प्रकार के उपाय सोचने लगीं। वे उपाय सोचकर ही शान्त न हुईं; किन्तु उसकी सिद्धि के लिये यथासाध्य उद्योग भी करने लगीं। रामचंद्रराव को जल में तैरने का बहुत शौक था। वे कभी कभी लक्ष्मीताल पर इसी अभिप्राय से जाया करते थे। उनकी माता से जब कोई उपाय न बन पड़ा तब उन्होंने लक्ष्मीताल में गुप्त रीति से भाले गड़वा दिये। हा! राज्यलोभ कितना भयंकर है!! हा अनर्थकारी लोभ, तू पुत्रवध करने के लिये भी

तत्पर हो गया ! ! ! संसार में माता के लिये पुत्र से बढ़कर और कोई सुख नहीं। फिर भी पुत्र कैसा ? राज्याधिकारी ! परन्तु लोभ ने उसे ऐसा घेर लिया कि वह अपने राज्याधिकारी पुत्र ही का वध करने लगी। हाय! हाय ! यह अनर्थ! इस प्रकार की कई एक कालिमायें स्वच्छ और पवित्र इतिहास में देखने में आती हैं। पेशवा के घराने में भी आनन्दीबाई ने, अपने भतीजे का वध, राज्यलोभाधीन होकर, करवाने के कारण, अपना दुर्नाम महाराष्ट्र-इतिहास में अजरामर कर लिया है। इसी प्रकार सखूबाई ने प्रत्यक्ष अपने पुत्र का इस नीच रीति से वध करने का प्रयत्न करके, अपना दुर्नाम झांसी के इतिहास में प्रसिद्ध किया। परन्तु इस कहावत के अनुसार कि, 'जिसको राखे साइयां मारि न सक्कै कोय' रामचंद्रराव भाग्यवश बच गये। लालू कोदलकर नामक एक स्वामिभक्त सेवक ने, यह गुप्त पाप जान कर, रामचंद्रराव को पूरा पूरा भेद बतला दिया। रामचंद्रराव ने इस उपकार के बदले उसे बहुत कुछ पुरस्कार दिया। परन्तु जब सखूबाई को मालूम हुआ कि पाप का भंडा फूट गया तब उसने क्रोधित होकर उस स्वामिभक्त सेवक को धोखे से मरवा डाला! रामचंद्रराव बहुत ही सरल स्वभाव के पुरुष थे। माता के इस अन्याय को देख कर उन्होंने कुछ भी नहीं कहा; परन्तु झांसी दरबार के राज-मंत्रियों से यह दुष्कर्म देख कर रहा न गया। उन्होंने सखूबाई को इस नीच कर्म के बदले जन्म भर कैद कर दिया। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि, जिस घराने में लक्ष्मीबाई सदृश वीर स्त्री उत्पन्न हो, उसी घराने में सखूबाई जैसी स्व-पुत्रहत्या करनेवाली पाषाणहृदया स्त्री भी उत्पन्न हो? परन्तु आश्चर्य क्या! गुलाब के पेड़ से सुगंधित पुष्प और कांटे दोनों ही उत्पन्न होते हैं। यही तो इस संसार की विचित्र गति है !

जिस समय रामचन्द्रराव की अल्पावस्था के कारण उनकी माता सखूबाई और राजमंत्री गोपालराव के हाथ में झांसी के राज्यसूत्र थे उस समय पूना के दरबार में, द्वितीय बाजीराव के भ्रष्ट और अनीति-पूर्ण व्यवहार से बहुत ही गड़बड़ होगई थी। पेशवाई का सब अधिकार धीरे धीरे अंगरेजों के हाथ में चला जा रहा था। तारीख १३ जून

सन् १८१७ ई० को पेशवा (द्वितीय बाजीराव) ने अंगरेजों से संधि की। उसके द्वारा बुन्देलखंड का सब अधिकार अंगरेजों को सौंप दिया गया। * इस नूतनप्राप्त अधिकार को स्थापित करने के हेतु अंगरेजों ने झांसी के सूबेदार, बालक रामचंद्रराव, के साथ नूतन संधि की। रामचंद्रराव की ओर से उनके मंत्री गोपालराव और अंगरेजों की ओर से जान वाहुचप ने १७ नवंबर सन् १८१७ ई. को सीपरी की छावनी में संधि-पत्र लिखा। यह संधिपत्र अत्यंत महत्त्व का है। वह परिशिष्ट (अ) में दिया गया है। उसके अनुसार बृटिश-सरकार ने झांसी का राज्य रामचंद्रराव को वंशपरम्परा के लिये अपनी ओर से दिया।

सन् १८३५ ईस्वी में रामचंद्रराव की मृत्यु के पश्चात, उनकी कोई खास सन्तति न होने के कारण, कृष्णराव नामक एक लड़का गोद लिया गया। परन्तु यह दत्तक शास्त्रानुकूल न समझा जाकर, शिवराव भाऊ के दूसरे पुत्र रघुनाथराव को, झांसी के पोलीटिकल एजंट बेग्बी साहिब की अनुमति से, झांसी-दरबार ने गद्दी पर बिठाया। रघुनाथराव दुर्व्यसनी और अत्याचारी थे। उनके समय में राज्य की आमदनी घट गई और प्रजा को बहुत दुःख भोगना पड़ा। यह देख अंगरेज सरकार ने सन् १८३७ में झांसी-राज्य की व्यवस्था अपने हाथ में ली। सन् १८३८ ईस्वी में रघुनाथराव का देहान्त हो गया। उनके मरने पर गद्दी के चार अधिकारी पाये गये:—१ गंगाधरराव, २ रामचंद्रराव का दत्तक पुत्र कृष्णराव, ३ रघुनाथ राव का दासी-पुत्र अलीबहादुर † और ४ रघुनाथराव की स्त्री। इसका निश्चय

* "His Highness Rao Pandit Prudhan Bahadoor hereby cedes to the Honourable East India Company all his rights, interests, or pretentions, feudal, territorial or pecuniary, in the province of Bundelkhand, including Saugor, Jhansi and the lands held by Nana Govindrao and agrees to relinquish all connection with the Chiefs in that qarter."

† रघुनाथराव के पास गजरा नामक एक स्त्री रहती थी, जिसके पेट से दो पुत्र—अलीबहादुर और शमशेरबहादुर—पैदा हुए। गजरा के मरने पर उसकी कबर किले के ऊपर ही बनाई गई जो वहां अबतक मौजूद है। वहां प्रत्येक बृहस्पतिवार को मेला होता है। उसके खर्च के लिये १५००) का एक गांव इनाम में दिया हुआ अबतक ज्यों का त्यों चला जाता है। इन दोनों लड़कों को जो छः छः हजार रुपये की जागीर दी गई थी वह भी उनके वंशजों के आधीन बनी हुई है।

करने के लिये कि, झांसी की गद्दी पर कौन बिठाया जाय, ब्रिटिश-सरकार ने एक कमीशन नियत किया, जिसमें ग्वालियर के रेसिडेंट लेफ्टेनन्ट स्पेअर्स, सायमन फ्रेज़र और क्यपटन डी॰ रास ये तीन मेम्बर थे। इस कमीशन ने सरलतापूर्वक यह निश्चय किया कि शिवराव भाऊ के पुत्र गंगाधरराव के अतिरिक्त और कोई दूसरा निकट सम्बन्धी मनुष्य वारिस नहीं हो सकता। कमीशन के निश्चित कर देने पर गंगाधरराव गद्दी पर बिठाये गये। यही गंगाधरराव हमारी चरित्रनायिका लक्ष्मीबाई के पति हैं।

दूसरा अध्याय

महाराजा गंगाधरराव का शासन-समय।

महाराजा गंगाधरराव का विवाह हो जाने के बाद उनको, झांसी-राज्य पर पहले का चढ़ा हुआ ऋण अदा हो जाने पर, झांसी का पूर्ण राज्याधिकार प्राप्त हुआ । इसकी सूचना बुंदेलखंड के पोलिटिकल एजंट कर्नल स्लीमन साहिब ने ब्रुटिश-सरकार को दी। सरकार ने महाराजा गंगाधरराव से, राज्याधिकार देते समय यह शर्त करली कि, बुंदेले लोगों के उपद्रव से राज्य की रक्षा करने के लिये झांसी दरबार को अपने खर्च से कुछ अंगरेजी फौज रखना पड़ेगी। ब्रुटिश-सरकार का अधिक आग्रह देखकर गंगाधरराव ने २,२७,४५८ रुपये का प्रांत सरकार को फौज रखने के लिये अलग निकाल दिया; और उन्होंने दो पलटनें और दो तोफखाने अपने स्वाधीन रख लिये। जब यह सब बातें सरकार ने स्वीकार करलीं तब उनके राज्याधिकार-प्राप्ति का उत्सव मनाया गया। पोलिटिकल एजंट ने राज्य के खजाने में बचे हुए ३० लाख रुपये नकद गंगाधरराव के स्वाधीन किये और उनको सन्मानपूर्वक खिलअत और पोशाक समर्पण की। इसी प्रकार बहुत से सरदारों और जागीरदारों ने भी आनन्द सूचनार्थ अनेक बहुमूल्य पदार्थ महाराज को, भेंट में, अर्पण किये। झांसी की प्रजा ने भी अपने अपने घरों में उत्सव मनाया। इससे यह विदित होता है कि गंगाधरराव झांसी-प्रान्त की प्रजा को बहुत प्रिय थे।

महाराज ने राज्याधिकार पाने पर ऐसे अनेक काम किये कि जिनसे प्रजा को सुख प्राप्त हुआ। पहले पहल उन्होंने राज्य-व्यवस्थापक सभा का प्रबंध किया। उसमें कार्यदक्ष, चतुर और प्रामाणिक पुरुषों को अच्छी अच्छी जगहें दीं। राघो रामचंद्र संत नामक एक बुद्धिमान पुरुष राजमंत्री के पद पर नियत किये गये। दरबार के वकील का काम नरसिंहराव

को सौंपा गया । अदालत के काम पर नाना भोपटकर नियत किये गये । इसी प्रकार हर एक छोटे बड़े कामों पर अच्छे अच्छे आदमी चुन चुन कर उन्होंने नियत किये । जिन जिन स्थानों पर ठाकुर और बुंदेलों ने उपद्रव मचा रक्खा था वहां वहां थोड़ी थोड़ी फौज भेजकर उन्होंने उसका यथोचित प्रबंध किया । इस प्रकार कार्य करने से झांसी-प्रांत में चारों ओर शांति ही शांति दिखाई देने लगी । इस उत्तम प्रबंध से झांसी की प्रजा बहुत सुखी और सन्तुष्ट हुई ।

महाराजा गंगाधरराव बड़े वैभवशाली पुरुष थे । उन्हें अपने राज्य को वैभव-सम्पन्न करने का बहुत बड़ा उत्साह था । वे अपने राज्य की पूर्व की धन-सम्पत्ति और पूर्वजों कैसा राजसी ठाठ बढ़ाने के लिये बहुत कुछ प्रयत्न किया करते थे। तृतीय रघुनाथराव के समय में जो अन्याय से काम हुआ था और जिसके कारण झांसी का अधिकांश वैभव नष्ट हो गया था उसको पुनः अच्छी दशा में लाने के लिये उन्होंने अपने शासन-समय में बहुत कुछ प्रयत्न किया । इस समय झांसी में महारानी लक्ष्मीबाई का आना मानो राज-लक्ष्मी ही का पुनः प्रवेश करना था । राज्य-कोष की दशा सुधर जाने पर रत्नभांडार में पहले कैसे राजलक्ष्मी के चिन्ह दर्शित होने लगे । महाराज को हाथी घोड़े रखने का अधिक शौक था; इसी कारण बहुत से हाथी घोड़े भी इकट्ठे किये गये । उनमें सिद्धबकस नामका, एक बहुत ही उत्तम और सुन्दर, हाथी था । वह महाराज के निज की सवारी के काम आता था । उसका सारा सामान सोने का बनवाया गया था । राज्यवैभव दर्शाने के लिये हाथी घोड़ों का सब सामान, अम्बारी, हौदा, जीन आदि सोने का तयार कराया गया । काशीजी से एक बहुत उत्तम तामझाम (मियाना), जिस पर नक्क़शी का काम बड़ी कुशलतापूर्वक किया गया था, मगवाया गया । इस प्रकार उन्होंने राजसी ठाठ इकठ्ठा करने का यथासाध्य उद्योग किया । स्वयं झांसी-राज्य और ठाकुर लोगों की, सब मिलाकर, ५००० के करीब फौज थी। २००० गोल पुलिस, ५०० घोड़ों का रिसाला, १०० खास पायगा के सिपाही और ४ तोपखाने थे। इस व्यवस्था से गंगाधरराव के शासन-समय की उत्तमता और उनके दीर्घ प्रयत्न का फल स्पष्ट व्यक्त होता है ।

गंगाधरराव का स्वभाव जितना नम्र था, उनकी आज्ञा में उतनीही सख्ती भी थी। उनका यह एक साधारण नियम था कि, राज्य संबंधी व्यवस्था में जो जो कार्य जिस जिस मनुष्य को सौंप दिये गये थे वे कार्य उसके द्वारा नियत समय पर अवश्य होजाने चाहिये। किसी काम में नियत समय से अधिक विलंब होने पर वे स्वयं उसका विचार करते थे। ओरछा, दातिया, समथर, चरखारी, पन्ना, छत्रपूर इत्यादि स्थानों के बुंदेले राजा उनको "काका साहब" नाम का सम्बोधन करके मान देते थे। सारांश, गंगाधरराव बड़े चतुर, दयालु, कार्यदक्ष और राजनीति-निपुण थे। इसी लिये उस समय के अंगरेज--अधिकारी उनका बहुत सन्मान करते थे। उन्होंने अपने शासन-समय में बृटिश-गवर्नमेंट तथा झांसी-राज्य की वंशपरम्परागत मित्रता को बहुत दृढ़ कर दिया था।

राज्य की व्यवस्था पूर्णरूप से हो जाने पर महाराजा गंगाधरराव की इच्छा तीर्थयात्रा करने की हुई। इसके प्रबन्ध के लिये गवर्नर-जनरल साहिब को लिखा गया। जब अंगरेज-सरकार ने उनकी यात्रा का पूरा प्रबन्ध कर दिया तब वे माघ सुदी सप्तमी सम्वत १९०७ (सन १८५० ई.) को सकुटुम्ब काशीजी की ओर रवाना हुए। जगह जगह पर सरकार ने उनके सन्मान का यथोचित प्रबन्ध पहलेही करवा रक्खा था। महाराज का स्वभाव इतना तेजस्वी था, कि यदि यत्किंचित भी उनका अपमान होता तो वे उसे सहन नहीं कर सकते थे। काशी पहुंचने पर वहां के एक अधिकारी ने, उनको न पहचान कर, उनका यथोचित मान नहीं किया; परन्तु पीछे से जब उसे मालूम हुआ कि ये झांसी के महाराजा गंगाधरराव हैं तब उसने उनसे क्षमा करने के लिये प्रार्थना की। इसी प्रकार राजेन्द्र बाबू नामक किसी एक महाशय ने उनको खड़ी ताज़ीम नहीं दी। इससे महाराज ने अपना अनादर जान राजेन्द्र बाबू को दंड दिया। इस पर बाबू साहब ने अंगरेज-सरकार से निवेदन किया। वहां से उनको यह उत्तर मिला कि, गंगाधरराव बहुत बड़े राजा हैं; यदि तुमको उन्हें खड़ी ताज़ीम देना स्वीकार न था तो तुम अपने घर में बैठे रहते। अस्तु।

इसी यात्रा में महाराज ने प्रयाग, गया इत्यादि अन्य तीर्थों की भी यात्रा की और अपने अनुकूल बहुत कुछ दान-धर्म किया। महारानी लक्ष्मीबाई ने काशी जाकर अपनी जन्मभूमि के दर्शन किये। तीर्थ-यात्रा से लौट आने पर, शहर में बहुत बड़ा आनन्दोत्सव मनाया गया। इसी वर्ष ईश्वर की अपार कृपा से अगहन सुदी ११ सम्वत् १६०८ (सन् १८५१ ई.) को महारानी लक्ष्मीबाई के गर्भ से पुत्र उत्पन्न हुआ। इस कारण सारे शहर और राज्य में आनन्द मनाया गया। महाराजा गंगाधरराव ने पुत्र-जन्म के आनन्द में बहुत बड़ा जलसा किया; परन्तु यही आनन्द तीन मास के बाद दुःख में बदल गया; अर्थात्, वह बालक काल का कलेवर हुआ! संसार में पुत्र-वियोग से बढ़कर और कौन दुःख हो सकता है? कहावत भी प्रसिद्ध है कि "लड़का पैदा होने से सौ वर्ष की नीव गड़ जाती है और मरने से सौ वर्ष की नीव उखड़ जाती है"।

पुत्रवियोग के कारण महाराज के मन को बहुत बड़ा धक्का लगा। इससे उनका स्वास्थ्य नित्य प्रति बिगड़ता गया। जब सन् १८५२ ई. में उनका स्वास्थ्य अधिक बिगड़ता हुआ दिखाई दिया तब औषधोपचार आरम्भ हुआ। उससे किसी कदर स्वास्थ्य में अन्तर पड़ा; परन्तु कमजोरी ज्यों की त्यों बनी रही। अक्टूबर सन् १८५३ ई. में झांसी में महालक्ष्मी के शारदीय नवरात्र का बहुत बड़ा उत्सव था। उस समय महाराज ने, सदैव की तरह, अपनी कुल-स्वामिनी देवी महालक्ष्मी की भक्ति व्यक्त करने के लिये, जो थोड़ासा परिश्रम किया उससे उनका स्वास्थ्य और भी अधिक खराब हो गया। विजया-दशमी के दिन बहुत बड़ा दरबार किया गया। उस समय झांसी की प्रजा को, अपने राम-राज्य के सुख का अनुभव लेते हुए और मन में आनंदित होते हुए, इस बात का स्मरण हुआ कि, महाराजा गंगाधरराव ने अपनी प्रजा को सुखी रखने के लिये कितना कष्ट सहा है। सारी प्रजा ने ईश्वर से यही प्रार्थना की, कि महाराज चिरायु हों; परन्तु ईश्वर की इच्छा के सामने जीव मात्र की इच्छा कोई चीज नहीं। कर्मानुसार जैसा होना है, ईश्वर यथार्थ में वैसा ही करता है। विजया-दशमी के बाद महाराज संग्रहणी रोग

से पीड़ित हुए; और इसके बाद दिन-प्रति-दिन उनका स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया। झांसी के नामी नामी वैद्य और हकीमों को अपना चातुर्य दिखाने के लिये अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने पृथक पृथक और मिल जुल कर अपनी अपनी योग्यतानुसार बहुत कुछ प्रयत्न किया; परन्तु सारा परिश्रम निष्फल गया! झांसी के असिस्टेंट पोलिटिकल एजंट मेजर मालकम साहिब को महाराज का सारा हाल लिखकर भेजा गया। उन्होंने भी महाराज की स्वास्थ्य-रक्षा के लिये स्वयं प्रबन्ध किया।

इस देश में जब कोई काम पुरुषार्थ द्वारा होते नहीं दिखाई पड़ता तब उसके लिये देवी देवताओं की आराधना की जाती है। खेदपूर्वक लिखना पड़ता है, कि इन्हीं देवी देवताओं का सहारा लेने से भारत पुरुषार्थ-हीन हो गया है। झांसी-दरबार ने भी महालक्ष्मी की पूजा, होम, जप, तप, अनुष्ठान आदि का कार्य आरम्भ कर दिया। जब महारानी लक्ष्मीबाई को महाराजा गंगाधरराव का स्वास्थ्य अधिकाधिक बिगड़ता हुआ दिखाई देने लगा तब वे बहुत व्याकुल हुईं। उनकी भूख प्यास सब जाती रही। चिन्ता की ज्वाला से उनका सारा शरीर दग्ध होने लगा। सच है, स्त्री के लिये पति-प्रेम एक अलौकिक वस्तु है; क्योंकि हमारे यहां स्त्रियां अपने पति को देव-तुल्य मानती हैं। झांसी—दरबार को भी इनकी दशा देख कर चिन्ता-मग्न होना पड़ा। नवम्बर मास के दो सप्ताह ज्यों त्यों करके निकल गये। तीसरे सप्ताह का आरम्भ होते ही सारे चिन्ह विपरीत दिखाई पड़ने लगे। यह देख कर सब लोगों का चित्त और भी अधिक व्याकुल हुआ। तब झांसी-दरबार के राजमंत्री नरसिंहराव और महारानी लक्ष्मीबाई के पिता मोरोपंत, महाराज के समीप गये; और उन्होंने राज्य-व्यवस्था विषयक कुछ वार्ता छेड़ी। उसको सुनकर महाराज ने कहा "यद्यपि मुझे अभी तक अपने जीने की आशा है तथापि धर्मानुसार मुझे दत्तक-पुत्र लेने की बड़ी इच्छा है। हमारे घराने में वासुदेव नेवालकर का आनन्दराव नाम का एक पुत्र है; उसको दत्तक लेना चाहिये"। आनन्दराव की उमर, उस समय, अनुमान ५ वर्ष के थी। वह देखने में खूब सूरत और बुद्धिमान था। इस लिये महारानी लक्ष्मीबाई और स्वयं महाराज ने

उसको गोद लेने का निश्चय किया। झांसी के विद्वान पण्डित विनायकराव ने धर्मानुसार दत्तक विधान करवाया। झांसी-दरबार के राजमंत्री नरसिंहराव, मोरोपंत तांबे, लाहोरीमल आदि सब लोगों ने बड़े समारोह के साथ व्यवस्था की। उस समय झांसी के मुख्य मुख्य मान्यवर धनाढ्य पुरुष निमंत्रित होकर आये थे। बुंदेलखंड के असिस्टेंट पोलिटिकल एजंट मेजर एलिस और स्थानीय सेनाधिकारी कप्तान मार्टिन भी वहां उपस्थित थे। इन सब लोगों के सामने दत्तक-विधान होकर बालक आनन्दराव का नाम दामोदरराव गंगाधरराव रक्खा गया। महाराज ने आनन्द-पूर्वक स्वयं दामोदरराव का, राज्य-प्रणाली के अनुसार, सत्कार किया। निमंत्रित मान्य पुरुषों का, रीत्यनुसार, इत्र पान आभूषणादि से यथायोग्य सत्कार किया गया।

जब उत्सव का कार्य समाप्त हो गया तब महाराज ने, दरबार के राजमंत्री नरसिंहराव और अपने श्वसुर मोरोपंत को अपने समीप बुला कर, एक खलीता लिखवाया। उस समय महाराज के पास झांसी के असिस्टेंट पोलिटिकल एजंट भी बैठे हुए थे। खलीता लिख जाने पर, महाराज ने उसको स्वयं अपने हाथ से एलिस साहब के हवाले किया। उसमें यह लिखा था "बृटिश-सरकार का राज्याधिकार बुंदेलखंड में स्थापित होने से पहले मेरे वंशजों ने किस प्रकार उनकी सहायता की यह बात यूरोप भर में प्रसिद्ध है। मैं भी बृटिश-सरकार की आज्ञा पालन करता आया हूं। इसका हाल बहुतेरे पोलिटिकल एजंट साहबों को ज्ञात है। मैं आजकल रोग-ग्रस्त हूं। मैं अब तक बृटिश-सरकार के साथ अच्छा बर्ताव करता आया हूं; और सरकार ने भी सदैव मेरे ऊपर कृपा-दृष्टि रक्खी है। परंतु अब मुझे खेद है, कि मेरे पीछे मेरे घराने के नष्ट होने का समय आ गया है। ऐसा न हो, इस कारण, मैं बृटिश-सरकार का ध्यान, उस संधि पर, जो मेरे घराने से हुई है, दिलाता हूं। मैंने उसी संधि के अनुसार आनन्दराव नामक एक पांच वर्ष का बालक गोद लिया है। उसका नाम दामोदर गंगाधरराव रक्खा गया है। यह बालक मेरे ही वंश का है। वह मेरा नाती लगता है। मुझे यह आशा है, कि ईश्वर की कृपा और सर-

कार के अनुग्रह से मैं इस बीमारी से शीघ्र ही अच्छा हो जाऊंगा। मेरी अवस्था के अनुसार मुझे संतति होना भी संभव है। यदि ऐसा हुआ तो फिर विचार किया जायगा। परन्तु, यदि मेरा परलोकवास हो जाय तो जिस प्रकार मैं अब तक सरकार के साथ उत्तम बर्ताव करता आया हूं उसीकी ओर ध्यान देकर इस बालक पर भी सरकार की कृपादृष्टि रहनी चाहिये। जब तक मेरी स्त्री जीवित रहे तब तक वही इस राज्य की स्वामिनी और बालक की माता समझी जाकर राज्य-व्यवस्था उसीके आधीन रहै। उसे किसी प्रकार का दुःख न पहुंचै *।"

इस खलीते को एलिस साहिब के हाथ में देते समय महाराज का अंतःकरण दुःख से भर आया। उन्होंने मेजर साहब से अपनी इच्छा पूरी करने के लिये बार बार बिनती की। मेजर साहब ने भी अति विनीत भाव से उत्तर दिया कि "महाराज, आपका खलीता बृटिश-सरकार के पास भेजकर जो कुछ मेरे करने से होगा उसके लिये मैं अवश्य प्रयत्न करूंगा"। इतनी देर तक बातें करते रहने से कमजोरी के कारण महाराज बेहोश हो गये। यह देख मेजर साहब और कप्तान मार्टिन साहब उनको दवाई देकर अपने बंगले पर चले गये। महारानी लक्ष्मीबाई, महाराज के समीप, परदे में बैठी हुई थीं। साहब लोगों के चले जाने पर, वे महाराज के समीप आईं। उस समय उनकी जो दशा हुई वह लेखनी द्वारा व्यक्त करना कठिन है। मेजर एलिस साहब ने अपने बंगले पर जाकर बुंदेलखंड के पोलीटिकल एजंट मेजर मालकम साहब को इस प्रकार वृत्तान्त लिखा कि "आज सबेरे महाराज के बुलाने पर मैं राजभवन में गया था। वहां मेरी और कप्तान मार्टिन साहब की महाराज से भेंट हुई। महाराज की दशा बहुत खराब है। इस पत्र के साथ भेजा हुआ खलीता मुझे सुनाया

---

* Abstract of a *khareeta* from Maharaja Gangadhar Rao of Jhansi to the address of Major Ellis, Political Assistant in Bundelkhand and Rewah: Dated 19th November 1853.--*Vide papers on the annexation of Jhansi.*

गया था। उसके पढ़े जाने के बाद महाराज बेहोश हो गये, और मैं वहां से बंगले पर वापस चला आया * ।"

एलिस साहब के चले जाने पर महाराज को औषधोपचार से कुछ आराम हुआ। उनको थोड़ीसी निद्रा भी आ गई। परंतु महारानी लक्ष्मीबाई का मुख उदास और पीला पड़ गया था। उनका मन अत्यंत व्याकुल हो रहा था। जब दो पहर के चार बजे (ता. २० नवम्बर को) महाराज की नींद खुली, तब महल के सामने हजारों आदमियों की भीड़ लग गई और सब लोग एक स्वर से यही पूछने लगे कि, महाराज का क्या हाल है? मेजर एलिस साहब महाराज को मिलने के लिये अपने बंगले से रवाना हुए। इतने में रेसिडेंसी के समीप ही एक सवार ने जाकर साहब को यह विषम समाचार सुनाया कि "महाराज का हाल इस समय बहुत ही खराब है। उनको पल पल पर बेहोशी आती है और उनका बोल भी बंद हो गया है। अब भेंट होने की कोई आशा नहीं है!" महाराज का बोल बंद हुआ देखकर लक्ष्मीबाई की आंखों से अश्रु की धारा बहने लगी। उन्होंने एकदम बड़े दुःख के साथ चिल्लाकर अपनी कुल-स्वामिनी **महालक्ष्मी** देवी का नाम लेकर पुकारा और कहा कि "हे जगज्जननी, तू मेरा पहले ही गला काट डाल! मुझे यह दुःख देखने के लिये जीवित मत रख।" इस प्रकार की चिल्लाहट सुन उनके पिता और कई एक पुरुष दौड़ आये। उन्होंने महारानी को समझा बुझाकर शान्त किया।

महाराज को बहुत सी बहुमूल्य औषधियां दी गईं। इससे उनकी बेहोशी कुछ कुछ दूर हुई और उन्होंने बहुत ही धीमे स्वर से पूछा कि एजंट साहब कहां हैं? इस बात को सुन तुरन्त एलिस साहब के पास सवार भेजा गया। पहिला सवार उनको ऊपर लिखा हुआ समाचार सुना ही रहा था कि इतने में दूसरा सवार भी उनके पास जा पहुंचा। उसने कहा कि आपको महाराजा साहिब ने महल में शीघ्र बुलाया है। एलिस साहब ने अपने साथ डाक्टर एलन को लेकर राजभवन की

---

* Letter to Major Malcolm—20th November 1853.

ओर पयान किया। उस समय महाराज जनानखाने के पास के एक कमरे में लाये गये थे। एलिस साहब के पहुंचने पर महाराज को बहुत आनन्द हुआ। वे प्रेम-पूर्वक उनसे बोलने का प्रयत्न करने लगे; परन्तु उनकी बेहोशी की ओर ध्यान देकर साहब ने उनको बोलने का निषेध किया। डाक्टर साहब ने रोग का पूर्ण-रूप से निदान विचार कर महाराज से औषधि खाने के लिये आग्रह-पूर्वक निवेदन किया। परंतु महाराज ने हिन्दू-धर्म की हानि समझ अंगरेजी औषधि खाने से इनकार किया। बहुत कुछ कहने सुनने पर गंगाजल डालकर अंगरेजी औषधि खाना उन्होंने स्वीकार किया। डाक्टर एलन साहब ने अपने बंगले पर जाकर तुरंत बहु-मूल्य औषधि एक ब्राह्मण के हाथ राजमहल में भेज दी। दुर्भाग्यवश महाराज ने अंगरेजी औषधि को पान करने से इनकार किया।

हा भारत, तेरा दुर्भाग्य! खाने पीने की छूत-छात से ही तूने अपना नाश किया! तेरे बालकों ने सदैव से धर्म का सहारा लेकर सृष्टि के आदि से तेरी मान-मर्यादा की ध्वजा सारे संसार में एक बार फहरा दी थी। उन्होंने देश देशान्तरों में जाकर वहांके लोगों को सत्योपदेश देकर तेरे वैदिक धर्म के विजय का डंका सारी दुनिया में बजा दिया था। उसकी ध्वनि को सुनकर आजकल के विदेशी विद्वान भी चक्कर खाते हैं। परन्तु कुछ समय से तेरे सपूतों ने इतनी संकीर्णता स्वीकार की है कि जरा जरा सी बातों में भी धर्म्म की ओट में वे लोग तेरा नाम और यश डुबाने को तत्पर हैं! यद्यपि धर्म के नाम पर लोग नाना प्रकार के अनर्थ कर रहे हैं तथापि उससे वे अपने धर्म की हानि नहीं समझते; परन्तु जिससे देशहित, समाज-हित और स्वहित होने की आशा है उसको वे अधर्म कहते हैं! यही इस देश का दुर्भाग्य है!

महाराज गंगाधरराव ने अंगरेजी औषधि न खाने का हठ किया। वैद्य और हकीम तो जवाब दे ही चुके थे; अब डाक्टर की औषधि न खाकर उससे भी निराश होना पड़ा! इस विषय में सर एडविन अर्नोल्ड नाम के एक अंगरेज ग्रन्थकार ने इस प्रकार लिखा है—

"He (Maharaja Gangadhar Rao) might have lived to have male heirs, and perpetuate a Hindoo throne at Jhansi; but although complaisant in politics he was orthodox and would not taste the medicines of the English doctor."

अर्थात्, महाराजा गंगाधरराव को पुत्र-लाभ होकर झांसी में हिन्दू राजाओं की गद्दी सदा बनी रहती; परन्तु, यद्यपि वे राजकीय विषयों में सुशील थे तथापि प्राचीन धर्मावलम्बी होने के कारण उन्होंने अंगरेज-डाक्टर की औषधि को खाना स्वीकार नहीं किया।

महाराजा गंगाधरराव ने मृत्यु से पहले एक और खलीता बुंदेलखंड के पोलिटिकल एजंट, मेजर मालकम साहब, के पास भिजवा दिया था। इसमें भी वही बातें लिखी गई थीं जो एलिस साहिब के खलीते में थीं। इस खलीते में विशेष बात यह थी कि, सन् १८१७ ई० में, रामचन्द्रराव के साथ जो संधि हुई थी, उसके निम्न वाक्यों पर सरकार का ध्यान दिलाया गया था:—"झांसी-राज्य और बृटिश–सरकार की मित्रता चिरकाल बनी रहे, इस हेतु, बृटिश–सरकार, रामचन्द्रराव को तथा उनके वारिसों को, और उन वारिसों के उत्तराधिकारियों को, बुंदेलखंड में अंगरेजी-अमलदारी के आरंभ में जो प्रांत शिवराव भाऊ के आधीन था उसके, और सम्प्रीत झांसी–राज्य के आधीन जो प्रांत हैं उनके, वंशपरम्परागत स्वामी नियत करके, यह स्वीकार करती है कि, वे उन प्रांतों के स्वाधीन राजा रहेंगे"। अंत में इस खलीते में गंगाधरराव ने यह भी लिखा था कि "मैंने इस खलीते का सब हाल मेजर एलिस और कप्तान मार्टिन साहिब को स्पष्ट रीति से समझा दिया है। मैंने अपने वंश के, आनन्दराव नाम के, एक बालक को गोद लिया है; इस विषय का खलीता मैंने उन्हींको दे दिया है। मुझे विश्वास है कि वे उसे आपकी सेवा में अवश्य भेजेंगे।"

इस प्रकार सब बातों की व्यवस्था हो जाने पर महाराजा गंगाधरराव को दृढ़ विश्वास और पूर्ण संतोष हुआ कि, बृटिश-सरकार हमारी अंतिम प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करेगी और झांसी का राज्य चिर-

काल तक हमारे घराने में बना रहेगा। उन्होंने महारानी लक्ष्मीबाई को अपने समीप बुलाकर बहुत कुछ समझाया और कहा कि, "तुम किसी प्रकार की चिंता मत करो। बृटिश--सरकार को सारा हाल विदित कर दिया गया है। मुझे आशा है कि मेरी प्रार्थना पर सरकार अवश्य ध्यान देगी। मेरे पीछे, अंगरेज--सरकार की कृपा से, तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न होगा"। परंतु, दुर्भाग्य-वश, महाराजा गंगाधरराव की मृत्यु--समय की अंतिम प्रार्थना पर, और झांसी के राज-घराने के साथ बृटिश--सरकार की जो मित्रता थी उस पर भी, गवर्नर--जनरल साहब के दरबार में कुछ ध्यान न दिया गया; और अंत में एक हिंदू--अबला को व्यर्थ कष्ट सहना पड़ा! इस विषय में, इंग्लैण्ड के पार्लिमेन्ट के एक मेम्बर, मिस्टर डब्लू. एम. टारेन्स (W. M. Torrens) साहब ने इस प्रकार लिखा है:—

"The Rajah wrote to the Governor-General respectfully commending his youthful choice to his consideration and care, and asking for the recognition of his widow as Regent during the minority. He appealed to the second article of the subsisting treaty, which guaranteed the territory to heirs of his family in *perpetual succession, whether heirs by descent, consanguinity, or adoption*, and he trusted that, "in consideration of the fidelity he had always evinced towards Government, favour might be shown to this child." *He was allowed to die in the delusion that native fidelity would be remembered.* The Empire was grown so strong that the autocrat of Fort William thought it could afford to forget fidelity."

भावार्थ—महाराजा गंगाधरराव ने गवर्नर--जनरल साहिब को जो खलीता भेजा था उसमें उन्होंने अपने दत्तक-पुत्र पर कृपादृष्टि रखने की विनय-पूर्वक सिफारिश की थी, और यह लिखा था कि दत्तक-पुत्र की बाल्यावस्था में मेरी स्त्री राज्य की प्रबंधकर्ती (रीजेन्ट) नियत की जावे। उन्होंने उस खलीते में संधिपत्र की दूसरी धारा का प्रमाण दिया था, जिसके द्वारा झांसी-राज्य का हक़ उनके वंशजों को वंशपरम्परा के लिये प्राप्त हुआ था—ये वंशज चाहे उसी वंश में उत्पन्न हुए हों, या सगोत्री हों या दत्तक लिये गये हों। उनका यह विश्वास था कि 'मैंने अंगरेज--सरकार के साथ जो सदैव राज-भक्ति का बर्ताव किया है उसके बदले मेरे दत्तक-पुत्र पर निस्सन्देह कृपा की

जायगी।' उनका देहान्त, इसी भ्रम में रहते हुए, हो गया, कि अंगरेज सरकार इस देश के लोगों की राजभक्ति का अवश्य स्मरण रक्खेगी। परंतु अंगरेजी-राज्य की जड़ इतनी मज़बूत हो गई थी, कि कलकत्ते के स्वायत्ताधिपति गवर्नर-जनरल साहिब बहादुर इस देश के लोगों की राज-भक्ति को भलीभांति भुला दे सकते थे!

तारीख २१ नवम्बर सन् १८५३ ई. को महाराज का हाल कुछ और ही दिखाई पड़ने लगा। नाड़ी का चलना बंद हो गया। मृत्यु के भयंकर चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। चारों ओर उदासीनता छा गई। महाराजा गंगाधरराव ने शांति और धैर्यपूर्वक इस मृत्युलोक का त्याग किया! इस संसार में जन्म-मृत्यु और सुख-दुःख प्राणिमात्र को लगा हुआ है। कविकुल-चूड़ामणि कालिदास की, "मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम", इस उक्ति के अनुसार कोई भी शरीरधारी मृत्यु से बच नहीं सकता।

महाराजा गंगाधरराव की मृत्यु का समाचार शीघ्र ही सारे शहर में फैल गया। राज-महल में रोना पीटना आरंभ हो गया। हा! प्रिय पति की मृत्यु से हमारी चरित्रनायिका कोमलांगी लक्ष्मीबाई की क्या दशा हुई होगी! अब तो उन पर मानो वज्रपात हुआ! केवल अठारह वर्ष की छोटी अवस्था में उन्हें यह कठिन और दुस्सह वैधव्य-दशा प्राप्त हुई! उनकी उस समय की दशा का महान् दुखदाई वर्णन इस क्षुद्र लेखक की लेखनी से नहीं हो सकता।

महाराज के मरने पर उनकी लाश स्मशान में राजसी ठाठ के साथ पहुंचाई गई। जिस समय लाश चिता पर रक्खी गई उस समय झांसी के एजंट एलिस और कप्तान मार्टिन और इर्रेग्युलर क्यावेलरी के सिपाही अशुभ-सूचक वस्त्र पहिनकर वहां आये थे। स्मशान में झांसी के सब सरदार, रईस और प्रजागण इस शोक से शोकित हो चारों ओर हाहाकार शब्द करते हुए दिखलाई पड़ते थे। मेजर एलिस, कप्तान मार्टिन और कई एक अंगरेज इस दुखःदाई समय में महारानी को शान्ति देने के लिये राजमहल में पधारे। वे लोग लक्ष्मीबाई को धैर्य और शान्ति के वाक्य

कहकर बिदा हुए। झांसी का राज्य-कोष वहां के किले में था। उसका प्रबंध करने के लिये एलिस साहब किले पर गये। वहां जाकर उन्होंने देखा कि खजाने में अनुमान २,४५,७३८ रुपये हैं। उस पर उन्होंने, कोषाध्यक्ष पंडित ज्वालानाथ के समक्ष, मुहर लगाकर, सब मकानों में ताले डाल दिये; और किले के संरक्षणार्थ महाराज सेंधिया-नरेश की कंटिन्जंट फौज की नवीं पलटन के १००।१५० सिपाही नियत कर दिये। महाराज की मृत्यु के पश्चात किसी प्रकार की गड़बड़ न होने पावे, इस लिये, झांसी-दरबार के मान्यवर लोगों से मिलकर साहब बहादुर ने अपना सब काम ठीक कर लिया। उधर कप्तान मार्टिन साहब ने भी सेना का प्रबंध बड़ी उत्तमता-पूर्वक किया।

झांसी के महाराजा गंगाधरराव की मृत्यु का समाचार, असिस्टेंट पोलिटिकल एजंट मेजर एलिस साहब ने, बुंदेलखंड के पोलिटिकल एजंट मेजर मालकम साहब को, तारीख २१ नवम्बर सन् १८५३ ई. को, लिख भेजा था। इस पत्र के पहुंचते ही उन्होंने हिन्दुस्थान-सरकार के फारेन (पर-राज्य संबंधी) सेक्रेटरी के सूचनार्थ २५ नवम्बर को इस प्रकार पत्र भेजा:—

"मान्यवर,

"१. श्रीयुत गवर्नर-जनरल साहिब बहादुर को यह समाचार लिखते मुझे दुःख होता है कि झांसी के महाराजा गंगाधरराव का, तारीख २१ नवम्बर को, देहान्त हो गया।

"२. मृत्यु के एक दिन पहले महाराज ने पांच वर्ष का एक लड़का, दामोदर गंगाधरराव नाम का, गोद लिया, और कहा कि यह हमारा नाती है; परंतु मुझे ऐसा मालूम होता है कि यह लड़का महाराज के पूर्वज, रघुनाथराव, की पांचवीं पीढ़ी में से है, और उसको अंगरेजी रीत्यनुसार महाराज का चचेरा भाई मानना चाहिये।

"३. मेजर एलिस साहब ने, महाराज की भेंट और उनकी मृत्यु के विषय में, जो पत्र मेरे पास भेजे थे वे श्रीमान की सेवा में

अवलोकनार्थ भेजे जाते हैं। उसी प्रकार महाराज ने आनन्द-राव नामक लड़के को गोद लेने के बारे में जो एक खलीता मेरे पास, उसी तारीख़ को, भेजा है, वह भी इसीके साथ भेज दिया गया है।

"४. मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि झांसी के महाराज ने अपनी मृत्यु के समय यकायक गोद लेने का विचार किया, यह देखकर झांसी-दरबार के प्रत्येक मनुष्य को आश्चर्य हुआ होगा। क्योंकि सब लोग यह आशा करते थे कि राज्य की सारी सम्पत्ति महारानी के जीते जी उन्हींके आधीन रखने की प्रार्थना बृटिश-सरकार से की जावेगी। परंतु जब उन्होंने यह देखा कि झांसी के उस सूबेदार (शिवराव भाऊ) के वंश में, जिसके साथ बृटिश-सरकार ने प्रथम संधि की थी, कोई भी वारिस नहीं है, और न अपने ही वंश में कोई निकट का सम्बन्धी रिश्तेदार है, तब उन्होंने दत्तक लेने का विचार किया होगा।

"५. हिन्दुस्थान-सरकार के सूचनार्थ मैं झांसी-राजघराने का एक वंश-वृक्ष इस पत्र के साथ भेजता हूं। इस वंशवृक्ष से यह विदित होगा कि यह लड़का महाराज के पूर्वज, प्रथम रघुनाथराव, के वंश का है।

"६. मैंने मेजर एलिस साहब को तारीख २ को एक सूचनापत्र भेजा था; उसकी एक प्रति हिन्दुस्थान-सरकार के पास तारीख ३ को भेज दी गई है। उसी सूचनापत्र के अनुसार मेजर साहब अपनी कार्रवाई कर रहे हैं। जबतक झांसी राज्य की व्यवस्था के सम्बन्ध में सरकार की अंतिम आज्ञा विदित न होगी तबतक स्वर्गवासी महाराजा की दत्तक-विधि की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जावेगा।

"७. झांसी-राज्य का बृटिश-सरकार से किस प्रकार का सम्बन्ध है, यह दिखलाने के लिये नीचे कुछ थोड़े से प्रमाण भी दिये जाते

हैं, जो सरकार को निस्सन्देह ग्राह्य होंगे। इन बातों का उचित विचार करने से यह प्रकट होगा कि झांसी के महाराजा को, अपने राज्य का किसी को उत्तराधिकारी बनाने का, हक़ है या नहीं।

"८. सन् १८०४ ईसवी में बुन्देलखंड से हमारा सम्बन्ध हुआ। उस समय हमने शिवरावभाऊ के साथ, उनको पेशवा के नौकर और मांडलिक समझकर, संधि की। जब, सन् १८१७ ईसवी में, पेशवा ने झांसी के सब हक़ बृटिश-सरकार को दे दिये, तब हमने शिवरावभाऊ के नाती, रामचन्द्रराव, को झांसी-राज्य का स्वामित्व वंशपरम्परा के लिये दिया। इसी लिये उनको, सन् १८३२ ई० में, सूबेदार के बदले **राजा** का खिताब दिया गया।

"९. रामचन्द्रराव का देहान्त सन् १८३५ ईसवी में हुआ। उनके कोई पुत्र न था। इस कारण, मुझे स्मरण है कि, झांसी का राज्य खालसा करने का प्रश्न उठाया गया था। परन्तु उस समय शिवरावभाऊ के दो पुत्र, रघुनाथराव और गंगाधरराव, जीवित थे, ऐसा देखकर राज्य का हक़, उन्हींको क्रम क्रम से दिया गया। अब गंगाधरराव की मृत्यु से उनके वंश का अंत हो गया है।

"१०. मुझे इस समय यह भी लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि, सन् १८३५ ईसवी में, जब रामचन्द्रराव ने मृत्यु पाई तब झांसी-राज्य पर दो आदमियों ने अपना हक़ प्रकट किया था। एक उनका दत्तक-पुत्र, और दूसरा उनकी स्त्री का दत्तक-पुत्र; परन्तु उस समय उन दोनों के हक़ नामंजूर किये गये। उस समय जो पत्रव्यवहार हुआ था उससे यह मालूम होगा कि, झांसी का राज्य जिन शर्तों पर बृटिश-सरकार के आधीन हुआ है उनके अनुसार, वहांके राजा या रानी को सरकार की आज्ञा बिना दत्तक लेने का अधिकार नहीं है।

"११. महाराजा गंगाधरराव ने अपने पश्चात राज्यभार जिस स्त्री को सौंपने की इच्छा प्रकट की है वह अत्यंत योग्य और लोक-प्रिय है। वह राजकाज करने के लिये सब प्रकार से समर्थ है; परंतु वर्तमान समय के विचारों पर ध्यान देते हुए मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि, सरकार इस प्रदेश को अपने स्वाधीन करने में विलंब नहीं करेगी। ऐसी दशा में मुझे यह विश्वास है कि, सरकार की ओर से रानी साहबा को, स्वर्गवासी राजा की सारी निज-संपत्ति और झांसी का राजमहल देकर, उनकी मान-मर्यादा पूर्ण-रीति से बनाये रखने और उनके कुटुम्बी पुरुषों को सुख से रहने के लिये, कुछ मासिक द्रव्य देकर, उनको प्रसन्न रखने की आज्ञा होगी।

"१२. रानी साहबा के यथार्थ खर्च के लिये कितना द्रव्य नियत किया जाय, यह बतलाना कठिन काम है। बुंदेलखंड में मरहटों का यही एक अंतिम घराना है; और जिन कारणों से पेशवा और विनायकराव के पास से धर्मार्थ द्रव्य मिलने की आशा थी उनके न रहने से, इस राज्य के सब आश्रितजन उदर-पोषणार्थ रानी साहबा ही के पास आवेंगे। इन सब बातों पर ध्यान देकर मैं यह सूचित करता हूं कि, रानी साहबा को ५०००) मासिक से कम न दिया जावे।

"१३. झांसी का राज्य बहुत दिनों से हमारे आधीन है। उसकी व्यवस्था मेजर रास साहब ने उत्तम प्रकार से की। अतएव मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि, यदि सरकार इस राज्य को खालसा करने का विचार करे, तो उसकी व्यवस्था, उसीके पड़ौसी सेंधिया-सरकार के प्रान्त के समान, करने में हम लोगों को कुछ भी कठिनाई नहीं पड़ेगी।

"१४. यदि सरकार इस प्रांत को मेरे आधीन रखना चाहे तो मैं तैयार हूं। परंतु मुझे, और मेरे सहकारी मेजर एलिस साहब को,

माल के महकमे का कुछ भी अनुभव नहीं है; और मुझे ग्वालिअर और बुंदेलखंड के राज्य-संबंधी बखेड़ों का निवटारा करने के लिये बारबार दौरे पर जाना पड़ता है। इसलिये मैं विनय-पूर्वक यह सूचित करता हूं कि, बुंदेलखंड के जो जिले जबलपुर के कमिशनर, कप्तान अर्स्किन साहब, के आधीन हैं उन्हींमें यह प्रांत भी शामिल कर दिया जावे."

एक कहावत है कि "जैसे मालिक, वैसे नौकर!" जब कि गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौसी ने सतारा, नागपुर, तंजौर आदि बड़े बड़े देशी-राज्यों को बृटिश-सिंह के अघोरी उदर में भर दिया था, तब उनके विश्वसनीय पोलिटिकल एजंट मालकम साहिब को, अपने स्वामी के कार्यों के अनुकरण करने की, इच्छा क्यों न होगी ? देशी-राजाओं के कर्ता-धर्ता पोलिटिकल एजंट ही होते हैं। उनके जी में जो आता है उसे वे पूर्ण-रूप से करही दिखलाते हैं। जब मेजर मालकम साहब जैसे पोलिटिकल एजंट ने, झांसी-राज्य को अंगरेजी-राज्य में मिला लेने के लिये, अपनी विद्वत्ता से भरी हुई रिपोर्ट सरकार के पास भेजी, तब भला उसपर सरकार विचार क्यों न करेगी ? इस समय मालकम साहब ने अपनी बहादुरी और चातुर्यता दिखलाने का जो साहस किया उसका एक और विशेष कारण यह है कि, सतारा, नागपुर, तंजौर आदि प्राचीन राज्य, वहांके रेसिडेंटोंही की अनुमति से, नष्ट होकर अंगरेजी-राज्य में मिला लिये गये थे। फिर भला अवसर पाकर मालकम साहब अन्य रेसिडेंटों से पीछे क्यों रहते ? अपनी रिपोर्ट सरकार के पास भेजकर उन्होंने झांसी के बन्दोबस्त का उद्योग आरंभ किया। झांसी में, महाराजा सेंधिया की कंटिन्‌जंट फौज में से छटवीं पलटन का एक भाग और बंगाल-नेटिव-इन्फेंट्री की एक पलटन रखने का निश्चय किया गया; और झांसी और करेरा नाम के दो किलों के बंदोबस्त के लिये, ब्रिगेडियर पार्सन्स साहब से, चार पलटनें और लेने की व्यवस्था की गई।

इधर झांसी-दरबार के लोगों का, दत्तक-पुत्र के नाम पर राज्य चलाने का, पूरा विश्वास था। क्योंकि महाराजा गंगाधरराव ने अपने जीते जी

ही पोलिटिकल एजन्ट के सन्मुख गोद लेने का सारा काम किया था। उन्होंने बृटिश-सरकार को खलीता भेजकर, दत्तक स्वीकारार्थ, प्रार्थना भी की थी। उन्हें उनके स्वीकार होने की, इसी बात से, आशा थी कि, सन् १८१७ ईसवी में, रामचन्द्रराव के साथ जो शर्तें हुई थीं उनके अनुसार झांसी का राज्य उन्हींके घराने में वंशपरम्परा स्थिर रखने का वचन बृटिश-सरकार ने दिया था; और झांसी-राज्य की व्यक्त की हुई कृतज्ञता तथा बृटिश-सरकार की, समय समय पर की हुई, सहायता को ऐसी दयालु सरकार कदापि भुला नहीं सकती।

तीसरा अध्याय

झांसी-राज्य की स्वाधीनता का नाश और अंगरेज़ी-अमलदारी का आरम्भ।

" नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण "।

इस संसार में ऐसा कौन है जो सदा एकही स्थिति में बना रहे? जिसे आज हम सुखी देखते हैं वही कल किसी न किसी कारण से दुःखी हो जाता है। जिस प्रकार मनुष्य को सुख-दुःख होता है उसी प्रकार राष्ट्र या देश भी कभी उन्नत दशा और कभी अवनत दशा में रहता है। जो देश वैभव-गिरि के अत्यंत ऊंचे शिखर पर पहुंच जाते हैं वे यकायक नष्ट भी होजाते हैं; और जो निरंतर दुर्दैव-पङ्क में फँसे पड़े रहते हैं वे, अल्प समय में, उन्नतावस्था को प्राप्त हो जाते हैं। यह इस कालचक्र की विचित्र गति की लीला है! पाठकों को इस बात का अनुभव, हिन्दुस्थान में अंगरेजी-राज्य के विस्तार की ओर थोड़ासा ध्यान देने से, हो जायगा। जिन लोगों को, इस देश में, अपने व्यापार के हेतु, सन् १७१२ ई० में, दिल्ली के बादशाह का परवाना हासिल करने के लिये, अत्यंत दीनता से बिनती करनी पड़ी थी;* और जिन लोगों के अधीन, सन् १७५२ ई० में, सिर्फ ३ कोठियां और २० वर्ग-मील भूमि थी; उन्हीं लोगों का राज्य-विस्तार, सन् १८५७ ई० में, ६५०००० वर्गमील होगया, और इस समय तो सारा हिंदुस्थान उनके अधीन है! मुसलमान बादशाहों ने जो कार्य ८०० वर्ष में भी पूरा न कर पाया उसको इन चतुर, वणिक-वृत्ति और कुटिल राजनीति-निपुण लोगों ने सौ डेढ़ सौ वर्ष ही में बड़ी उत्तमता से कर दिखाया!!

---

* बंगाल के गवर्नर साहब ने दिल्ली के बादशाह को, उस समय, जो पत्र भेजा था उसमें लिखा है कि:—

ऐसा कहा जाता है कि, जिस समय अंगरेज इस देश में व्यापार के लिये आये उस समय उनके मन में राज्य-प्राप्ति की इच्छा न थी। सन् १७८२ ई० में वारन हेस्टिंग्ज ने इस देश के राजाओं और प्रजा पर जो अत्याचार किया था उसका, इंग्लैण्ड की पार्लिमेण्ट-सभा में, विचार करते समय, यह निश्चय किया गया था कि, "हिंदुस्थान में अपने राज्य का विस्तार करने, या वहां का मुल्क अपने कब्जे में लेने का प्रयत्न करना, बृटिश-राजनीति, इज्जत और इच्छा के विरुद्ध है।" परंतु यह निश्चय छः वर्ष से अधिक समय तक न ठहरने पाया। सन् १७९० ई० में लार्ड कार्नवालिस ने टीपू सुलतान पर चढ़ाई की और उसका आधा राज्य हस्तगत कर लिया! फिर ९ वर्ष के बाद, सन् १७९९ ई० में, लार्ड वेलस्ली साहब ने टीपू सुलतान का सारा राज्य ही अपने अधीन कर लिया!! थोड़े ही दिनों के बाद कर्नाटक-प्रांत और अवध के नवाब से लिया हुआ प्रांत अंगरेजी-राज्य में मिला लिया गया!!! इससे कोर्ट आफ डायरेक्टर्स को बहुत संतोष हुआ; परंतु अल्प समय में ही उनके राज्य की मर्यादा बहुत बढ़ जाने के कारण उन्होंने

"The supplication of John Russel, who is as the minutest grain of sand, and whose forehead is the tip of his footstool, who is the absolute monarch and prop of the universe, whose thrown may be compared to that of Soloman's, and whose renown is equal to that of Cyrus...... The Englishmen, having traded hitherto in Bengal, Orissa and Behar custom-free (except in Surat), are your Majesty's most obedient slaves, always intent upon your commands. We have readily observed your most sacred orders, and have found favour; we have, as becomes servants, a deligent regard to your part of the sea.........We crave to have your Majesty's permission in the above-mentioned places, as before, and to follow our business without molestation."

भावार्थः— जान रसल, बालू के एक छोटे से छोटे कण के समान है। उसका मस्तक आपके पैर रखने का स्टूल है। आप स्वतंत्र सम्राट और संसार के आधार-स्तम्भ हैं। आपके तख्त की तुलना सुलेमान के तख्त से की जा सकती है, और आपकी कीर्ति साइरस के समान है। अंगरेजों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा में बिना महसूल दिये व्यापार करने की इजाजत दी गई है; अतएव वे आपके आज्ञाधारी दास हैं। आपकी जो कुछ आज्ञा हो उसको पालने के लिये वे सदा तत्पर हैं। हम लोगों ने आपकी पवित्र आज्ञाओं का सदा पालन किया है...........अब हमारी यही प्रार्थना है कि उक्त स्थानों में बिना किसी रोक टोक के हम लोगों को व्यापार करने की इजाजत बनी रहे।

घबराकर पुन: निश्चय किया कि अब हिंदुस्थान में राज्य-प्राप्ति का कोई प्रयत्न न किया जाय *। परंतु इस प्रतिज्ञा का पालन भी बहुत दिनों तक न हो सका। अंगरेजों को अपने देश की इच्छा, इज्जत और नीति—wish, honour and policy of the Nation—के विरुद्ध, अपनी पार्लिमेण्ट की प्रतिज्ञा का भङ्ग करके, हिंदुस्थान में अपने राज्य का विस्तार अधिकाधिक बढ़ाना पड़ा। अर्ल आफ मोइरा के गवर्नर जनरल होते ही नैपाल-युद्ध आरम्भ हुआ जिससे बहुत बड़ा प्रांत बृटिश-सरकार के अधिकार में आ गया। पाठकगण, अब हम आपको कहां तक गिनावें! जितने गवर्नर जनरल भारतवर्ष में आये सबों ने, अपनी अपनी बुद्धिमानी से, कुछ न कुछ राज्य, जिस तरह बना उस तरह, ले लिवाकर, बृटिश-राज्य की वृद्धि की। तात्पर्य यह कि ब्रह्मदेश, आसाम, कुर्ग, सिंध, पंजाब आदि बड़े बड़े प्रदेश अंगरेजी-अमलदारी का सुख भोगने के लिये अंगरेज-सरकार के अधीन हो गये। जब लार्ड डलहौसी, सन् १८४८ ई० में, यहां आये तब उन्होंने देखा कि, इस देश में कुछ देशी रियासतें ऐसी हैं जो बृटिश-सिंह के पंजे से बची हुई हैं। उनको स्वतंत्र रहने देना उचित नहीं-उनकी स्वतंत्रता से अंगरेजी-राज्य को कुछ लाभ होने की आशा नहीं। अतएव उनको बृटिश-राज्य का सुख प्रदान करने के लिये उन्होंने एक अद्भुत युक्ति निकाली। अर्थात् उन्होंने यह निश्चय किया, कि जो देशी रियासतें लावा-

* "The territories which we have lately acquired.........are of so vast and extensive a nature, that we cannot take a view of our situation without being seriously impressed with the wisdom and necessity of that solemn declaration of the Legislature, that to pursue schemes of conquest and extention of dominion in India, are measures repugnant to the '*wish, honour* and *policy*' of the British Nation."

इसका भावार्थ यह है:—हमारे नूतन-प्राप्त-राज्य की मर्यादा इतनी विस्तृत है कि, जब हम अपनी वर्तमान स्थिति का विचार करते हैं तब आईन बनानेवालों की उस गंभीर सूचना की बुद्धिमत्ता और आवश्यकता हमारे मन पर अङ्कित हुए बिना नहीं रहती, जिससे यह निश्चय किया गया था कि हिन्दुस्थान में राज्यप्राप्ति या राज्य-विस्तार का काम करना, बृटिश-राजनीति, इज्जत और इच्छा के विरुद्ध है।

रिस होती जाँय वे बृटिश-राज्य में शामिल कर ली जाया करें और जिन रियासतों को दत्तक लेने के लिये सरकार की मंजूरी लेनी पड़ती है उनको लावारिस समझकर बृटिश-राज्य में शामिल कर लेना चाहिये। इस विषय में उनका जो मत था वह उन्होंने स्वयं इस प्रकार प्रकट किया है:—

"I cannot conceive it possible for any one to dispute the policy of seizing the advantage of any just opportunity for consolidating the territories that already belong to us, by taking possessions of States which may lapse in the midst of them; for thus getting rid of these petty intervening principalities, which may be a means of annoyance, but which can never, I venture to think, be a source of strength; for adding to the resources of the public treasury and for extending the universal application of our system of Government to those whose best interests, I sincerely belive, will be promoted thereby." "It is my strong and deliberate opinion that, in the exercise of a wise and sound policy, the British Government is bound not to put aside or neglect such rightful opportunities of acquiring territory or revenue as may from time to time present themselves, whether they arise from the lapse of subbordinate States by the failure of all heirs of every description whatever, or from the failure of heirs natural, when the succession can be sustained only by the sanction of Government being given to the ceremony of adoption according to Hindu law."

इसका भावार्थ यह है—"मैं किसी के लिये यह मुमकिन नहीं समझता कि वह इस राजनीति पर कोई एतराज कर सके, कि जो मुल्क पहलेही से अपने कब्जे में है, उसके बीच में, यदि कोई ऐसी छोटी छोटी रियासतें हों जो लावारिस हो गई हों तो उन्हें अपने कब्जे में लेकर, उचित अवसर आ पड़ने पर, अपने मुल्क का आयतन बढ़ाया जाय—उसकी तरक्की की जाय। इन छोटी छोटी रियासतों से, हम लोगों को, सिर्फ तकलीफ ही मिल सकती है। मेरी समझ में, ये हमारे राज्य की मजबूती का कारण हो नहीं सकतीं। अतएव इनको अपने राज्य में मिला लेने से, इनसे होनेवाली तकलीफें दूर हो जायँगी और हमारे खजाने की बढ़ती भी हो सकेगी। ऐसा करने से उन रियासतों को हमारी राज्यप्रणाली का लाभ अवश्य होगा—मैं यह कह सकता हूं कि इसीमें उन रियासतों की हर तरह की भलाई है। यह मेरी पक्की और विचारपूर्वक निश्चित राय है कि, अपनी उचित और बुद्धिमत्ता-पूर्ण राजनीति से काम लेने में अंगरेजी-गवर्नमेन्ट का यह आवश्यक कर्तव्य है कि, मुल्क ले लेने या आमदनी

बढ़ाने के ऐसे उचित मौकों को, जो आपही आप, समय समय पर, हाथ आवें, कभी न छोड़ना चाहिए। ऐसे मौके चाहे इस तरह पैदा हों कि रियासत का किसी किसम का कोई वारिस ही न हो; चाहे इस तरह कि असली वारिस न होने से, अंगरेज-सरकार के इजाजत देने ही पर, हिन्दूशास्त्र के अनुसार गोद लेकर, कोई वारिस बनाया जा सकता हो। इन दोनों मौकों को हाथ से निकल जाने देने की भूल कदापि न करना चाहिए।" अंगरेजी-राजनीति की महिमा अपरम्पार है!

इन्हीं विचारों से, लार्ड डलहौसी ने, भारतवर्ष की प्राचीन रियासतों को बृटिश-राज्य में मिला लेने का दृढ़ संकल्प किया। दैवयोग से सतारा के अंतिम महाराज छत्रपति शाहजी स्वर्गवासी हुए और डलहौसी साहब ने दत्तक लेने की मंजूरी न दी! बस, महाराष्ट्रियों के केन्द्रस्थान की गद्दी खाली हो गई और सतारा का राज्य बृटिश-राज्य में मिला लिया गया। इसी प्रकार नागपुर, तंजौर आदि बड़ी बड़ी रियासतें बृटिश-राज्य में मिला ली गईं; और अब डलहौसी साहब की दृष्टि झांसी-प्रांत की ओर झुकी।

जिस समय बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजन्ट मालकम साहब की रिपोर्ट भारत-सरकार के पास पहुंची उस समय गवर्नर जनरल साहब अवध-प्रांत में दौरे पर गये थे। जब चार पांच महीने बीत गये और सरकार की ओर से कुछ जवाब न आया तब महारानी लक्ष्मीबाई ने एक खलीता, मेजर एलिस साहब के द्वारा, भारत-सरकार को भेजा। उसका सारांश यह है:—

"इस प्रान्त में, बृटिश-सरकार का राज्य स्थापित होने से पहले, हमारे ससुर शिवरावभाऊ ने, सरकार की जो सहायता की थी वह झांसी के दफ्तर से प्रकट होती है। इस सहायता के बदले बृटिश-सरकार ने हमारे घराने पर जो कृपादृष्टि की थी उससे हमारा सदा कल्याण हुआ है।"

"सन् १८४२ ई० में, हमारे पति महाराज गंगाधरराव के साथ, कर्नल स्लीमन साहब ने जो संधि की थी उससे, सन् १८१७ ई. में रामचंद्र-राव के साथ की हुई संधि की शर्तें रद्द नहीं की गईं; किंतु यह वचन दिया

गया था कि वे सब शर्तें पूर्ववत् पाली जायंगी और उन शर्तों से होनेवाले सब फ़ायदे झांसी-राज्य को प्राप्त होंगे।"

"शिवरावभाऊ के माननीय बर्ताव और बृटिश-सरकार के संबंध में उनके हृदय के अटल प्रेम की ओर ध्यान देकर; और उन्होंने अपनी मृत्यु के समय जो इच्छा प्रकट की थी, कि झांसी का राज्य रामचंद्रराव को वंशपरम्परा के लिये दिया जाय, उसका स्वीकार करके, उक्त संधि की गई है।"

"झांसी-सरकार का प्रेमभाव और विश्वास दृढ़ करने के हेतु, उक्त संधि से यह निश्चय हो चुका है कि रामचंद्रराव, उनके वारिस और गद्दी-नशीन, शिवरावभाऊ के राज्य के वंशपरम्परा के स्वामी हैं। इसका अर्थ यही है कि, स्वर्ग में मोक्ष-प्राप्ति के हेतु, अपने पश्चात् उत्तर-क्रिया करने के लिये, जो दत्तक-पुत्र लिया जायगा उसको बृटिश-सरकार मंजूर करे और उसके द्वारा घराने का नाम क़ायम रक्खे।"

"हिन्दूशास्त्र के अनुसार मृत-पिता को पिंड-दान करने और उसकी श्राद्धादि क्रिया करने का अधिकार, औरस-पुत्र के समान, दत्तक-पुत्र को भी है। इसी लिये दत्तक लेने की रीति सारे भारतवर्ष में प्रचलित है। इसी रीति के अनुसार हमारे मृत-पति ने १९ नवम्बर को, दीवान नरसिंह-राव आपा, लाला लाहौरीमल, लाला तट्टीचंद आदि अनेक सज्जनों के सन्मुख मुझे बुलाकर यह कहा कि मेरा स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया है और अब औषधियों से कुछ लाभ नहीं होता। अतएव, गद्दी का वारिस होने के लिये, अपने गोत्र के किसी एक योग्य बालक को, हिन्दूशास्त्र के अनुसार, गोद लेने का मेरा इरादा है।"

"तब उन्होंने रामचंद्रबाबा को बुलाकर, अपने गोत्र के अनेक बालकों में से, वासुदेवराव के पुत्र आनंदराव नाम के पांच वर्ष के बालक को पसंद किया। अनंतर विद्वान् पंडितों और शास्त्रियों को बुलाकर दत्तक-बिधान किया गया। दूसरे दिन सबेरे पंडित विनायकराव ने संकल्प पढ़ा

और आनन्दराव के पिता वासुदेवराव ने यथाविधि पुत्रदान किया। इस पुत्र का नाम दामोदरराव गंगाधरराव रक्खा गया और दत्तकविधि समाप्त की गई।"

"महाराज की आज्ञानुसार, मेजर एलिस और कप्तान मार्टिन साहब को, दत्तक-विधि के समय, राजमहल में पधारने के लिये, निमंत्रण पत्र भेजा गया था। उसके अनुसार वे दोनों २० तारीख को १० बजे राजमहल में आये थे। उस समय हमारे पति ने, सरकार की इजाजत हासिल करने के लिये, उनको एक खलीता दिया, जो वहीं पर पढ़कर उन्हें सुनाया गया था। मेजर एलिस साहब ने यह वचन दिया था कि महाराज की इच्छानुसार हम सरकार को सब हाल सूचित कर देंगे।"

"दूसरे दिन, अर्थात् सोमवार तारीख २१ नवम्बर को, हमारे पति का देहान्त हुआ। उनका सारा क्रियाकर्म दामोदरराव गंगाधरराव ही ने किया।"

"इस बालक को, हमारे पति ने, बृटिश-सरकार की कृपा के अधीन किया है। अब उसकी रक्षा और पालन का भार उन्हीं पर है। सरकार से हमारी अन्तिम प्रार्थना यह है कि, जिस प्रकार दतिया के राजा परिछित, जालौन के बालाराव और ओरछा के तेजसिंह के लिये हुए दत्तकों को सरकार ने मंजूर किया, उसी प्रकार इस दत्तक को भी सरकार अपनी मंजूरी दे। झांसी के संधिपत्र में (Dawam) "हमेशा" शब्द का उपयोग किया गया है—यह शब्द उक्त राजाओं के संधिपत्रों में प्रयुक्त नहीं हुआ है—अतएव, उन राजाओं की अपेक्षा दत्तक लेने का हमारा हक़ अधिक है।"

यह खलीता गवर्नर जनरल साहब की सेवा में भेजा गया। महारानी लक्ष्मीबाई की प्रार्थना स्वीकार कराने के लिये, झांसी के पोलिटिकल एजन्ट मेजर एलिस साहब ने, तारीख २४ दिसम्बर १८५३ ई० को, एक पत्र में यह लिखा था कि "जिस तरह ओरछा के राज्य के साथ हमने संधि की है उसी तरह झांसी के राज्य के साथ भी की है। दोनों संधियों का आशय एकसा है। ऐसी अवस्था में, एक राज्य को दत्तक की मंजूरी देना और दूसरे

को न देना उचित नहीं है। कोर्ट आफ़ डायरेक्टर्स ने अपने, तारीख २७ मार्च १८३९ ई० के, पत्र में यह स्वीकार किया है कि देसी राजाओं को दत्तक लेने का पूरा हक़ है। अब यदि यह बहाना किया जाय कि जिन घरानों को, बृटिश-सरकार ने, पूर्व सहायता के बदले, राजपद पर चढ़ाया है, वे अन्य घरानों के समान, प्राचीन नहीं हैं; और यदि इसी बहाने से उनका हक़ क़बूल न किया जाय; तो मेरी राय में यह बात डायरेक्टरों की आज्ञा के विरुद्ध और उनकी उदारता का नाश करने के समान होगी।" परंतु यह पत्र, बुंदेलखण्ड के पोलिटिकल एजंट के दफ़्तर ही में, बहुत दिनों तक, पड़ा रहा!

झांसी की गद्दी को खाली देखकर, गंगाधरराव के प्राचीन निवास-स्थान खानदेश के रहनेवाले, भाईबन्दों में से, सदाशिवराव नारायण नामके किसी एक मनुष्य ने, झांसी का राज्य पाने के लिये, मेजर मालकम साहब को एक प्रार्थना-पत्र भेजा। इस प्रार्थना-पत्र को गवर्नर जनरल की सेवा में भेजते समय, तारीख ३१ दिसम्बर १८५३ ई० को, मालकम साहब ने, अपनी सिफ़ारसी चिट्ठी में यह लिखा था कि "...... if the claims of the heirs male of the ancestors of the late Raja are admitted, this individual is actually the nearest relative left to claim the Gadi on these grounds." अर्थात्, 'यदि मृत-राजा के पुरखों के किसी वारिस का हक़ कबूल करना हो तो यह मनुष्य सबसे ज्यादा नजदीक का रिश्तेदार है जो गद्दी पाने का हक़दार हो सकता है।' परंतु वहां तो महाराज गंगाधरराव के निज दत्तक ही का अधिकार स्वीकृत होने में कठिनाइयां पड़ रही थीं; ऐसी अवस्था में दूसरे अधिकारियों को कौन पूछता है!

जब सन् १८५४ ई० के फ़रवरी महीने में, लार्ड डलहौसी साहब दौरे से कलकत्ते को वापस आये, तब झांसी-राज्य का विचार आरंभ हुआ। भारत-सरकार के परराज्यसंबंधी सचिव, मिस्टर जे. पी. ग्रान्ट साहब ने झांसी-राज्य की एक बहुत बड़ी मिसल तैयार की। उसमें झांसी-राज्य की प्राचीनता और उसके साथ बृटिश-सरकार के सम्बन्ध का संक्षिप्त इतिहास देकर, इसी बात पर जोर दिया गया था कि झांसी का राज्य अंग-

रेजी-राज्य में मिला लिया जाय। इसपर वादविवाद करके, लाट साहब और उनके कौन्सिलर लोगों ने जो निश्चय किया, वह नीचे लिखे हुए सरकारी रिज़ोल्यूशन (मन्तव्य) से विदित होगा:—

हिन्दुस्थान के गवर्नर जनरल लार्ड डलहौसी साहब का रिज़ोल्यूशन।

१. झांसी के महाराज गंगाधरराव का देहान्त सन् १८५३ ई० के नवम्बर मास के अंत में हुआ। उनके कोई पुत्र नहीं था। इस लिये उन्होंने, अपनी मृत्यु के एक दिन पहले, एक लड़के को दत्तक लिया। महाराज गंगाधरराव की स्त्री, महारानी लक्ष्मीबाई, यह प्रार्थना करती हैं कि भारत-सरकार, उक्त दत्तक पुत्र को, झांसी की गद्दी का वारिस क़बूल करे।

२. सेक्रेटरी ने झांसी-राज्य का जो संक्षिप्त वृत्तांत (नोट) लिखा है उससे यह बात स्पष्ट विदित होती है कि बृटिश-सरकार और झांसी-राज्य का संबंध किस प्रकार का है। इस बात पर विचार-पूर्वक ध्यान देकर और झांसी-राज्य के साथ पहले से जो हमारा पत्रव्यवहार हुआ है उसपर ध्यान देकर, मैं इस विषय पर अपनी सम्मति प्रकट करता हूं कि, झांसी के राजा साहब के अधीन जो प्रांत था उसकी उचित व्यवस्था किस प्रकार की जानी चाहिये।

३. मेरी यह राय है कि इस प्रांत का स्वत्व बृटिश-सरकार के हाथ में आ गया है। उस स्वत्व को बृटिश-सरकार के हाथ में रहने देना ही हक़ और राजनीति की दृष्टि से, उचित होगा।

४. जिन सिद्धान्तों के अनुसार झांसी-राज्य की व्यवस्था की जानी चाहिए उनका पूरा पूरा विचार, हाल ही में, नागपुर और टेहरी के राज्यों के संबंध में वादविवाद करते समय, किया जा चुका है। बुंदेलखंड की छोटी छोटी रियासतों के विषय में, लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर चार्लस मेटकाफ साहब ने, जो नियम बतलाया है और जिसका स्वीकार सरकार ने सन् १८३७ ई० में कर लिया है, उसपर ध्यान देने से; और आश्रित राज्यों के विषय में, सन् १८४६ ई० में, कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने जो नियम निर्धारित किया है, उसपर विचार करने से, यही निश्चय होता है कि

झांसी-राज्य को लावारिस समझकर अंगरेजी-राज्य में मिला लेने का हमको पूर्ण अधिकार है।

५. जिस लेख में उक्त सिद्धान्तों का वर्णन है उसको मैं यहां प्रकाशित करता हूं:—

कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने यह स्पष्ट रीति से कहा है कि "भारतवर्ष में सर्व-साधारण नियम और रूढ़ि के अनुसार जो रियासतें, सतारा-राज्य के समान, स्वतंत्र नहीं हैं उनका स्वामित्व, सार्वभौम-सरकार की अनुमति के बिना, किसी दत्तक-वारिस को प्राप्त नहीं हो सकता। इस प्रकार की अनुमति देने के लिये हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से, किसी प्रकार के वचनों से, बद्ध नहीं हैं। और जब इस प्रकार की अनुमति दी न जायगी, तभी ऐसा समझा जायगा, कि हमने अपने कब्ज़े में आये हुए प्रांत की भलाई की ओर उचित ध्यान दिया है।"

बुँदेलखंड के राजाओं के विषय में, सर चार्लस मेटकाफ साहब लिखते हैं—"प्रश्न यह है कि, क्या जिनकी औरस संतान नहीं है वे दत्तक लेकर, अन्य वारिसों का हक़, या जब कोई वारिस ही न हो तब सार्वभौम-सरकार को प्राप्त होनेवाला हक़, मार सकते हैं? क्या सरकार इस प्रकार के दत्तक को स्वीकार करने के लिये बद्ध है?"

"इस प्रश्न का निर्णय करते समय ऐसे राजाओं में, जो वंशपरम्परागत गद्दी के हक़दार हैं, और उन जागीरदारों में, जिन्हें उक्त राजाओं से या सार्वभौम-सरकार की ओर से जागीर मिली है, जो भेद है उसपर फ्रेज़र साहब ने ध्यान नहीं दिया।"

"इस लिये मेरी यह राय है कि, यदि हिन्दू राजाओं की औरस सन्तान न हो तो उन्हें दत्तक लेने का हक़ है; और ऐसे दत्तक को, यदि वह हिन्दूधर्मशास्त्र के अनुसार हो तो, बृटिश-सरकार अवश्य मंज़ूर करे।"

"अब, जिन जागीरदारों को राजा की ओर से जागीर मिली हो उनके उत्तराधिकारी नियत करने का अधिकार, उन्हीं राजाओं को है जिन्होंने जागीर प्रदान की थी; या जागीर-दान के शर्तों के अनुसार, उन लोगों

को है जिन्होंने युद्ध करके या अन्य किसी तरह उन जागीरदारों के हक़ स्वयं अपने अधीन कर लिये हैं। इन शर्तों का ख़ास मतलब यही रहता है कि, औरस सन्तान के सिवा दत्तक-पुत्र या अन्य कोई वारिस न हो। अतएव ऐसे मामलों में, जिन राजाओं ने जागीर प्रदान की है उन्हें, या उनके स्थान में स्थापित होनेवाले अन्य राज्याधिकारियों को, यह अधिकार है कि जब कोई जागीर, औरस पुत्र के न होने से, लावारिस हो जाय तब उसको वापस ले लें।"

६. झांसी का राज्य, सतारा के समान, किंबहुना उससे भी अधिक "आश्रित" है। वह सार्व-भौमत्व के नाते से बृटिश-सरकार के दिये हुए इनाम के तौर पर, एक जागीरदार के क़ब्ज़े में था। अतएव, औरस पुत्र न होने से, उसको वापस लेने का अधिकार बृटिश-सरकार को है।

७. यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि झांसी का राज्य "आश्रित" है। वह स्वतंत्र राज्य कभी नहीं था; इतना ही नहीं, किन्तु टेहरी का राज्य जितना स्वतंत्र माना जाता है, उतना भी वह नहीं है। वस्तुतः झांसी टेहरी का ही एक भाग है, जिसको टेहरी के प्रधान स्वामी पेशवा ने किसी एक सूबेदार को सौंप दिया था।

सन् १८०४ ई० में, शिवरावभाऊ के साथ बृटिश-सरकार ने जो संधि की थी उसमें भी यही लिखा है कि "झांसी के सूबेदार पेशवा के आश्रित हैं"। जिन्होंने सन् १८०३ ई० में लार्ड लेक साहब को 'वाजिब-उल-अर्ज़' लिख दिया वे, शिवरावभाऊ, ख़ुद यह बात कबूल करते हैं कि "पेशवा की आज्ञानुसार मैं इस प्रांत का राज-काज करता था।"

जब शिवरावभाऊ ने भारत-सरकार से यह प्रार्थना की थी कि, संधि के अनुसार हमारे पोते को गद्दी दी जाय, तब उन्हें यही उत्तर दिया गया था कि "पेशवा की सम्मति के बिना यह कहने का हमको कुछ अधिकार नहीं है कि झांसी का राज्य वंशपरम्परा के लिये चलाया जायगा।"

जिस समय यह पत्रव्यवहार हो रहा था, उस समय इस बात का भी निर्णय किया गया था, कि झांसी के सूबेदार किस दर्जे के हैं।

बुंदेलखंड में गवर्नर जनरल के जो एजंट हैं उन्होंने, लिखा है कि "कागद-पत्रों के देखने से यह विदित होता है कि भाऊ झांसी-राज्य का कारबार स्वतंत्र मालिक के तौर पर न करते थे, किंतु वे 'आमिल'—सूबेदार—के तौर पर वहां काम करते थे। उनकी सूबेदारी को क़ायम रखना पूना-दरबार की आज्ञा पर अवलम्बित है।"

इन सब कागद-पत्रों से यह बात सिद्ध होती है कि झांसी की सूबेदारी पेशवा के 'आश्रित' है और उसको वंशपरम्परा के लिये चलाने का अधिकार पेशवा ही को है। इसी सिद्धान्त को मानकर, अंगरेज़-सरकार ने सन् १८१५ ई० में, रामचंद्रराव को सूबेदारी का अधिकार देना उचित समझा; क्योंकि उन्होंने (अंगरेज़-सरकार ने) यह सोचा कि "यदि हम रामचंद्रराव को गद्दी पर बिठलावें तो यह काम पेशवाओं का स्वामित्व अपनी ओर ले लेने और उनका मन दुखाने के समान होगा। इससे यह भी पाया जायगा कि बृटिश-सरकार ने रामचंद्रराव का हक़ क़बूल किया।"

यद्यपि सन् १८१७ ई० में, झांसी-राज्य का पेशवाओं का सब स्वामित्व बृटिश-सरकार की ओर आ गया, तथापि सरकार ने यह क़बूल नहीं किया कि रामचंद्रराव का हक़ झांसी-राज्य पर वंशपरम्परा के लिये है। परंतु बृटिश-सरकार के साथ शिवरावभाऊ की अच्छी मित्रता थी; इस लिये उनकी इच्छा के अनुसार, जो प्रांत उनके क़ब्ज़े में था वह कुछ शर्तों पर, रामचंद्रराव को वंशपरम्परा के लिये दिया गया। अतएव सन् १८१७ ई० के संधिपत्र की दूसरी धारा के अनुसार "जिस प्रांत का शिवरावभाऊ उपभोग करते थे उसके रामचंद्रराव और उनके उत्तराधिकारी मालिक हुए।"

इस तरह, यद्यपि झांसी के सूबेदार को वंशपरम्परा के लिये गद्दी मिल गई, तथापि उनका दर्जा छोटा ही बना रहा और सन् १८३२ ई० तक उन्हें राजा का पद प्राप्त नहीं हुआ।

सन् १८३५ ई० में रामचंद्रराव का देहान्त हुआ। उन्होंने अपनी मृत्यु के एक दिन पहले एक लड़के को, गद्दी का वारिस बनाने के लिये, गोद लिया था; परंतु उसको सरकार ने मंजूर नहीं किया। उनके पश्चात् उनके चाचा, रघुनाथराव, को राज्याधिकार प्राप्त हुआ। रघुनाथराव सन् १८३८ ई० में परलोक सिधारे। उनके बाद उनके भाई, गंगाधरराव, को गद्दी पर बैठाला। वही गंगाधरराव हाल में परलोकवासी हुए हैं।

८. गंगाधरराव का कोई औरस पुत्र नहीं है। इसी तरह, जिन्हें झांसी का राज्य वंशपरम्परा के लिये दिया गया था उन रामचन्द्रराव का भी कोई औरस पुत्र नहीं है। जब से झांसी-राज्य के साथ बृटिश-सरकार का संबंध हुआ तब से वहां जिन सूबेदारों या राजाओं ने राज्य किया उनमें से किसी एक का भी औरस पुत्र नहीं है। अतएव, वंशपरम्परा के लिये चलनेवाले झांसी-राज्य का कोई भी वारिस नहीं है।

९. गंगाधरराव ने अपनी मृत्यु के एक दिन पहले जो लड़का गोद लिया है वह, वंशवृक्ष के अनुसार, बहुत दूर का संबंधी प्रतीत होता है। जो मनुष्य आसन्न-मरण है उसकी की हुई दत्तक-विधि संशय-युक्त समझी जाती है। इस मामले में तो संशय के और भी विशेष कारण हैं। यह बात सब लोगों को विदित है कि मृत राजा साहब ने दत्तक लेने का विचार, इससे पहले, कभी प्रकट नहीं किया था। पोलिटिकल एजंट ने भी अपनी रिपोर्ट में यही लिखा है कि "झांसी के राजा साहब ने मरते समय यकायक दत्तक लेने का विचार किया। इससे मैं समझता हूं कि झांसी-दरबार के प्रत्येक मनुष्य को आश्चर्य हुआ होगा। सब लोग यही समझते थे कि वे अपना सब राज्य अपनी रानी के अधीन रहने देने के लिये सरकार से प्रार्थना करेंगे। परंतु ऐसा मालूम होता है कि दत्तक का यह अड़ंगा इस लिये लगाया गया होगा कि बृटिश-सरकार ने झांसी के जिस सूबेदार के साथ प्रथम संधि की थी, उस शिवरावभाऊ के वंश में कोई भी वारिस नहीं है।

१०. महारानी लक्ष्मीबाई ने गवर्नर-जनरल साहब को जो खलीता भेजा है उसमें उन्होंने यह बिनती की है कि जिस तरह बुंदेलखंड के

टेहरी, दतिया और जालौन के राज्यों का, दत्तक लेने का, हक़ मंजूर किया गया है उसी तरह झांसी का भी मंजूर किया जाय।

टेहरी और दतिया स्वतंत्र राज्य हैं। उनके उत्तराधिकारियों के नियम झांसी सरीखी 'आश्रित' रियासत को लगाये नहीं जा सकते। हां, यह बात सच है कि यद्यपि जालौन भी एक 'आश्रित' रियासत है तथापि उसको दत्तक लेने का अधिकार दिया गया है। परंतु इसके संबंध में यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि, जब बृटिश-सरकार किसी समय स्नेह-बद्ध होकर, या राजनैतिक विचारों से, किसी रियासत को दत्तक लेने की आज्ञा देती है, तब उसका यह अर्थ नहीं करना चाहिये कि सरकार ने उस रियासत का या अन्य रियासतों का दत्तक लेने का हक़ क़बूल कर लिया। यह मानने के लिये भी कोई प्रमाण नहीं है कि जालौन-रियासत को उक्त अधिकार प्राप्त हो गया है; क्योंकि जब से दत्तक लिया गया है तब से यह रियासत सरकार ही के अधीन समझी जाती है।

११. वर्तमान दत्तक को मंजूर करने के लिये, रानी साहबा ने एक और कारण बतलाया है। वह यह है कि सन् १८१७ ई० के संधिपत्र की दूसरी धारा के अनुसार बृटिश-सरकार ने यह क़बूल किया है कि रामचंद्रराव और उनके वारिस और उनके पश्चात् गद्दी पर बैठनेवाले, झांसी के वंशपरम्परा के जागीरदार हैं। इस पर से यह बात क़बूल नहीं की जा सकती कि सरकार का यह इरादा था कि "यदि कोई भी लड़का गोद लिया जाय तो उसको बृटिश-सरकार वारिस मुक़र्रर करेगी।"

इस विषय पर अधिक वादविवाद की आवश्यकता नहीं है। इसका निर्णय दफ़्तर के ऐतिहासिक प्रमाणों ही से हो चुका है। पहले रामचंद्रराव ने भी दत्तक लिया था; परंतु सरकार ने उसको मंजूर नहीं किया और राज-पद एक दूसरे ही मनुष्य को दिया। यह बात सब लोगों को विदित है।

१२. ऊपर लिखी हुई बातों से यह सिद्ध होता है कि झांसी एक 'आश्रित' रियासत है। वहां के अधिकारी, "सार्वभौम सरकार की

सनद के अनुसार जागीर पाये हुए" बुंदेलखंड के अन्य 'आश्रित' जागीरदारों में से, एक जागीरदार हैं। अतएव, "जिन्होंने जागीर दी है, या जिन्होंने जागीर देनेवालों का हक़ युद्ध करके या अन्य उपाय से प्राप्त कर लिया है, उनको जागीर-दान की शर्तों के अनुसार उत्तराधिकारी नियत करने का पूरा अधिकार है। इन शर्तों का ख़ास मतलब यही रहता है कि औरस पुत्र के सिवा, दत्तक-पुत्र या अन्य कोई, वारिस न हो। इसी तरह यह भी सिद्ध हुआ है कि मृत राजा के कोई औरस पुत्र नहीं है; और झांसी के जिन सूबेदारों या राजाओं के साथ बृटिश-सरकार का कुछ समय तक सम्बन्ध था, उनमें से किसी एक का भी कोई वारिस नहीं है। अंत में यह भी सिद्ध हुआ है कि अंतिम राजा (गंगाधरराव) की दत्तक लेने की इच्छा उनकी प्रजा को भी मालूम न थी; और जिस राजा (रामचंद्रराव) को बृटिश-सारकार की ओर से झांसी का राज्य वंशपरम्परा के लिये दिया गया था उसके लिये हुए दत्तक को भी सरकार ने मंज़ूर नहीं किया।

इन सब बातों से यह स्पष्ट विदित होता है कि मृत राजा गंगाधरराव का लिया हुआ दत्तक नामंज़ूर करने का हक़ सरकार को निस्सन्देह है।

१३. औरस-पुत्र न होने के कारण झांसी-राज्य को खालसा करने का सरकार को पूर्ण अधिकार है।

वास्तव में सरकार को इस प्रांत से कुछ फ़ायदा या लाभ नहीं है क्योंकि वह बहुत बड़ा राज्य नहीं है और उसकी आय भी थोड़ीसी है। परंतु वह सरकारी मुल्क में है। यदि वह सरकार के कब्ज़े में आ जाय तो हमको बुंदेलखंड के अपने सब प्रांतों की अन्दरुनी राज्य-व्यवस्था सुधारने में कोई कठिनाई न होगी। यदि झांसी का राज्य हमारे कब्ज़े में आ जाय तो वहां की प्रजा का अत्यंत कल्याण होगा। इस विषय के संबंध में कुछ थोड़ीसी बातें स्वानुभव से नीचे लिखी जाती हैं।

१४. रामचंद्रराव के बाद दो आदमी झांसी की गद्दी पर बिठलाये गये। पहले रघुनाथराव को गद्दी दी गई। वे कुष्ठरोग से पीड़ित थे। उनकी

सिर्फ तीनही वर्ष की अमलदारी से यह बात प्रकट हो गई कि वे राज्य करने के योग्य नहीं हैं। पहले झांसी-राज्य की आमदनी १८ लाख रुपये थी। वह रामचंद्रराव के समय में कुछ थोड़ीसी घट गई थी; परंतु रघुनाथराव के समय में तो वह तीन ही लाख रह गई। दूसरी बार सरकार ने गंगाधरराव को गद्दी पर बैठाला। ये भी राज्य करने के योग्य न थे। इसी लिये बहुत दिनों तक राज्य के सब सूत्र हमने अपने हाथ में रक्खे थे और उनको कोई अधिकार नहीं दिया गया था।

१५. रानी साहबा ने, जालौन रियासत का उदाहरण देकर, दत्तक मंजूरी की प्रार्थना की है। परंतु दत्तक लेने से, उस रियासत की, जो दशा हुई है, वह किसी तरह अनुकूल नहीं है। सन् १८३२ ई० में, उस रियासत को दत्तक लेने की आज्ञा दी गई। उस समय उसकी आमदनी १५ लाख रुपये थी। आठ वर्ष के बाद वह आधे से भी कम हो गई। उस समय के गवर्नर जनरल ने, उस रियासत की दशा का, जो वर्णन किया है, उसका उल्लेख सेक्रेटरी ने अपने नोट में इस प्रकार किया है:— " इस रियासत का राजा ११ वर्ष की अवस्था का है। उसका पालन उसकी बहिन और मंत्री करते हैं। फ़जूल खर्च से, नौ दस वर्ष में, ३० लाख का ऋण हो गया है। राज्य में चारों ओर अंधेर मच गया है। गांव गांव में लूट-मार होने लगी है। खेती का काम बंद हो गया है और सब जमीन ऊजड़ हो गई है। जो प्रदेश किसी समय अच्छा उपजाऊ और आबाद था वह धीरे धीरे वैरान हो रहा है।"

१६. इस तरह झांसी और जालौन में, दत्तक और बे-क़ायदा वारिस मंजूर करने से, बुरे परिणाम हुए हैं। इन बातों से सचेत होकर मैं यह निश्चय करता हूं, कि राजनीति और कर्तव्य की ओर ध्यान देकर बृटिश-सरकार, झांसी-राज्य के संबंध में, अपना हक़ पूरे तौर से अमल में लावे; और गंगाधरराव के लिये हुए दत्तक को नामंजूर करके, और

झांसी को लावारिस समझकर, अँगरेज़ी-राज्य में मिला लेवें ।

पोलिटिकल एजन्ट की सूचना के अनुसार रानी साहबा को अच्छी तरह वेतन दिया जाय और उस प्रांत की व्यवस्था लेफ्टेनेन्ट गवर्नर के अधीन रहे ।　　तारीख २७ फ़रवरी सन् १८५४ ई०

झांसी की स्वाधीनता का नाश करने का जो उक्त निश्चय लार्ड डलहौसी साहब ने किया उसमें उनके कौन्सिलर डोरिन, लो और हालिडे साहब भी सहमत हुए । हा स्वार्थ ! तूने किसीको भी नहीं छोड़ा ! तू जिसके पीछे लग जाता है उसको अंधा किये बिना नहीं छोड़ता !! तेरे पास विवेक तो आने ही नहीं पाता ! और जब तू किसीको विवेक-भ्रष्ट करके अंधा कर देता है तब उसके मन में न्याय-अन्याय, कर्तव्य-अकर्तव्य, उचित-अनुचित आदि किसी प्रकार का विचार ही नहीं आता !! यही हाल लार्ड डलहौसी और उनके कौन्सिलरों (मंत्रियों) का हुआ ।

यह लिखते हमें बड़ा खेद होता है कि लार्ड डलहौसी और उनके मंत्रियों ने, झांसी और बृटिश-सरकार की परस्पर मित्रता पर, कुछ भी ध्यान न दिया । इतना ही नहीं; वरन् उन लोगों ने झांसी के राजाओं की कृतज्ञता और ख़ुद अंगरेज़-सरकार के, समय समय पर, दिये हुए वचनों पर भी कुछ ध्यान नहीं दिया । लार्ड डलहौसी साहब ने, झांसी को अंगरेज़ी-राज्य में मिला लेने के जो कारण बतलाए हैं उनपर, मेजर इवान्स बेल साहब ने, अपने "*Indian Empire*"—भारतवर्षीय साम्राज्य—नामके ग्रन्थ में ख़ूब कड़ी आलोचना की है । यह ग्रन्थ प्रत्येक विचारशील मनुष्य को अवश्य पढ़ना चाहिये । झांसी के संक्षिप्त इतिहास से यह बात भली भांति प्रकट होती है कि झांसी के राजाओं का बृटिश-सरकार के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध था; और उनके साथ "**दोस्त-सरकार**" का रिश्ता लगाकर '**वंशपरम्परा**' तक क़ायम रहनेवाली, अत्यन्त महत्व की,

कितनी संधियां की गई थीं। इन संधियों के वास्तविक अर्थ * की ओर ध्यान न देकर देशी रियासतों पर अपना हक़ साबित करना; हिन्दूधर्मशास्त्र

---

* बृटिश-सरकार ने जो संधियां की थीं उनके वास्तविक अर्थ के विषय में पार्लिमेन्ट-सभा के मेम्बर, मिस्टर डब्लू. एम. टारेन्स साहब ने यह लिखा है:—

" Treaties have throughout all time been for the most part brief in language, general in the terms employed, and confessedly intendend, not as exhaustive anticipations of all imaginable contingencies but as laying down broadly, and in simple forms of speech the outlines of peace and amity; upon the implied condition that the application of these terms to any and every case that might thereafter arise should be such as the common understanding of both communities would admit, or the judgment of an impartial arbiter declare. Tested by this obvious rule of international right, the guarantee of *perpetual inheritance* was undoubtedly intended, and undoubtedly understood, to imply the devolution of title, diginity and power to whatever heirs could, from time to time, establish their respective claims,—not according to the *lex loci* of the foreign and alien party to the compact, but according to the *lex loci* of the State whose autonomy the treaty had been confessedly framed to assure."

इसका भावार्थ यह है:—

संधियों की भाषा प्रायः संक्षिप्त होती है और शब्द साधारण अर्थ के द्योतक होते हैं। उनसे यह बात पाई नहीं जाती कि काल्पनिक और आकस्मिक भावी घटनाओं का निःशेष पूर्वज्ञान प्राप्त करके उन सब का यथोचित प्रबंध कर दिया गया है; परंतु उनका वास्तविक और निश्चित उद्देश यही होता है कि, सरल भाषा में, शांति और मित्रता के बन्धनों का स्थूल-वर्णन किया जाय। इन संधियों का संकेतार्थ भी यही होता है कि जब किसी मामले में जरूरत हो तब उनका उपयोग वैसाही किया जाना चाहिये जैसा दोनों पक्ष के लोगों को मंजूर हो, या जैसा किसी अपक्षपाती पंच के निर्णय से सिद्ध हो। यही परस्पर-व्यवहार-संबंधी हक़ का स्पष्ट नियम है। इस नियम के अनुसार जांच करने पर यही विदित होता है कि, जब वारिस का हक़ **वंशपरम्परा** के लिये (चिरकाल के लिये) दिया गया था, तब उसका यही अर्थ समझा गया था कि, समय समय पर, जो कोई वारिस होंगे उन्हें राज्य का सब हक़, अधिकार और वैभव प्राप्त होगा। इस बात का निर्णय विदेशियों के आईन के अनुसार किया नहीं जायगा; किंतु वह उस रियासत (राज्य) के कायदों के अनुसार किया जायगा, जिसकी स्वाधीनता की रक्षा के हेतु संधि की गई थी।

के अनुसार प्रत्येक देशी रियासत को दत्तक लेने का पूरा अधिकार है और उसमें हम कभी हाथ न डालेंगे, * ऐसा वचन देकर भी दत्तक नामंज़ूर करना; दत्तक लेने के संबंध में झांसी की प्रजा की प्रतिकूलता न होकर भी सिर्फ़ एक पोलिटिकल एजन्ट की रिपोर्ट से उसको संशयात्मक मानना; झांसी का अधिकार और दर्जा बराबरी का होकर भी उसके राजाओं की गणना कनिष्ठ श्रेणी में करना; रियासत के किसी पुराने बखेड़े का संबंध नई बातों से लगाकर अपनी ही सम्मति पर ज़ोर देना; और अंत में यह कहकर, कि झांसी-राज्य की प्राप्ति से हमारा कुछ लाभ नहीं है—हमने उसे झांसी की प्रजा के कल्याण ही के लिये लिया है—अपनी महान् उदारता का परिचय देना; यह सब लार्ड डलहौसी की अनुपम राजनीति का नमूना है। यह अत्यंत खेद की बात है कि, एक प्राचीन और सुप्रसिद्ध हिंदू-राजघराने को अपनी दृढ़ मित्रता, प्रेमभाव, सहायता और कृतज्ञता के पलटे, सारी दुनिया में न्याय का डंका बजानेवाले अंगरेज़-अधिकारियों से, इस प्रकार का पारितोषिक मिले! भर्तृहरि ने इस प्रकार की

---

१ *ईस्ट इन्डिया कम्पनी को इंग्लैन्ड के राजा तृतीय जार्ज की ओर से जो सनद मिली थी उसमें लिखा है कि:—

"And in order that regard should be had to the civil and religious usages of the said natives, be it enacted, that the rights and authorities of fathers of families and masters of families, according as the same might have been exercised by Hindu or Mahomedan law, shall be preserved to them respectively within their said families &c."

इसका भावार्थ यह है:—

उक्त देश के निवासियों के नागरिक (मुल्की) और धार्मिक रीति-रवाजों का यथोचित आदर करने के हेतु यह कायदा बनाया जाय कि, कुटुम्बों के पिता और स्वामियों के हक और अधिकार उसी प्रकार सुरक्षित रहेंगे जिस तरह वे, हिंदू या मुसलमानों के कायदों के अनुसार, बरते जाते थे।

कुटिल राजनीति का जो वर्णन किया है वह बहुत ठीक है:—

सत्याऽनृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या।
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च
वेश्याऽङ्गनेव नृपनीतिरनेक रूपा॥

इसका अर्थ यह है—कहीं सत्य और कहीं मिथ्या, कहीं कठोरता और कहीं प्रिय भाषण, कहीं हिंसा और कहीं दयालुता, कहीं स्वार्थसाधन और कहीं दान, कहीं नित्यव्यय और कहीं धन-संचय का व्यवहार करनेवाली राजनीति, वेश्या की भांति, अनेक रूप धारण करलेती है *।

उधर कलकत्ते की कौंसिल में बैठकर डलहौसी साहब ने झांसी को बृटिश-सरकार के राज्य में मिला लेने की आज्ञा दे दी; और इधर झांसी के महल में रहनेवाली लक्ष्मीबाई, पति-वियोग से दुःखित होकर, अपने दत्तक पुत्र की भावी दशा के विषय में, रात दिन चिंता कर रही थीं। तारीख ३ दिसंबर सन् १८५३ ई० को उन्होंने जो खलीता सरकार को भेजा था उसका जवाब, दो महीने व्यतीत होजाने पर भी, नहीं आया। तब उन्होंने तारीख १६ फ़रवरी सन् १८५४ ई० को एक और खलीता, मालकम साहब के मार्फ़त, गवर्नर जनरल को भेजा। इस ख़लीते में भी उन्हीं सब बातों का जिक्र किया गया था जिनसे झांसी के राजाओं का, दत्तक लेने का, हक़ साबित होता था। यह ख़लीता परिशिष्ट (ब) में प्रकाशित किया गया है। इस ख़लीते को मालकम साहब ने, तारीख २८ फ़रवरी सन् १८५४ ई० को, गवर्नर जनरल के पास भेज दिया और उसी के साथ अपनी ओर से एक पत्र भी भेजा जिसमें उन्होंने रानी साहबा के अनुकूल सम्मति दी थी। बड़े आश्चर्य की बात है कि जिस हाकिम ने

* लार्ड लिटन साहब ने भी अपने एक ग्रन्थ में यही विचार इस तरह प्रकट किये हैं— "The very science of Government is the science of concealing truth." (Earnest Maltravers. Book. IV. ch. IV. By Lord Lytton.)—अर्थात् राज्य-शास्त्र सत्य को छिपाने का शास्त्र है।

एकबार प्रतिकूल मत प्रकट किया था उसीने, इस समय, महारानी लक्ष्मीबाई के अनुकूल अपनी सम्मति दी! परंतु "का वर्षा जब कृषी सुखाने" इस कहावत के अनुसार, जब झांसी-राज्य के भाग्य का फैसला कलकत्ते की कौंसिल में हो चुका था, तब मालकम साहब की अनुकूल राय से क्या लाभ हो सकता था? यदि यही राय वे पहले जाहर करते तो निस्संदेह झांसी-राज्य की दुर्दशा न होती और न महारानी लक्ष्मीबाई को किसी प्रकार का कष्ट सहना पड़ता। होनहार को कौन टाल सकता है? परंतु विशेषता यही है कि, तारीख २८ फरवरी को मालकम साहब का उक्त पत्र कलकत्ते भेजा गया और उसके एकही दिन पहले, अर्थात् तारीख २७ फरवरी को, डलहौसी साहब ने, झांसी को अंगरेजी-राज्य में मिला लेने की आज्ञा दे दी! इसीको दैवयोग कहते हैं!

ऊपर लिखा हुआ खलीता भेजने के बाद, महारानी लक्ष्मीबाई और उनके दरबार के लोग, यह आशा कर रहे थे, कि अब दत्तक की मंजूरी शीघ्रही आ जायगी और झांसी का राज्य दामोदरराव के नाम से चलाया जायगा। इस संसार में हम लोग आशाही के सहारे से बहुत कुछ काम करते हैं। यदि यह आशा न होती तो हम लोग इस अथाह संसार-समुद्र में डूबकर मर जाते। परन्तु हम उसी आशा-रूपी कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर. इस असार संसार ही को सुख मान रहे हैं। यही हाल बेचारी लक्ष्मीबाई का था। वे अपने मन में यही आशा कर रही थीं कि राज्य के संबंध में अपने पति ने जो व्यवस्थापत्र सरकार को भेजा है वह अवश्य स्वीकृत होगा और अपने भेजे हुए खलीतों पर सरकार के दरबार में विचार किया जाकर अपने दत्तक-पुत्र, दामोदरराव को शीघ्र ही राज्याधिकार दिया जायगा। परंतु "मनसा चिंतयेत्कार्यम्, दैवमन्यत्र चिंतयेत्" इस उक्ति के अनुसार, महारानी लक्ष्मीबाई के भाग्य में कुछ और ही लिखा था। झांसी को अंगरेजी-राज्य में मिला लेने की, सरकार की, आज्ञा पाते ही बुंदेलखण्ड के पोलिटिकल एजन्ट मेजर मालकम साहब ने नीचे लिखा हुआ इश्तिहार मेजर एलिस साहब के पास भेज दिया:—

इश्तिहार।

" मेजर डी. ए. मालकम, पोलिटिकल एजंट गवालियर, बुन्देलखण्ड और रीवा की ओर से, यह प्रकाशित किया जाता है कि—

तारीख २१ नवम्बर सन् १८५३ ई० को महाराज गंगाधरराव का देहान्त हुआ। उन्होंने अपनी मृत्यु से पहले दामोदरराव को गोद लिया था; परंतु श्रीमान् गवर्नर जनरल साहब ने यह दत्तक नामंजूर किया। इस लिए भारत-सरकार की, तारीख ७ मार्च सन् १८५४ ई० की, आज्ञा के अनुसार, झांसी का राज्य बृटिश-राज्य में मिला लिया गया। इस इश्तिहार से सब लोगों को इत्तला दी जाती है कि सम्प्रति झांसी-प्रांत बुंदेलखंड के पोलिटिकल एजंट मेजर एलिस साहब के अधीन किया गया है। अब झांसी-प्रांत की सब प्रजा अपने को बृटिश-सरकार के अधीन समझकर मेजर एलिस साहब को कर दिया करे और सुख तथा संतोष से रहे। तारीख १३ मार्च सन् १८५४ ई. "

(हस्ताक्षर) डी. ए. मालकम.

हम इस बात का निर्णय नहीं कर सकते कि इस इश्तिहार से, झांसी के उन प्रजागणों का चित्त कितना उद्विग्न हुआ होगा जो लोग स्वराज्य का सुखोपभोग कर रहे थे। जिस समय झांसी को अंगरेजी-राज्य में मिला लेने का समाचार मेजर एलिस साहब ने महारानी लक्ष्मीबाई को सुनाया, उस समय वे अत्यंत शोक से मूर्च्छित हो गईं। कुछ होश आने पर, एलिस साहब ने उन्हें बहुतेरा समझाया और कहा कि पोलिटिकल एजंट की आज्ञानुसार " आपका उचित सन्मान किया जायगा और आपके निर्वाह की उदारता से व्यवस्था की जायगी *।" ऐसा कहकर जब एलिस साहब

---

* मालकम साहब ने गवर्नर जनरल की मंजूरी से यह निश्चय किया था कि महारानी लक्ष्मीबाई को ५००० रु० मासिक वेतन दिया जाय। यही उनकी 'उदारता की व्यवस्था'—liberal provision—थी। महारानी ने इसका स्वीकार नहीं किया।

जाने लगे तब लक्ष्मीबाई ने शोकाकुल होकर अत्यन्त दीनस्वर से कहा "मेरा झांसी देंगा नहीं * ।"

झांसी-राज्य की स्वाधीनता का नाश हो जाने के बाद, मेजर मालकम साहब ने, महारानी लक्ष्मीबाई के संबंध में, नीचे लिखी हुई सूचनाएं, भारत-सरकार को, स्वीकारार्थ भेजीं:--

१ महारानी लक्ष्मीबाई को झांसी के खजाने से, या जहां से वे पसंद करें वहां से, ५००० रुपये, हर महीने, जबतक वे जीती रहें, दिये जाँय।

२ झांसी का राजमहल महारानी लक्ष्मीबाई को, रहने के लिये, दिया जाय और उसपर उन्हींका स्वामित्व समझा जाय।

३ महारानी लक्ष्मीबाई के जीवन-समय में, उनपर या उनके नौकरों पर, बृटिश-सरकार की अदालत का कोई अधिकार न रहे।

४ स्वर्गवासी महाराज गंगाधरराव की इच्छा के अनुसार, उनके निजका धन, रियासत के लेनदेन का हिसाब करके जो बाकी रहे वह,

---

* *Dalhousie's Administration of British India* नामके ग्रंथ में इस विषय के संबंध में यह लिखा है—

"The notice of annexation was sent by this illustrious Lord to the Court of Regent. Ranee Luchmee Bai received the Agent of Lord Dalhousie most courteously, separated by a purdah. When the British representative informed her of this heart-rending news that Jhansi thenceforth ceased to belong to her, that it was in-corporated with the domains of the mighty English; Luchmee Bai, in a loud yet melodious voice, replied to the Agent of the English in these few significant words. "Mera jhansi denga nahe; (I will not give up my jhansi). Vain boast! Jhansi was annexed. The infant Anandrao's rights wer denied."

अर्थ—झांसी-राज्य को बृटिश-राज्य में मिला लेने की सूचना इस प्रतापी लार्ड साहबने अपने एजन्ट को दी। महारानी लक्ष्मीबाई ने एजन्ट साहब को परदे के बाहर आदर से बैठाया। जिस समय बृटिश-राज प्रतिनिधि ने महारानी को यह दुखदायी समाचार सुनाया कि अब झांसी-राज्य पर उनका स्वामित्व नहीं है—वह शक्तिमान अंग्रेजों के राज्य में मिला-लिया गया है--उस समय लक्ष्मीबाई ने ऊंचे, किंतु मधुर, स्वर से यह उत्तर दिया कि 'मेरा झांसी देंगा नहीं।' उनका यह अभिमान व्यर्थ हुआ! झांसी अंग्रेजी-राज्य में मिला ली गई और बालक आनन्दराव का हक़ नामंजूर किया गया।

और राज्य के सब जवाहिरात महारानी लक्ष्मीबाई को दिये जाँय। उनके रिश्तेदारों की एक फ़िहरिस्त बनाई जाय और उनके निर्वाह की कुछ व्यवस्था की जाय।

लार्ड डलहौसी साहब ने उक्त सब सूचनाएं स्वीकार कीं; परंतु मृत राजा की निज की सम्पत्ति और रियासत के जवाहिरात के संबंध में उन्होंने, अपने ता० २५ मार्च सन् १८५४ ई० के पत्र में, यह लिखा कि, यद्यपि गंगाधरराव का दत्तक-पुत्र आईन के अनुसार राज्य का अधिकारी नहीं हो सकता, तथापि उनकी निज की सम्पत्ति और रियासत के जवाहिरात आदि पर उसीका स्वामित्व है * । अतएव यह सम्पत्ति महारानी लक्ष्मीबाई को नहीं दी जा सकती। बस, इस आज्ञा के अनुसार, झांसी के पोलिटिकल एजंट साहब ने, झांसी के खज़ाने से ६ लाख रुपये निकालकर, दामोदरराव के नाम से अंगरेज़ी खज़ाने में जमा कर दिये और यह निश्चय किया कि जब दामोदरराव बालिग़ हों तब उनको यह द्रव्य व्याज सहित वापस दिया जाय। इसके अतिरिक्त रियासत के सब जवाहिरात और सोने चांदी के आभूषण आदि "दामोदरराव के वास्ते" लक्ष्मीबाई के अधीन कर दिये गये। जब राज्य ही चला गया तब राज-वैभव किस तरह रह सकता है! राजा रामचंद्रराव की मृत्यु के पश्चात् झांसी के सब राजा क़िले में रहते थे। अब पोलिटिकल एजन्ट की आज्ञा से महारानी लक्ष्मीबाई को, झांसी का क़िला खाली करके, शहर में जाकर, महल में रहना पड़ा।

ज्योंही झांसी का राज्य अंगरेज़ों के हाथ आगया त्योंही उन्होंने झांसी-राज्य की सेना को छः छः मास का वेतन देकर सदा के लिये बिदा कर दिया और उसके स्थान में अंगरेज़ी सेना की भरती की। बंगाल

---

* Cf:—"The adoption was good for the conveyance of private property rights, though not for the transfer of the principality."—*Minute of the Most Noble the Governor-General of India*, 25th March 1854.

दत्तक-पुत्र के अधिकार (हक़) के संबंध में इस प्रकार का प्रपंच हिंदूधर्मशास्त्र में नहीं है।

इनफ़न्ट्री की १२ वीं पलटन, क़िले की रक्षा के लिये, नियत की गई और यह निश्चय किया गया कि जब जरूरत हो तब सीप्री की छावनी से कप्तान ह्नेसे या ब्रिगेडियर हिल साहब से मदत ली जाय। झांसी के क़िले में जो युद्ध-सामग्री कई पीढ़ियों से इकट्ठी की गई थी वह भी इसी समय नष्ट कर दी गई और पेशवा के समय की बड़ी बड़ी तोपें निरुपयोगी कर डाली गईं! जिस समय झांसी-राज्य के स्वामिभक्त सेवक, अंगरेज़-सरकार से वेतन पाकर, अपने अपने घरों को जाने लगे, उस समय उनके चेहरों पर शोक और उदासीनता की छाया दिखाई पड़ती थी। वे मानों मन ही मन यह सोच रहे थे कि जिन राजाओं का हमने नमक खाया है उनके किसी कुसमय पर हम काम न आ सके! वीर-हृदय और युद्धप्रिय सैनिकों के मन की ये उमंगें मन ही में लीन हो गईं। क्या करें, जो कुछ भाग्य में लिखा था वही हुआ।

यद्यपि झांसी का प्राचीन और स्वतंत्र राज्य प्रचंड प्रतापी अंगरेजों के विस्तीर्ण राज्य में मिला लिया गया और वहां मेजर स्कीन साहब कमिश्नर के पद पर नियत किये गये, तथापि लक्ष्मीबाई को यह विश्वास था कि विलायत के लोग सत्यप्रिय और न्यायी होते हैं—वे बृटिश-न्याय को इस तरह कदापि कलंकित होने न देंगे। अतएव उन्होंने, लंदन के कोर्ट आफ़ डायरेक्टर्स से इस विषय का निर्णय कराने के लिये, उमेशचन्द्र बनर्जी नाम के एक बंगाली वकील और किसी एक युरोपियन को ६०००० रुपये देकर विलायत भेजा। खेद की बात है कि इसका कुछ भी पता नहीं लगता कि इन महाशयों ने वहां जाकर क्या काम किया! परंतु अन्तःपुर-निवासिनी हिंदू-अबला के सरल अन्तःकरण में यही आशा—व्यर्थ आशा- *

---

* इस विषय के संबंध में प्रसिद्ध इतिहासकार, सर जान के साहब ने यह लिखा है:—

"In vain the widow of the late Rajah, whom the Political Agent described 'as a lady bearing a high character and much respected by every one at Jhansi' protested that her husband's house had ever been faithful to the British Government,——in vain she dwelt upon

बनी थी कि इंग्लैंड के लोग बड़े न्यायी होते हैं; वे अन्याय से किसी का अधिकार नहीं छीन लेते। उस हतभागिनी को यह बात स्वप्न में भी न मालूम

services rendered in former days to that Government, and the acknowledgements which they had elicited from our rulers—in vain she pointed to the terms of the treaty which did not to her simple understanding bar succession in accordance with the laws and usages of her country—in vain she quoted precedents to show that the grace and favour sought for Jhansi had been yielded to other States. The fiat was irrevocable! It had been ruled that the interests both of the Jhansi State and the British Government imperatively demanded annexation 'As it lies in the midst of other British Districts' said Lord Dalhousie, 'the possession of it as our own, will tend to the improvements of the general internal administration of our possessions in Bundelkhand. That its incorporation with the people of Jhansi, a reference to the result of experience will suffice to show'. The results of experience have since shown to what extent the people of Jhansi appreciated the benefits of that incorporaion!"—*History of the Sepoy War.*

इसका भावार्थ यह है:—

झांसी का प्रत्येक मनुष्य जिनका अत्यंत आदर करता है और जिनका स्वभाव अत्यंत सुशील है वे, लक्ष्मीबाई, वृथाही इस बात पर ज़ोर देती रहीं, कि मेरे पति के घराने ने बृटिश-सरकार के साथ सदैव भक्तिपूर्वक बर्ताव किया है,—वे वृथाही इस बात का वर्णन करती रहीं, कि झांसी के राज-घराने ने सरकार की बहुत सहायता की है और सरकार ने भी उस सहायता का धन्यवाद-पूर्वक स्वीकार किया है—वे व्यर्थ ही संधियों की उन शर्तों पर सरकार का ध्यान दिलाती रहीं जो, उनके देश के नियम और रीति-रवाज के अनुसार, उत्तराधिकारी नियत करने के प्रतिकूल न थीं—वे व्यर्थ ही उदाहरण देकर यह प्रार्थना करती रहीं, कि जिस तरह अन्य रियासतों पर अनुग्रह किया गया है उसी तरह झांसी पर भी कृपा की जाय! परंतु सरकारी आज्ञा बज्र के समान अखण्डनीय थी। सरकार ने यह निश्चय किया था कि झांसी को अंगरेजी-राज्य में मिला लेने से दोनों का कल्याण होगा। लार्ड डलहौसी साहब ने लिखा है कि 'झांसी; सरकारी ज़िलों के बीच में है। अतएव उसको अपने कब्ज़े में ले लेने से हमको, बुंदेलखंड में अपने सब प्रांतों की अन्दरूनी राज्यव्यवस्था सुधारने में सुबीता होगा। झांसी को अंगरेजी-राज्य में मिला लेने से जो लाभ होगा वह हमारे अनुभव के कुछ फलों के उल्लेख से प्रकट होगा।' अब अनुभव के फलों से यह बात भलीभांति प्रकट हो गई है कि झांसी के लोगों ने इस मिलाप को कितना पसंद किया!

थी कि, लंदन के डायरेक्टरों की अदालत भी राज्य-लोभ में अंधी हो रही है और अपनी पहिली प्रतिज्ञाओं को विस्मरण करके वह अपने प्रतापी गवर्नर जनरल की कारवाई मंजूर कर लेगी। ता० २ अगस्त सन् १८५४ ई० को, डायरेक्टरों ने भी, झांसी-राज्य को बृटिश-राज्य में मिला लेने की आज्ञा दे दी!

मनुजी ने राजाओं के लिये यह नीति बतलाई है—"इदमेव नरेन्द्राणां स्वर्गद्वारमनर्गलम्। यदात्मनः प्रतिज्ञा च प्रजा च परिपाल्यते।" अर्थात् प्रजा-पालन और प्रतिज्ञा-पालन ही राजाओं का मुख्य धर्म है। इस सत्य नीति का अवलंब न तो लार्ड डलहौसी साहब ने किया और न कम्पनी के डायरेक्टरों की अदालत ही ने किया। अतएव बृटिश-राजनीति और बृटिश-न्याय के विषय में, इस देशवासियों के मन में, नाना प्रकार की शंकाएं उत्पन्न हुईं। मेजर इवान्स बेल साहब लिखते हैं:—"The little Rāj of Jhansi had been conspicuous in its loyal attachment and useful services to the British Government. Its absorption by the Suzerain, under the shallow pretence of a "lapse," was a proceeding not only most hateful and offensive in the eyes of all Native Princes and their ministers, but quite un-intelligible to them, except on the supposition of *bad faith*." इसका भावार्थ यह है:—झांसी का छोटासा राज्य बृटिश-सरकार की सेवा करने और अपनी राजभक्ति प्रकट करने में सबसे आगे था। उसको "लावारिस" के कमजोर बहाने से अपने कब्जे में ले लेने की, सार्व-भौम सरकार की कारवाई, इस देश के राजाओं और उनके मंत्रियों की दृष्टि में केवल घृणा के योग्य और कोपजनक ही न थी; किंतु उससे सरकार की बेइमानी के सिवा दूसरी बात ही उन लोगों के ध्यान में आ नहीं सकती थी।

जब झांसी-राज्य को अंगरेजी-राज्य में मिला लेने के कारण, बेल साहब के लेखानुसार, इस देश के राजाओं के मन की यह हालत हुई, तब स्वयं महारानी लक्ष्मीबाई और झांसी की प्रजा की क्या स्थिति हुई होगी? लार्ड डलहौसी साहब ने लिखा है कि "झांसी की प्रजा के कल्याण के लिये" झांसी का राज्य अंगरेजी-राज्य में मिला लिया गया है। परंतु देशी रियासतों की स्वाधीनता का नाश होते ही उनकी जो दुर्दशा हो जाती है उसका वर्णन जान सलिवन साहब ने *A Plea for the Princes of India* नाम के

ग्रन्थ में इस तरह किया है:—"Upon the extermination of a Native State, the Englishman takes the place of the Soveriegn, under the name of Commissioner; three or four of his associates displace as many dozen of the Native official aristocracy, while some hundreds of our troops take the place of the many thousands that every Native Chief supports. The little Court disappears—trade languishes—the Capital decays—the people are impoverished—the Englishman flourishes, and acts like a sponge, drawing up riches from the bank of the Ganges, and squeezing them down upon the banks of the Thames."

इसका भावार्थ यह है:—जब किसी देशी रियासत की स्वाधीनता का नाश किया जाता है तब कोई एक अंगरेज़, कमिश्नर बनकर, राजा के आसन पर आरूढ़ होता है; उसके तीन चार साथी, उतने ही (तीन चार) दरजन देशी-अधिकारियों को, पदच्युत कर देते हैं; और हमारे कुछ सौ सिपाही, हजारों देशी सैनिकों के स्थान पर, भरती किये जाते हैं। प्राचीन समय के दरबार का लोप हो जाता है—व्यापार बिगड़ जाता है-राजधानी नष्ट हो जाती है—लोग कंगाल हो जाते हैं और अंगरेजों की खूब उन्नति होती है। अंगरेज लोग, इसपंज के समान, गंगा के किनारे का (अर्थात् इस आर्यभूमि का) सब द्रव्य शोषण करके टेम्स नदी के किनारे (अर्थात् इंग्लैन्ड में) ले जाते हैं!

पाठकगण, आप स्वयं अपने मन में, इस बात का निर्णय कर लीजिये कि झांसी के बृटिश-राज्य में शामिल होजाने पर, उस रियासत के लोगों का कितना "कल्याण" हुआ !

अब महारानी लक्ष्मीबाई का भी कुछ हाल सुनिये। जबसे झांसी का राज्य बृटिश-राज्य में मिला लिया गया तबसे वे अपने दुःखमय जीवन के अन्तिम दिन बड़े कष्ट से बिताने लगीं। स्वराज्य-प्राप्ति की कुछ आशा न रहने के कारण, उन्होंने भक्ति-पूर्वक ईश्वर की आराधना करने में, अपनी आयु के शेष दिन बिताने का निश्चय किया। वह नित्य प्रातःकाल चार बजे स्नान करके आठ बजे तक पूजा करतीं; बादको अपने महल के आंगन में, घोड़े पर सवार होकर, कुछ व्यायाम करतीं; ग्यारह बजे फिर स्नान करतीं और दान-धर्म करके भोजन करती थीं। भोजन के बाद कुछ समय तक वे आराम करतीं। पश्चात् तीन बजे तक वे ११०० राम

नाम लिखकर आटे की गोलियां बनातीं और मछलियों को खिलाती थीं। संध्या को आठ बजे रात तक वे कथा पुराणादि सुनती थीं। उनका यही समय लोगों से मिलने अर्थात् भेट करने के लिये नियत था। पुराण की समाप्ति होने पर वे तीसरी बार स्नान करतीं और अपने इष्टदेव की भक्तिपूर्वक पूजा करके प्रसाद ग्रहण करती थीं। तब वे शयन-गृह में जाती थीं। यही उनकी उस समय की दिनचर्या थी। उस समय उनके घर का कारबार उनके पिता, मोरोपंत तांबे, देखते भालते थे।

इस प्रकार राजकीय वैभवों और सब राजभोगों का त्यागकर, वैराग्यवृत्ति से रहकर, केवल ईश्वर की आराधना और सनातन धर्मानुसार पूजा-पाठ करने ही में लक्ष्मीबाई अपना समय व्यतीत करती थीं। ऐसी अवस्था में एक ऐसा हृदय-द्रावक प्रसंग उपस्थित हुआ, कि जिसको सुनकर किसी भी देशाभिमानी पुरुष का अंतःकरण दुखित हुए बिना न रहेगा। जब महारानी के दत्तक पुत्र की अवस्था ७ वर्ष की हुई तब उन्हें उसके यज्ञोपवीत-संस्कार की चिन्ता लगी। उस समय उनके कारिन्दों ने यह सलाह दी, कि स्वर्गवासी गंगाधरराव के उन छः लाख रुपयों में से, जो दामोदरराव के नाम पर सरकारी खजाने में जमा हैं, एक लाख रुपये, यज्ञोपवीत संस्कार में खर्च होने के लिये, मांग लिये जांय। यह सलाह लक्ष्मीबाई को भी पसन्द आई। उन्होंने झांसी के कमिश्नर साहब के पास एक अर्जी दी। उसपर सरकार ने यह उत्तर दिया कि "ये रुपये तुम्हारे पति के दत्तक-पुत्र के हैं। वे तुमको दिये नहीं जा सकते; क्योंकि जब लड़का बालिग़ होगा और अपने रुपये पाने का सरकार पर दावा करेगा तब सरकार को रुपये देने पड़ेंगे। इसलिये, यदि तुमको रुपयों की आवश्यकता ही है तो चार भले आदमियों की जमानत देकर यह लिखदो कि, यदि लड़का सरकार से रुपये पाने का दावा करेगा तो हम दे देंगे। तब तुमको रुपये दिये जांयगे।" देखिये, काल की गति कैसी विचित्र है! जिसका राज और जिसका धन, उसीसे जमानत ली जाती है!! हा दुर्दैव!!! कल जो झांसी-राज्य की स्वामिनी थी, आज उसीको अपना धन पाने के लिये जमानत देना पड़ती है। लक्ष्मीबाई बड़ी समझदार स्त्री थीं। उन्होंने चार

प्रतिष्ठित पुरुषों की जमानत देकर सरकार से एक लाख रुपये लिये और बड़े समारोह से दामोदरराव का यज्ञोपवीत-संस्कार किया।

झांसी में बृटिश-सरकार का अधिकार स्थापित होकर दो वर्ष से अधिक बीत गये। महारानी लक्ष्मीबाई, सब सांसारिक सुखोपभोगों से विमुख होकर और उदासीन-वृत्ति का स्वीकार करके, नित्य पूजा-पाठ और दान-धर्म आदि सत्कार्यों में लगी रहतीं और अपनी आयु का एक एक दिन बड़े कष्ट से व्यतीत करतीं थीं। उस समय यह बात स्वप्न में भी उनको नहीं मालूम हुई होगी कि, विधाता ने उनके भाग्य में इससे बढ़कर और भी कुछ दुःख लिखा है; परन्तु भारतवर्ष के आधुनिक इतिहास में जिस **सन् सत्तावन** का नाम अजरामर हो गया है उसका उदय इसी समय हुआ; और दुर्भाग्यवश, सर्वसंगपरित्यागिनी, ईश्वराराधन में निमग्न रहनेवाली, एक हिन्दू-राजलक्ष्मी पर अनेक कष्टदायक और विकट प्रसंग आये; उस प्रसंग का स्मरण होते ही जी कांप उठता है और लेखनी स्तब्ध हो जाती है। परंतु हमको अपना हृदय बज्र के समान कठोर करके, उस दुर्धर प्रसंग का वर्णन, लिखना ही पड़ता है; क्योंकि महारानी लक्ष्मीबाई के जीवन के अंतिम दिनों का प्रधान सम्बन्ध उसी प्रसंग से है। यद्यपि हम जानते हैं कि इस विषय की चर्चा करने में लेखकों को किस बात का विशेष भय है, तथापि कर्तव्य की ओर ध्यान देने से स्वार्थ का त्याग करना ही पड़ेगा।

चौथा अध्याय

कुटिल नीति का परिणाम और झांसी में बलवा।

दर्पः प्रमादः परवित्तवाञ्छा, पापानुबंधी विषयाभिलाषः।
एतानि जन्तोर्विनिपातकाले, द्वाराण्यपायस्य निरर्गलानि॥

अभिमान, असावधानी, दूसरे के धन की इच्छा, संसार की विषय-वासना और पापयुक्त अभिलाषा, प्रत्येक मनुष्य के विनाश के खुले द्वार हैं। जिस व्यक्ति या समाज या देश को अपनी उन्नति की अभिलाषा हो, उसका यह आवश्यक कर्तव्य है कि वह उपर्युक्त दोषों से बचे रहने का यत्न करे। ऐसा न करने से परिणाम बहुत बुरा होता है। खेद की बात है कि अंगरेजी-राज्य के शासन-कर्ताओं ने इस नीति का उल्लंघन किया, जिससे उनको अपनी कुटिल नीति के दुःखदायी फल भोगने पड़े।

महारानी लक्ष्मीबाई के चरित्र का यह भाग विशेष महत्व का है। उनके चरित्र के इस भाग से सम्बन्ध रखनेवाली बहुतेरी बातों का पूरा पूरा विचार न करने ही के कारण, बड़े बड़े अंगरेज़-लेखकों, विद्वान् ग्रंथ-कारों और प्रख्यात इतिहासज्ञ लोगों ने भी बड़ी बड़ी भूलें की हैं; और इन्हीं लोगों के, भूल से भरे हुए, ग्रन्थों को पढ़कर, प्रायः बहुतेरे विदेशियों और अनेक हिन्दुस्थानियों की सम्मति, लक्ष्मीबाई के सम्बन्ध में, कुछ कलुषित होगई है। इससे अधिक बुरी बात और कौनसी हो सकती है कि, जो हिंदू-अबला, बृटिश-सरकार की कुनीति के कारण, स्वराज्य के नष्ट हो जाने पर भी उनकी उदारता, न्यायप्रियता और मित्रता पर दृढ़ विश्वास

रक्खे, उसीको अंगरेज़-अधिकारी और अंगरेज़-लेखक बाग़ी (विद्रोही) कहें! तात्पर्य यह है कि, लक्ष्मीबाई के चरित्र का प्रस्तुत भाग अत्यंत महत्व का और पेंचीला है। जबतक निष्पक्षपात होकर उस समय के इतिहास की आलोचना न की जायगी तबतक सत्यांश दृष्टिगोचर होने की संभावना नहीं है। अतएव हम उस समय की कुछ ऐतिहासिक बातों का प्रमाण देना उचित समझते हैं।

यह बात इतिहास के पढ़नेवालों को विदित है कि, लार्ड डलहौसी साहब ने अपनी कुटिल नीति से सतारा, नागपुर, तंजौर, झांसी, अवध आदि अनेक देशी रियासतों को, बृटिश-राज्य में मिलाकर, भारतवर्ष के स्वराज्य का सुख भोगनेवाले अनेक प्राचीन और प्रतापशाली राजाओं को दुःखित किया था। इसी तरह, हिंदू-धर्मशास्त्र के अनुसार हिंदू राजाओं के लिये हुए दत्तक को अस्वीकार करके, उन्होंने साधारण लोगों के मन में भी बृटिश-सरकार की नीति के संबंध में अविश्वास उत्पन्न करदिया था। उस समय की बृटिश-राजनीति के संबंध में कुछ निष्पक्षपाती अंगरेज़-लेखकों ने जो सम्मतियां दी हैं उन्हींको ऐतिहासिक और सच्चे प्रमाण मानकर हम यहां पर देते हैं। इन प्रमाणों को, लक्ष्मीबाई के सम्बन्ध में, किसी प्रकार की सम्मति देते समय, अवश्य ध्यान में रखना चाहिये।

१. *Dalhousie's Administration of British India* नाम के ग्रंथ में यह लिखा है—"In three of these instances, Satara, Nagpur and Jhansi, the Governor General not only terrified the native governing classes throughout India with the spectre of a resistless centralization, but struck at the very root of Hindu religion and cut out of Hindu Law its highest and gentlest enactment." इसका अर्थ यह है—सतारा, नागपुर और झांसी, इन तीन रियासतों के उदाहरणों से यह बात प्रकट होती है, कि गवर्नर जनरल साहब ने, राज्य के सब सूत्रों को एक केन्द्र-स्थान में एकत्र करने की अपनी अनिवार्य तृष्णा से, हिन्दुस्थान के सब राजाओं को केवल भयभीत ही नहीं किया; किंतु उन्होंने हिन्दू-धर्म की जड़ को उखाड़ने और हिन्दू-शास्त्र की सौम्य तथा श्रेष्ठ विधियों का नाश करने का भी यत्न किया।

२. बाजीराव पेशवा को आठ लाख रुपये सरकार से पेन्शन के तौर पर मिलते थे। संधिपत्र के अनुसार यह पेन्शन उनके दत्तक पुत्र, नाना साहब, को भी (बाजीराव की मृत्यु के पश्चात्) मिलनी चाहिये थी। लार्ड डलहौसी साहब ने, बाजीराव की मृत्यु के पश्चात्, नाना साहब को पेन्शन नहीं दी और यह लिखा कि "पेशवा को ३० वर्ष तक ८ लाख रुपये वार्षिक पेन्शन मिलती थी। इसके अतिरिक्त जागीर की आमदनी भी उनको मिलती रही। इतने समय में वे ढाई करोड़ से ज्यादा रुपये पा चुके हैं। उनको कुछ खर्च करना नहीं पड़ता था। उनके कोई पुत्र भी नहीं है। उन्होंने २८ लाख की जायदाद अपने कुटुम्ब को दे दी है। अब जो लोग बाक़ी हैं उनका, सरकार की कृपा या दान पर, किसी प्रकार का हक़ नहीं है; क्योंकि जो जायदाद उनको दी गई है उसकी आमदनी बहुत है। यद्यपि यह मान लिया जाय, कि यह आमदनी उन लोगों के लिये काफ़ी नहीं है, तथापि पेशवा का यह कर्तव्य था कि वह अपनी विपुल सम्पत्ति में से इस बात का उचित प्रबन्ध कर जाते। संभव है कि पेशवा की जायदाद, जितनी वह लिखाई गई है उससे, बहुत अधिक है*"। भारत-सरकार की इस कार्रवाई से असंतुष्ट होकर नाना साहब ने लंदन के कोर्ट आफ़ डायरेक्टर्स की सेवा में एक प्रार्थनापत्र भेजा, परंतु उससे भी कुछ लाभ न हुआ। तब निराश होकर उन्होंने कानपुर के बलवे में अंगरेज़ों को बड़ी निर्दयता से क़तल करके अपना बदला लिया! इस विषय के संबंध में *Dalhousie's Administration of British India* नामके ग्रंथमें लिखा है कि "Cawnpur told in 1857 how a Hindu Princes' heart regarded Lord Dalhousie's doctrine of expedient escheats." अर्थात् १८५७ ई० में कानपुर के बलवे से यह बात सिद्ध हुई कि लार्ड डलहौसी साहब के "लावारिस" के नियम की हिन्दू राजाओं ने कितनी क़द्र की!

३. सन १८०२ ई० में बाजीराव पेशवा के साथ अंगरेज़-सरकार ने जो संधि की थी उसमें लिखा था कि "यावच्चन्द्रदिवाकरौ" (जब

---

* *Cf:*—Letter of the Secretary to Government of India to the Governor of the N. W. P. dated 24th September 1851.

तक चांद और सूरज आकाश में स्थित हैं तबतक) इस संधि का पालन किया जायगा। परंतु अंगरेज़-सरकार ने जिस युक्ति से संधि का उल्लंघन किया उसका वर्णन ऊपर किया गया है। उसीके विषय में " *Empire in Asia* " नाम के ग्रंथ में यह लिखा है " The treaty was to last 'while Sun and Moon endareth.' The day was soon to come when these eternal vows were to be pooh-poohed as mere dead flowers of oriental rhetoric. But the original of the treaty from first to last stands in the handwriting of the Governor General. Poshwa and Satara have passed away, but these words of his will not pass away !" इसका भावार्थ यह है " जबतक सूर्य और चन्द्रमा आकाश में स्थित हैं तबतक यह संधि रहेगी। दुर्भाग्यवश, वह दिन शीघ्र ही आनेवाला था जब यह चिरस्थायी प्रतिज्ञा पूर्वदेशीय आलंकारिक भाषा का एक निर्जीव शब्द समझा गया। परंतु स्मरण रहे कि इस संधिपत्र को, आदि से अन्त तक, गवर्नर जनरल साहब ने स्वयं अपने हाथ से लिखा है। यद्यपि पेशवा और सतारा-राज्य का अंत हो गया है, तथापि गवर्नर जनरल साहब के लिखे हुए शब्द अबतक ज्यों के त्यों बने हैं !

४. भारतवर्ष में अंगरेजी-राज्य के संबंध में जो असंतोष उत्पन्न हुआ था उसके अनेक कारणों का उल्लेख *Memorials* नाम के एक ग्रंथ में इस प्रकार किया गया है—" The chief causes of the popular dissatisfaction with our rule were— the extinction of Native States and our consequent measures; the depression of the chiefs and heads of society; the resumption, or the conversion into life-tenures, of hereditary rent-free tenures of land, or of hereditary interests connected with land or the land revenue; alienation of zamindari lands for arrears of revenue, or in satisfaction of civil decrees; the non conferment of estates or honours for eminent services to the State; the want of conciliatory and confidential personal intercourse between our officers and the Native Chiefs, heads of society and people; &c. &c. &c. " इसका भावार्थ यह है — " हमारे शासन से, इस देश के लोगों में, जो असंतोष उत्पन्न हुआ उसके मुख्य कारण ये हैं—देशी रियासतों की स्वाधीनता का नाश; राजाओं और समाज-नायकों की मानहानि; जमींदारों के माफ़ी-लगान के पैतृक स्वत्व का अपहरण; मालगुजारी की बाक़ी के लिये जमींदारी जायदाद को

मुन्तकिल करना; गवर्नमेन्ट की उत्तम सेवा करने वालों को भी किसी प्रकार का मान या जागीर न देना; हमारे अफसरों में और इस देश के राजाओं, समाज-नायकों और लोगों में मेल करनेवाले और विश्वास-योग्य व्यवहार का अभाव; इत्यादि ।"

अधिक प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है। जो थोड़े से प्रमाण दिये गये हैं उन्हीं पर से, यह बात प्रकट होती है कि कुछ अंगरेज-अधिकारियों की कुटिल नीति से ही हिन्दुस्थानियों के मन में अपने विदेशी शासन-कर्ताओं के संबंध में अविश्वास और असंतोष उत्पन्न हुआ। निष्पक्ष-पात-बुद्धि से विचार करने पर यही निश्चय होता है कि, उस समय, कुछ अदूरदर्शी अंगरेज-अधिकारियों की स्वार्थपरायण और कुटिल राजनीति का ही यह भयंकर परिणाम हुआ कि भारतवर्ष के शांतिप्रिय, सहनशील, राजभक्त, सेवा-तत्पर और नियमानुवर्ती लोगों में भी विद्रोहाग्नि प्रज्वलित हो गई, जिसकी विकराल ज्वालाओं में एक निरपराधिनी हिंदू-अबला को भी अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी ! इसका परिणाम, नूतन स्थापित बृटिश-राज्य पर, बहुत ही बुरा पड़ा।

जब सन् १८५६ ई० में डलहौसी साहब विलायत को गये और उनके स्थान पर लार्ड कैनिंग साहब, गवर्नर जनरल होकर, भारत में आये, तब वे इस बात को भली भांति जानते थे कि डलहौसी साहब की राजनीति से किस तरह हानि होने का डर है । कोर्ट आफ डायरेक्टर्स से विदा होने के समय उन्होंने यह कहा था कि "मेरी यही अभिलाषा है कि मेरे शासन-समय में, भारतवर्ष में, पूर्ण शान्ति रहे। मुझे मालूम है कि, उस देश के राजनैतिक आकाशमंडल में मेघ का एक छोटासा टुकड़ा यकायक आकर तुरन्त चारों ओर फैल जायगा और एकदम मूसलधारा वृष्टि करके हम लोगों की दुर्दशा कर डालेगा।" दुर्भाग्यवश ऐसा ही हुआ !

सन १८५७ ई० का आरंभ हुआ। भारतवर्ष में जो असंतोषाग्नि एकबार सुलग गई थी वह धीरे धीरे प्रज्वलित होने लगी। उसी समय सरकारी फौज में इस बात की चर्चा फैली कि कारतूसों में, जिनका

काम फ़ौज के हर सिपाही को पड़ता है, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, गाय और सुअर की चरबी लगी हुई है। उन लोगों ने यह मान लिया कि हिंदू और मुसलमान दोनों धर्म-भ्रष्ट किये जांयगे। उस समय, उन लोगों को, सरकार से घृणा करने का, यह एक अच्छा मौका मिल गया। उन देशी रियासतों के लोग —जिनके राज्य अंगरेज़ी-राज्य में मिला लिए गए थे—पहलेही से अंगरेज़-सरकार से अप्रसन्न थे; और इसी समय सरकारी फ़ौज के हिंदू और मुसलमान सिपाहियों के मन, धर्मच्युति के भय से, क्षुब्ध हो गये थे। बस, जिस तरह स्वच्छ आकाशमंडल यकायक काले काले बादलों से छा जाता है और भयानक वृष्टि होने लगती है, उसी तरह भारत में सैन्यविद्रोह का आरंभ हुआ। सब से प्रथम बंगाल में बरहामपुर की १९ वीं काली पलटन ने अपना प्रचंड रूप प्रकट किया। यह वृत्तान्त शीघ्र ही सारे देश में फैल गया जिससे ठौर ठौर की असंतोषाग्नि एकदम प्रज्वलित हो उठी। २४ अप्रैल सन् १८५७ ई० को मेरठ में तीसरी केवलरी (रिसाला) ने सरकार के विरुद्ध कार्य आरम्भ किया। मेरठ और आस-पास की सारी फ़ौज ने, एकत्रित होकर, मई महीने में, बहुत भयंकर उपद्रव मचाया। फ़ौज ने, अपना अधिकार मेरठ पर पूर्णरूप से जमाकर, दिल्ली की ओर प्रयाण किया। वहां भी उनका कार्य सफल हुआ। उन लोगों ने दिल्ली के आखिरी बादशाह बहादुरशाह को, जिनका बल उस समय सब तरह कम हो गया था, फिर से तख़्त पर बैठाया और वहां अपना पूरा अधिकार जमा लिया।

मेरठ और दिल्ली के बलवे की ख़बर सब स्थानों की फ़ौज में पहुंच गई। फ़ीरोज़पुर, बरेली, मुरादाबाद, शाहजहांपुर, कानपुर, लखनऊ आदि सब स्थानों में बलवा होने लगा। विद्रोहियों ने दिल्ली के बादशाह को तो पहले ही अपने क़ब्ज़े में कर लिया था। अब नाना साहब पेशवा और अवध के नवाब साहब भी, जो बृटिश-शासन से दुःखित थे, विद्रोहियों में शामिल हो गये। जब अंगरेज़-सरकार की कुटिल राजनीति से असंतुष्ट होकर इस देश के बड़े बड़े राजघराने के लोग भी विद्रोहियों की सहायता करने लगे तब तो उस "सिपाहियों के बलवे"—Sepoy Mutiny—को पूरा पूरा राजकीय और भयंकर रूप प्राप्त हो गया!

इस बलवे का समाचार झांसी में भी जा पहुंचा। उस समय वहां बंगाल नेटिव इन्फेन्ट्री की १२ वीं पलटन, १४ वीं इरेग्युलर केवलरी और एक तोपखाना— इतनी फ़ौज थी। इस सेना के मुख्याधिकारी कप्तान डन्लाप साहब थे। उनका यह विश्वास था कि हमारे सिपाही कभी बलवे में शामिल न होंगे। मई महीने की १८ तारीख तक झांसी में किसी तरह उपद्रव के चिन्ह देख नहीं पड़े। इसके विषय में झांसी के कमिश्नर स्कीन साहब ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि "झांसी में उपद्रव उठने का कोई भय अबतक दिखाई नहीं पड़ता। यहां की फ़ौज बहुत ईमानदार है। उसे मेरठ और दिल्ली के बलवे वालों से घृणा है............बुंदेलखंड के छोटे छोटे राज्यों के संबंध में भी कुछ भय नहीं है; क्योंकि इस समय ओरछा, छत्रपुर और अजयगढ़ के राजा नाबालिग़ हैं और शेष सब राजाओं का प्रबंध अच्छी तरह कर दिया गया है। इस लिये मुझे पूरा विश्वास है कि यहां हम लोग सुरक्षित हैं। मैं इस स्थान के लोगों का विश्वास करता हूं—यही मार्ग मुझे उत्तम प्रतीत होता है।" तारीख ३० मई के पत्र में कमिश्नर साहब ने फिर यह लिखा कि "यहां अबतक शान्ति है। फ़ौज के सब लोग दृढ़ निश्चयी हैं।" तीसरी जून के पत्र में उन्होंने फिर भी यही लिखा कि "इस समय तक हम लोग यहां सुरक्षित हैं। सोमवार की रात को मुझे यह खबर मिली कि कुछ ठाकुर लोग कोंच गांव पर धावा करने वाले हैं। इस विषय की सूचना मैंने तुरंत डनलाप साहब को दी और उस गांव की रक्षा के लिये कुछ फौज सबेरे आठ बजे भिजवा दी। फौज के वहां पहुंचतेही ठाकुर लोगों का इरादा बदल गया।" इसी पत्र के अन्त में ये महत्व के वाक्य लिखे हुए हैं "कुछ लोग यह कहते हैं कि यह विद्रोह चारों ओर फैला हुआ है। उसके संबंध में मेरी यह राय है कि, **झांसी के लोग बहुत सच्चे और दृढ़-निश्चयी हैं—वे हम लोगों से कभी नहीं बिगड़ेंगे।**" स्कीन साहब की ये सब चिट्ठियां *Kaye's Sepoy War* नाम के ग्रंथ में छपी हैं। इन चिट्ठियों को पढ़कर किसी के भी मन में यह शंका नहीं आ सकती कि झांसी में बलवे के कोई चिन्ह देख पड़ते थे। इसका मुख्य कारण यही है कि झांसी की रानी एक कुलीन

अबला स्त्री थी जो, इस समय, संसार के सब वैभवों का त्याग कर और ईश्वर-भक्ति में लीन होकर, अपनी आयु के दिन किसी तरह व्यतीत कर रही थी। उसकी सहनशीलता और राजभक्ति पर सब लोगों का विश्वास था। इसीलिये झांसी के कमिश्नर साहब को वहां बलवे का कुछ भय न था।

झांसी के अंगरेज-अधिकारियों को इस बात का भरोसा था कि झांसी में किसी प्रकार का उपद्रव नहीं होगा; परंतु उन लोगों की असावधानी से, तारीख ४ जून को, यकायक फ़ौज में बलवे के चिन्ह वहां भी देख पड़ने लगे। सातवीं काली पैदल-पलटन के, गुरुबख्श नाम के, एक हवालदार ने कुछ आदमियों को अपने साथ लेकर 'स्टारफ़ोर्ट' में प्रवेश किया और बारूद, गोले, बंदूक आदि लड़ाई का सब सामान वहां से लेकर बलवे का झंडा खड़ा किया। जब यह समाचार कप्तान डनलाप साहब को मालूम हुआ तब उन्होंने अपनी बची बचाई फ़ौज इकट्ठा करके स्टार-फ़ोर्ट पर धावा करने का निश्चय किया। परंतु वहां तो लड़ाई का सब सामान और खज़ाना विद्रोहियों ने पहले ही अपने अधीन कर लिया था। वहां के पहरे-वाले भी विद्रोहियों में शामिल हो गये थे। इस प्रकार के भयानक चिन्ह देखकर सब अंगरेज छावनी से निकलकर शहर में आये और वहां से, कमिश्नर साहब की सूचना के अनुसार, वे लोग अपने लड़कों बच्चों को लेकर क़िले के भीतर चले गये। डन्लाप साहब ने अपनी मदद के लिये नौगांव की छावनी से कुछ फौज भेज देने के लिये वहां के फ़ौजी अफ़सर को एक पत्र लिखा। यही पत्र झांसी के बलवे को साबित करता है। इसके सिवा, वहां के अंगरेज़ों का, और कोई भी दूसरा सबूत नहीं है।

दूसरे दिन, अर्थात् तारीख ५ जून को सबेरे, कप्तान स्कीन और मिस्टर गार्डन साहब डिप्टी कमिश्नर, डन्लाप साहब से मिलने के लिये, छावनी आये। वे डन्लाप साहब के साथ गुप्त रीति से कुछ बात चीत करके क़िले में चले गये। डन्लाप साहब ने छावनी में बारूद गोलों का कुछ प्रबंध किया और अपने लिखे हुए पत्र रवाना करने के लिये डाकघर में गये। वहां से टेलर साहब को अपने साथ लेकर वे परेड पर आये।

ज्योंही वे वहां पहुंचे त्योंही बारहवीं पैदल-पलटन के सिपाहियों ने उन दोनों को गोली से मारडाला ! इस तरह झांसी के फ़ौजी अफ़सर, कप्तान डनलाप साहब, का खेदकारक अंत हुआ ! अंगरेज़ी-फ़ौज के मुख्य अधिकारी को मारकर विद्रोहियों ने बड़ा आनंद मनाया और उन लोगों ने और भी कई अंगरेज़ों का वध किया ।

इस समय जो यूरोपियन और यूरेशियन अफ़सर अपनी जान बचाने के लिये क़िले में भाग गये थे उनकी संख्या लगभग ४५ के थी । कमिश्नर स्कीन साहब ने इन सब लोगों को बन्दूक, गोली, बारूद आदि लड़ाई का सामान देकर अपनी अपनी प्राणरक्षा के लिये तैयार रक्खा । क़िले के दरवाज़े बड़ी मज़बूती के साथ बंद कर दिये गये । जब विद्रोहियों ने झांसी की छावनी को तहसनहस करके क़िले पर हमला किया तब क़िले के भीतर रहनेवाले अंगरेज़ों ने उन लोगों को वहां से हटाने का खूब यत्न किया । परंतु विद्रोहियों की अधिक प्रबलता देखकर उन लोगों ने क़िले से स्काट और पर्सेल-बंधुओं को महारानी लक्ष्मीबाई के पास सहायता मांगने के लिये भेजा । दुर्भाग्यवश, विद्रोहियों ने उनको रास्ते ही में पकड़कर मार डाला ! धन्य अंगरेज़-वीर, तुम स्वजाति और स्वदेश के लिये प्राण देना जानते हो ! इसी लिये तुम्हारा देश अबतक सजीव दशा में है ।

कमिश्नर स्कीन साहब ने नागोद, ग्वालियर आदि स्थानों से, अपनी सहायता के लिये, सेना भेज देने के विषय में पत्र लिखे थे; परंतु तारीख़ ७ जून तक कहीं से कुछ मदद न पहुंची । उसी दिन दोपहर को विद्रोहियों ने क़िले पर ज़ोर से धावा किया । क़िले के भीतर रहनेवाले अंगरेज़ों ने भी अपनी रक्षा के लिये बहुत मिहनत की । सुनते हैं कि अंगरेज़ों की स्त्रियां बन्दूक भर भरकर आदमियों को देती जाती थीं । अंगरेज़ लोग युद्ध में निपुण थे । उन लोगों की गोलियों की मार से विद्रोहियों को पीछे हटना पड़ा । परंतु विद्रोहियों की संख्या अधिक थी । इस लिये वे साहस करके आगे बढ़ने का यत्न करने लगे । इस तरह साहस और दृढ़ता से युद्ध करने पर भी क़िले के भीतर विद्रोहियों का प्रवेश होने न पाया । तब वे लोग किसी गुप्त मार्ग से क़िले के भीतर घुसने का उद्योग

करने लगे। झांसी के असिस्टन्ट सर्वेअर लेफ्टनेन्ट पाविस साहब, क़िले के भीतर आते समय, अपने साथ कुछ विश्वास-पात्र सिपाहियों को भी ले आये थे। वही सिपाही लोग, विद्रोहियों से मिलकर उनको क़िले के भीतर आने का गुप्त मार्ग दिखलाने लगे। यह समाचार पाकर पाविस साहब ने उनको रोकना चाहा; परंतु सिपाहियों में से किसी एक ने उनको तुरंत ही मार डाला!

विद्रोहियों की सेना जान पर खेलकर बड़ी शूरता से लड़ रही थी और एक एक क़दम क़िले की ओर बढ़ाती चली जाती थी। उसने क़िले के दरवाज़े खोलने का बहुत उद्योग किया; परंतु वह सफल न हुआ। गार्डन साहब क़िले के भीतर की खिड़कियों में से बाग़ियों पर गोलियों की वृष्टि कर रहे थे। उनका चिहरा बागियों की सेना में सब लोग पहचानते थे। उनमें से किसी एक ने गार्डन साहब पर तीर चलाया जिससे उनका देहान्त हो गया! उनकी मृत्यु से क़िले में हलचल मच गई। चारों ओर हाहाकार शब्द सुनाई पड़ने लगा। क़िले के भीतर सब लोग अधीर और हताश होने लगे। ठीक इसी समय गोली बारूद आदि लड़ाई का सामान भी उनके पास चुक गया। विद्रोहियों के मुखिया कालेखां रिसालदार और अहमदहुसेन तहसीलदार ने अप्रतिम वीरता से युद्ध करके क़िले का बहुत बड़ा भाग हस्तगत कर लिया। तब अंगरेज़ों ने, निराश होकर, प्राण-रक्षा के हेतु, सुलह का प्रस्ताव किया।

ता० ८ जून को सबेरे विद्रोहियों के मुखिया आनंद मनाते हुए क़िले के दरवाजे के समीप जा पहुंचे। उन लोगों ने हकीम सुलेमुहम्मद नाम के एक प्रतिष्ठित रईस को अपना प्रतिनिधि बनाकर स्कीन साहब के पास भेजा। स्कीन साहब क़िले का दरवाज़ा खोलकर बाहर आये और यह प्रार्थना करने लगे कि "हम लोगों को किसी प्रकार का दुःख न देकर सागर जाने दीजिये।" बागियों के प्रतिनिधि, हकीम साहब, ने क़ुरान की क़सम खाकर यह कहा कि "आप लोग हथियार रखदें और क़िले को खाली कर दें। आपको हम किसी प्रकार का दुःख न देंगे।" बिचारे संकट में फँसे हुए अंगरेज़ों ने बागियों के प्रतिनिधि का कहना सच माना।

वे लोग अपने सब हथियार क़िले में रखकर बाहर निकल आये; परंतु बड़ी लज्जा और खेद की बात है कि बाग़ियों ने अपने कुरान की क़सम खाकर अपनी की हुई प्रतिज्ञा भंग कर दी! ज्योंही अंगरेज़ लोग शस्त्रहीन होकर क़िले के बाहर आये त्योंही बाग़ियों ने "दीन दीन" शब्द की प्रचंड गर्जना करके उनको घेर लिया। उस समय उन बेचारों के मुँह से एक शब्द भी न निकला। बाग़ी लोग उनको क़ैद करके शहर में से घुमाते हुए जोगन बाग की ओर ले गये। शहर के बाहर पहुंचतेही कुछ सवारों ने वहां आकर यह संदेसा कहा कि, रिसालदार की आज्ञा के अनुसार इन सब लोगों का वध किया जाना चाहिये। हा अनर्थ! यह कैसा क्रूर और अधम अत्याचार है! जो लोग ऐसे कृतघ्न हैं कि अपनी प्रतिज्ञा का भंग करके विश्वासघात करने को तैयार होते हैं उनकी नीचता का वर्णन किस तरह किया जाय! वस्तुत: वीरता विजय करने में है, न कि विश्वासघात करने में। इस हृदयभेदी प्रसंग का वर्णन The Ranee नाम के ग्रंथ में इस प्रकार लिखा है—"प्रतिकूल और अनर्थकारी प्रभाव—खून के प्यासे राक्षस, लूटपाट, द्वेष, निष्ठुरता और अत्याचार—से वायुमंडल दूषित हो गया था। प्रेम, दान, सहानुभूति, दया, उदारता और कृपा आदि ऊंचे भावों की शक्तियां, जो मनुष्य-जाति का दुःख हरण करके, इस चञ्चल किंतु सुंदर और आनंददायक संसार-यात्रा में, सुख और सहायता देती हैं, उस समय बिलकुल नष्ट हो गई थीं। उन लोगों ने असहाय और दुःखित होकर अपनी आंखें इस लिये बंद करली थीं कि वे उन लहूलुहान और क्रूर दृश्यों को, देख न सकें जो, उनके सामने शीघ्र ही होनेवाले थे और जिनको वे, भगवान् जाने, किस कारण से, रोक नहीं सकते थे।" सूरदास ने यथार्थ कहा है कि "कुसमय कौन काको मीत!"

झांसी के जेल-दारोगा (बख़्शिश अली) ने अंगरेज़ों को तीन कतारों में खड़ा किया। पहली में पुरुषों को, दूसरी में स्त्रियों को और तीसरी में बच्चों को। उसने अपने साथियों को सख्त ताकीद की, कि 'ज्योंही मैं स्कीन साहब का सिर उड़ा दूं त्योंही तुम अन्य सब कैदियों को मार डालना!' इस तरह उस पाषाण-हृदयी मनुष्य ने स्वयं प्रथम स्कीन

साहब का वध किया ! और उसके साथियों ने अन्य सब लोगों का नाश किया !! इस भयानक हत्याकांड का वर्णन करते जी कांपने लगता है !!!

इस विषय में लोगों का मतभेद है कि झांसी में कितने अंगरेजों का वध किया गया। अंगरेज-इतिहासकार लिखते हैं कि इन लोगों की संख्या ६० थी, शेष लोग छावनी में और क़िले की रक्षा करने में मारे गये। कप्तान पिंकने साहब की राय में इन लोगों की संख्या ६७ थी, और जबलपुर के कमिश्नर मेजर आर्सकिन साहब की राय में ७६। इन्दौर के लेख में यह लिखा है कि ७५ मनुष्य १९ स्त्रियां और २३ बच्चे मारे गये।

अब प्रश्न यह है कि, इस भयंकर कृत्य में महारानी लक्ष्मीबाई शामिल थीं या नहीं ? क्या झांसी के विद्रोहियों के साथ उनका कुछ सम्बन्ध था ? क्या बागियों के साथ मिलकर उन्होंने अंगरेज सरकार को हानि पहुंचाने का उद्योग किया था ? क्या उन्हींकी अनुमति से झांसी में अंगरेजों का वध किया गया ? इस विषय का निर्णय करना जितना महत्व का है उतनाही कठिन भी है। इसमें संदेह नहीं कि, किसी विलक्षण दैवयोग से (जिसका विवेचन आगे किया जायगा) इस बलवे के बाद ही, महारानी लक्ष्मीबाई को दयालु अंगरेजों के साथ युद्ध करना पड़ा था। झांसी का बलवा और उसके बाद महारानी लक्ष्मीबाई का अंगरेजों से लड़ना—इन घटनाओं में सिर्फ दस महीने का अंतर था। इन दोनों घटनाओं का सम्बन्ध एक ही व्यक्ति से लगाकर विदेशी लेखकों ने लक्ष्मीबाई के सम्बन्ध में बड़ी भूल की है। प्रायः सब अंगरेज-अधिकारियों की यही राय है कि, महारानी लक्ष्मीबाई प्रथम ही से बलवे में शामिल थीं और उन्होंने झांसी में अंगरेजों का वध करवाया था ! अतएव हमारा यह कर्तव्य है, कि इस विषय का सच्चा अनुसंधान करके अच्छी तरह विवेचना की जाय और फिर यह देखा जाय कि उक्त दोषारोपण में कितना सत्यांश है।

हम प्रथम अंगरेजों की ओर के कथन का उल्लेख करते हैं। *The Indian Empire* नाम के ग्रन्थ में राबर्ट मान्टगोमरी मार्टिन साहब लिखते हैं—" She was a heathen ; the forgiveness of injuries was

no article in her creed; and believing herself deeply injured by the infraction of the Hindu Laws of adoption and inheritance, she threw aside every consideration of tenderness for sex or age, and committed herself to a deadly struggle with the supreme Government by an act, for which, as she must have well-known, her own life would, in all human probability, pay the forfeit." इसका भावार्थ यह है—"वे (महारानी लक्ष्मीबाई) मूर्तिपूजक थीं। अपराधों को क्षमा करना उनके धर्म ही में नहीं बतलाया गया। दत्तक और उत्तराधिकार विषयक, हिन्दूधर्मशास्त्र के, नियमों के भंग से उन्होंने अपनी बहुत हानि समझी; और इसीसे दुःखित होकर उन्होंने लिंग और वय का कुछ भी विचार अपने मन में नहीं किया और सर्वशक्तिमान् सरकार से भयंकर युद्ध आरंभ कर दिया। वे इस बात को अवश्य जानती थीं कि इस कार्य में उन्हें अपने प्राणों की आहुति देना पड़ेगी।" क्या मूर्तिपूजकों के धर्म में क्षमा कोई चीज ही नहीं है? क्या अंगरेज लोग, जो ईसाई मत को मानते हैं, अपने धर्म-ग्रंथ (बाइबल) के अनुसार, पूरे क्षमाशील हैं? क्या राबर्ट मान्टगोमरी मार्टिन साहब हिंदू-धर्म के तत्वों के ज्ञाता हैं? यद्यपि ये प्रश्न मन में उठते हैं तथापि उनकी विवेचना इस स्थान में नहीं की जा सकती। स्मरण रहे कि उक्त मत पक्षपात-रहित नहीं है। यही मत प्रायः अन्य ग्रन्थकारों का भी है। मेलिसन साहब अपने *History of the Indian Mutiny* नाम के ग्रन्थ में लिखते हैं—

"British Government regarded her anger and her remonstrances with careless indifferance. They did what was even worse. They added meanness to insult. On the confiscation of the State, they had granted to the widowed Rani a pension of £ 6000 a year. The Rani had first refused, but had ultimately agreed to accept this pension. Her indignation may be imagined when she found herself called upon to pay, out of a sum which she regarded as a mere pittance, the debts of her late husband.........Other grievances, such as the slaughter of kine amid a Hindu population and the resumption of grants made by former rulers for the support of Hindu temples, whilst fomenting the discontents of the population with their change of masters, formed subject for further remonstrance; but the personal indignity was that which rankled most deeply in the breast of this high spirited lady, and made her hail with gratitude the symptoms of disaffection which, in the early part of 1857, began to appear amongst the native

soldiers of the hated English"—इसका भावार्थ यह है—"बृटिश-सरकार ने उनके (महारानी लक्ष्मीबाई के) क्रोध और शिकायतों की कुछ भी परवा न की। उन्होंने इससे भी बुरा काम किया; अर्थात् उन्होंने मान-हानि के साथ बड़ी नीचता भी की। जिस समय उन्होंने झांसी का राज्य जब्त कर लिया था उस समय महारानी लक्ष्मीबाई को ५००० रु० मासिक पेनशन दी गई थी। पहिले पहल महारानी ने पेनशन लेना स्वीकार न किया, परंतु अंत में उन्होंने उसका स्वीकार करना मंजूर किया। जब उनसे यह कहा गया कि, इसी अत्यल्प वेतन में से उनके पति का क़रज़ अदा किया जाय, तब वे कितनी कुपित हुई होंगी इस बात को हम कल्पना से जान सकते हैं।............ इसके अतिरिक्त और भी बहुत ज़ुल्म किया गया; जैसे हिन्दुओं की बस्ती में गोवध करना और मन्दिर के नाम पर, प्राचीन राजाओं के दिये हुए गांवों को जब्त कर लेना इत्यादि। जो लोग राज्य-परिवर्तन के कारण पहले से अप्रसन्न थे वे अब इन अत्याचारों के कारण और भी अधिक असंतुष्ट हुए और अंगरेजों की शिकायत करने लगे। परंतु इस शूर-प्रकृति और तेजस्विनी स्त्री के हृदय में जो बात सब से ज़्यादा खटकती थी वह स्वयं उसका अपमान ही था। इसी लिये, जब १८५७ के आरम्भ में, घृणित अंगरेजों के देशी सिपाहियों में, विद्रोह के चिन्ह देख पड़ने लगे, तब वह अत्यंत हर्षित होकर उन लोगों में शामिल हो गई।"

इस तरह प्रायः सब अंगरेज-इतिहासकारों का यही मत है, कि लक्ष्मीबाई के हृदय में बृटिश—सरकार के सम्बन्ध में द्वेष भरा हुआ था; और जब सिपाहियों ने बलवा किया तब वह भी, अपना बदला चुकाने का अवसर पाकर, उन लोगों में शामिल होगई और भयंकर हत्या करके अपने क्रोध की शान्ति करने लगीं। परंतु यह कैसे मान लिया जाय कि अंगरेज-लेखकों की लिखी हुई सब बातें सत्य हैं? देखिये, पेनशन और लक्ष्मीबाई के पति के ऋण के विषय में जो बातें ऊपर लिखी गई हैं वे बिलकुल निराधार हैं—उनमें सत्य का अंश कुछ भी नहीं है। लक्ष्मी-बाई ने, अंगरेजों की दी हुई, पेनशन का स्वीकार कदापि नहीं किया और

न उनके पति को एक पैसे का भी ऋण था। यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि, इस कथन का प्रत्यक्ष प्रमाण कुछ भी नहीं दिया गया है, कि जब झांसी में प्रथम बलवा हुआ तब लक्ष्मीबाई अपना बदला चुकाने और अपने क्रोध की शांति करने के लिए विद्रोहियों में शामिल हुई थीं। इसी प्रकार जब अंगरेज़-ग्रन्थकारों की प्रत्येक बात की जांच की जाती है तब यही बोध होता है कि, लक्ष्मीबाई के सम्बन्ध में जो दोष उन लोगों ने आरोपित किये हैं वे सप्रमाण नहीं हैं। हां, इसमें सन्देह नहीं कि, उस समय की बहुत सी बातों का सम्बन्ध बलवे से है; परंतु जब प्रत्यक्ष प्रमाण का अभाव है (और जो कुछ प्रत्यक्ष प्रमाण मिलते हैं वे सब लक्ष्मीबाई के अनुकूल हैं) तब केवल आनुषङ्गिक बातों पर ज़ोर देकर, काकतालीय-न्याय से, उन बातों का सम्बन्ध लक्ष्मीबाई से लगाना और उनको झांसी में बलवा कराने का दोषी ठहराना सत्य-न्याय-सङ्गत नहीं हो सकता। जो मनुष्य निष्पक्षपात होकर इस विषय का विचार करेगा उसका अवश्य यही विश्वास होगा कि, लक्ष्मीबाई झांसी के बलवे में शामिल नहीं थीं—केवल इतनाहीं नहीं, किन्तु उसको यह भी विदित हो जायगा कि, लक्ष्मीबाई ने उस भयानक और बिकट समय में भी, अंगरेज़ों की सहायता की थी। अब हम इसी विषय की विवेचना करते हैं। सत्यान्वेषी पाठकों को उचित है कि वे दोनों पक्षों के प्रमाणों की जांच करके सत्यासत्य का निर्णय अपने आप करें।

झांसी के कमिश्नर की रिपोर्टों से यह बात पाई जाती है कि तीसरी जून तक वहां बलवे के कुछ भी चिन्ह देख नहीं पड़ते थे; और कमिश्नर साहब के मत में, झांसी के लोगों के संबंध में, विशेषतः महारानी लक्ष्मीबाई के सम्बन्ध में, किसी प्रकार का सन्देह न था। जब सेना में यकायक गड़-बड़ होने लगी और विद्रोह के चिन्ह देख पड़ने लगे तब कप्तान गार्डन साहब और कई अंगरेज़ महारानी के पास राजमहल में गये और उन्होंने महारानी से यह बिनय की, कि "यदि भविष्यत् में हम लोगों पर बुरा दिन आवे तो आप हमारी सहायता करें और झांसी की प्रजा को सुरक्षित रखने के लिये हमें मदद दें।" शरणागत की रक्षा करना ही आर्यों का परम धर्म

है। लक्ष्मीबाई ने कहा " इस समय हमारे पास न तो अस्त्र-शस्त्र हैं और न लड़नेवाले कोई शूर पुरुष ही हैं। तथापि मुझसे जहांतक हो सकेगा आपकी सहायता करने में कोई बात उठा न रक्खूंगी।" इसी बात पर से अंगरेज़-अधिकारियों ने, लक्ष्मीबाई को अपने पास कुछ नये शस्त्रधारी मनुष्य रखने की, इजाज़त दी थी।*

दूसरे दिन गार्डन साहब अकेले राज-महल में आये और लक्ष्मीबाई से कहने लगे कि "हम लोग तो पुरुष हैं। हमें स्वयं अपनी कुछ चिंता नहीं है। परंतु यह समय ऐसा कठिन है कि हम लोग अपनी स्त्रियों और बालकों की रक्षा नहीं कर सकते। अतएव आप उन्हें अपने महल में आश्रय दीजिये।" लक्ष्मीबाई का अन्तःकरण बड़ा कोमल था। उन्होंने दयार्द्र होकर गार्डन साहब की प्रार्थना स्वीकार की। अंगरेज़ लोगों की स्त्रियां अपने लड़कों बच्चों को लेकर महल में रहने लगीं। परंतु जब बागियों ने अंगरेज़ों को छावनी से भगा दिया और शहर में भी उपद्रव होने लगा तब वे लोग अपनी स्त्रियों और लड़कों बच्चों को क़िले में ले गये। उन लोगों के क़िले में चले जाने पर भी, महारानी लक्ष्मीबाई, उन लोगों को गुप्त रीति से बार बार धीरज दिलातीं और सहायता करती थीं। वे तीन दिन तक, तीन मन गेहूं की रोटियां, क़िले में बराबर भेजती रहीं। उन्होंने क़िले में अंगरेज़ों की रक्षा का यथा-शक्ति उत्तम प्रबंध किया। इस बात का कुछ अस्पष्ट उल्लेख *The Indian Empire* नाम के ग्रन्थ में भी किया गया है।†

---

* इसी बात को, पीछे से, अंगरेज़-ग्रन्थकारों ने और ही तरह से लिखा है। देखिये, The Ranee नाम के ग्रन्थ में यह लिखा है:—

" It was at this time the Rani wrote to the Colonel + + + a letter protesting that she was loyal and asking his permission in consideration of the disturbed state of the country, to enlist a large body of armed men for her protection and that of her property."

' This (Colonel), knowing that he had but little voice in the matter, but wishing to retain as long as he was able, at least the semblance of friendly relations with Luchmi Bai, consented to. "

† Cf:—Whether the Europeans in the fort held any communication with the Rani is not known; but they are stated to *have remained unmolested till the 7th June, and to have employed during the interval, in endeavouring to get provisions and ammunition into the fort* &c. &c

झांसी के बलवे में महारानी लक्ष्मीबाई के शामिल न रहने का, और उस भयानक प्रसंग में भी यथा-शक्ति अंगरेजों की सहायता करने का, ऊपर लिखे हुए प्रमाणों से भी बढ़कर एक और दृढ़ प्रमाण है। झांसी के हत्याकांड से बचे हुए मार्टिन नाम के एक साहब ने, आगरे से, तारीख २० अगस्त सन् १८८६ ई० को, महारानी लक्ष्मीबाई के दत्तक पुत्र श्रीमान दामोदरराव साहब को, एक पत्र में यह लिखा है कि:—

"Your poor mother was very unjustly and cruelly dealt with—and no one knows her true case as I do. The poor thing took no part whatever in the massacre of the European residents of Jhansi in June 1857. On the contrary she supplied them with food for two days after they had gone into the Fort—got 100 match-lock men from Kurrura, and sent them to assist us, but after being kept a day in the Fort, they were sent away in the evening. She then advised Major Skene and captain Gordon to fly at once to Dattia and place themselves under the Raja's protection, but this even they would not do; and finally they were all massacred by our own troops— the Police, Jail and Cas: Este."

इसका भावार्थ यह है—"आपकी माता के साथ बड़ी क्रूरता और अन्याय का बर्ताव किया गया। उनके सम्बन्ध में सच्चा हाल जैसा मैं जानता हूं वैसा दूसरा कोई नहीं जानता। सन् १८५७ ई० के जून महीने में, झांसी में, यूरोपियन लोगों का जो वध हुआ उससे उस बिचारी का कुछ भी सम्बन्ध न था। केवल इतना ही नहीं; किन्तु जब अंगरेज लोग क़िले में चले गये तब उन्होंने दो दिन तक उनको भोजन दिया। उन्होंने हमारी सहायता के लिये १०० हथियार-बंद सिपाही करेरा से लाकर क़िले में भेज दिये। हम लोगों ने इन सिपाहियों को दिनभर क़िले में रखकर शाम को वापस भेज दिया। इसके बाद लक्ष्मीबाई ने मेजर स्कीन और कप्तान गार्डन को यह सलाह दी कि आप लोग यहां से भागकर दतिया के राजा के आश्रय में रहिये; परंतु उस समय उन लोगों ने यह भी नहीं किया! अन्त में हमारी सेना (पुलिस और जेल) के लोगों ही ने उन सब लोगों का वध किया!!"

यह पत्र एक ऐसे यूरोपियन का है जो झांसी के बलवे के समय स्वयं वहां उपस्थित था। क्या इस पर से यह बात सिद्ध नहीं होती कि

महारानी लक्ष्मीबाई, झांसी के बलवे के विषय में, सर्वथा निर्दोषी हैं ? यदि और भी किसी प्रमाण की आवश्यकता हो तो सुप्रसिद्ध इतिहसकार के साहब के निम्न लिखित वाक्यों पर ध्यान दीजिये—

"*I have been informed, on good authority, that none of the Ranee's servants were present on the occasion of the massacre. It seems to have been mainly the work of our own old followers. The Irregular cavalry issued the bloody mandate and our Gaol Darogha was fore-most in the butchery.*"

इसका भावार्थ यह है—"मुझे यह बात दृढ़ प्रमाण सहित विदित हुई है कि इस वध के समय महारानी का एक भी नौकर वहां उपस्थित न था। यह कार्य मुख्यत: हमारे पुराने अनुयायियों का ही प्रतीत होता है। इर्रेग्युलर केवलरी ने हत्या की आज्ञा दी और हमारा जेल-दारोगा उन हत्यारों का अगुआ था !!!"

बस, अब अधिक प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है। दोनों पक्षों के प्रमाणों की जांच करने से यही बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि, महारानी लक्ष्मीबाई, झांसी के बलवे के सम्बन्ध में, सर्वथा निर्दोषी हैं।

झांसी के बागियों के भयंकर और क्रूर कर्म को देखकर यही प्रतीत होता था कि महाप्रलय हो रहा है। इतने अनुचित काम करने पर भी जब उन लोगों की रक्त-पिपासा और धनतृष्णा तृप्त न हुई तब उन लोगों ने शहर में जाकर राज-महल को घेरलिया और महारानी लक्ष्मीबाई को यह संदेसा भेजा कि "हम लोग दिल्ली जाना चाहते हैं, खर्च के लिये तीन लाख रुपये दो; नहीं तो तोप से तुह्मारा महल हम अभी उड़ा देंगे"। यह सुनकर राज-महल में सब लोग भयभीत होगये। जब यह समाचार लक्ष्मीबाई को विदित हुआ तब उन्होंने अत्यंत दीन होकर बागियों को यह कहला भेजा कि "इस समय हमारा सब राज्य अंगरेजों के अधीन है; हमारे पास धन नहीं है। हमारा एक एक दिन बड़े कष्ट से बीतता है। ऐसी अवस्था में हमको दुःखित करना आप लोगों को शोभा नहीं देता"। इन मधुर और बिनीति शब्दों को सुनकर निठुर से निठुर मनुष्य को भी दया आजाती; परंतु उन दुष्ट पाषाण-हृदयी बागियों के मन में दया न आई; वे

संतुष्ट न हुए ! क्योंकि उन्हें तो धन के लालच ने घेर रक्खा था। वे बिना धन लिये वहां से हटते ही न थे। अन्त में लक्ष्मीबाई ने हार मानकर, बागियों से अपना पिंड छुड़ाने के लिये, एक लाख रुपयों के अपने आभूषण उन्हें दे दिये*। बागी लोग प्रसन्न होकर "खल्क खुदा का, मुल्क बादशाह का, अमल महारानी लक्ष्मीबाई का" कहते हुए दिल्ली की ओर चले गये। उस समय, झांसी में, दुर्भाग्यवश, एक भी अंगरेज अपने राज्य का प्रबंध करने के लिये न था। ऐसी अवस्था में, महारानी लक्ष्मीबाई ने, फौजदारी महकमे के शिरस्तेदार पंडित गोपालराव लघाटे, माल महकमे के शिरस्तेदार यहसानअली और कमिश्नरी के शिरस्तेदार आदि बड़े बड़े सरकारी अफ़सरों को अपने पास बुलवाकर उनसे पूछा कि अब क्या करना चाहिये ? उन लोगों ने यह सलाह दी कि, सागर में अबतक बलवे के कोई चिन्ह नहीं दिखाई देते; वहां के अंगरेज़

---

* अंगरेज़-इतिहासकार कर्नल मेलिसन साहब ने इस बात का उल्लेख और ही ढंग से किया है:—

"Her conduct after the massacre disclosed the passion of her soul. For a moment it seemed very doubtful whether she would not quarrel with the Sipahis about the division of the spoil. To coerce her the latter even threatened to bring upon the scene an illegitimate relation of the late Rajah as a rival. But the Rani was a very clever woman. She wanted the title—they the coin. She gave them the coin; whereupon they proclaimed her Rani of Jhansi."

इसका भावार्थ यह है:—

"हत्या के बाद, उनके (लक्ष्मीबाई के) बर्ताव ही से उनके मन की इच्छा प्रकट हो गई। क्षणभर यही मालूम होता था कि वे लूट की सम्पत्ति का हिस्सा लेने के लिये सिपाहियों से झगड़ेंगी। अतएव उनको डराने के लिये सिपाहियों ने मृत-राजा के किसी रिश्तेदार को गद्दी पर बैठालने की तजवीज की। परंतु रानी बड़ी चतुर स्त्री थी। उनको अधिकार की इच्छा थी और सिपाहियों को द्रव्य की ! उन्होंने सिपाहियों को द्रव्य दिया और उन लोगोंने लक्ष्मीबाई को झांसी की रानी बनाया।"

परंतु यह विदेशी लेखकों का निरा भ्रम है। यह बात तो एक छोटासा बालक भी समझ सकता है कि यदि लक्ष्मीबाई झांसी के बलवे में शामिल रहतीं तो उन्हें बागियों की खुशामद क्यों करनी पड़ती। यह बात पहलेही सिद्ध हो चुकी है कि वे बलवे में शामिल न थीं।

अधिकारियों को झांसी के बलवे की खबर दे देना चाहिये; जिससे वे सचेत हो जाँय और पहलेही से अपनी रक्षा की उत्तम व्यवस्था कर लें। उन लोगों ने यह भी सलाह दी कि सागर के कमिश्नर से यह पूछा जाय कि अब झांसी का बंदोबस्त किस तरह किया जाय। इसी आशय का, पंडित गोपालराव शिरस्तेदार का लिखा हुआ. एक पत्र सागर के कमिश्नर के पास भेजा गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि वहां के अंगरेजों ने बहुत उद्योग करके सागर में बलवा होने नहीं दिया;* और जबतक झांसी में कोई युरोपियन अफ़सर भेजा न जाय तबतक उस प्रांत के शासन का भार महारानी लक्ष्मीबाई को सौंप दिया गया।

इस समय लक्ष्मीबाई के पास राज्यसम्बन्धी विषयों पर विचार करनेवाले राजनीतिनिपुण और राज्य का प्रबंध करनेवाले कुशल कार्यकर्ता लोगों का अभाव था। उनके सब प्राचीन सेवक झांसी से चले गये थे। यद्यपि लक्ष्मीबाई स्वयं बड़ी चतुर और बुद्धिवर्ता थीं तथापि वे राज-महलों में रहनेवाली एक अबला ही थीं! राज्यसम्बन्धी जो जो बातें वे स्वयं अपनी बुद्धि से निश्चित करती थीं, और जिन जिन बातों की वे आज्ञा देती थीं, उनकी ठीक ठीक कारवाई, उनकी इच्छा के अनुसार, हो नहीं पाती थी। यदि, उस समय, उनके पास कुछ होशयार और राजनीतिज्ञ आदमी रहते तो वे महारानी के सद्व्यवहार, मित्रभाव और शुद्ध हृदय का परिचय भारत–सरकार को, उचित समय पर, अवश्य दिलाते और उनके सम्बन्ध में सरकार की बुरी राय होने न देते; और यदि हो भी जाती तो वे उसको दूर करने का यथोचित उद्योग करते। परंतु उनके दुर्भाग्य से उनके पास, उस समय, राजकाज में प्रवीण, अच्छे आदमी न थे। जो दो चार आदमी थे--जैसे उनके पिता मोरोपंत तांबे, लक्ष्मणराव बांडे और अन्य रिश्तेदार आदि--उन्हें राज्यप्रबंध का कुछ भी अनुभव न था। उन लोगों ने अपनी अज्ञानता और मूर्खता के कारण, गोपालराव शिरस्तेदार

---

* इस बात का उल्लेख, के साहब ने, अपने ग्रन्थ में मुक्त–कंठ से किया है। आश्चर्य की बात है कि अन्य ग्रन्थकारों ने इसका कुछ भी उल्लेख नहीं किया!

को भी, जो अंगरेजी जाननेवाले और सरकारी कामों में तजुर्बेकार थे, झांसी के दरबार से निकलवा दिया ! सारांश यह कि, लक्ष्मीबाई के शुद्ध हेतु के अनुसार काम करनेवाले कोई अच्छे आदमी उनके पास नहीं थे। उस समय, झांसी दरबार में, कुछ तो ओरछा आदि देशी रियासतों से आये हुए राजद्रोही, अनुभवहीन और स्वार्थी लोग थे और कुछ महारानी लक्ष्मीबाई के रिश्तेदार थे, जिन्हें राज्य-प्रबंध की जवाबदेही अथवा ज़िम्मेदारी का कुछ भी ज्ञान न था। लक्ष्मीबाई के मन में यही विश्वास था कि, मेरी इच्छा और आज्ञा के अनुसार, दरबार के लोग अंगरेज-सरकार को पत्र आदि भेजते होंगे। परंतु जब हम उस समय के दरबारियों की स्थिति का विचार करते हैं तब यही कहना पड़ता है कि, लक्ष्मीबाई की इच्छा और आज्ञा के अनुसार कोई कार्रवाई ठीक ठीक न हुई। । इसमें सन्देह नहीं कि, लक्ष्मीबाई ने अंगरेज़-अफ़सरों को कई बार खलीते भेजकर अपनी मित्रता, सद्व्यवहार और शुद्ध हृदय का परिचय दिलाने का बहुत उद्योग किया। उन्होंने अपने मंत्रियों से कई बार कहा था कि, अंगरेज़-अफ़सरों को पत्र द्वारा इस बात की सूचना दी जाय कि, मैं अंगरेज़ों ही की आज्ञा से झांसी-राज्य का प्रबंध कर रही हूं। कप्तान पिंकने साहब, जो बलवे के बाद झांसी के कमिश्नर थे, इस विषय में यह लिखते हैं:—"It is stated on the most trustworthy authority, that at the same, time, she endeavoured to keep terms with our Government, by writing to the Commissioner of Jubbalpoor and to others, lamenting the massacre of our countrymen; stating she was in no way concerned in it, and declaring that she only held the Jhansi District till our Government could make arrangements to re-occupy it."

इसका भावार्थ यह है—" विश्वासयोग्य प्रमाण से यह बात सिद्ध हुई है कि, उस समय, महारानी लक्ष्मीबाई ने जबलपुर के कमिश्नर और अन्य अंगरेज़-अधिकारियों को खलीते भेजकर, अंगरेज़ों के वध के विषय में अपना खेद प्रकट करके, यह लिखा था कि, उस अधम कार्य से मेरा कुछ भी संबंध नहीं है। सरकार का स्नेह सम्पादन करने का उचित उद्योग करके, उन्होंने स्पष्ट रीति से यह सूचित किया था कि, झांसी में सरकारी राज्याधिकार पुनः प्रस्थापित होने तक ही, मैंने इस प्रांत का प्रबंध अपने

हाथ में लिया है।" कप्तान पिंकने साहब बृटिश-सरकार के एक विश्वास-पात्र और ऊंचे दर्जे के अफ़सर थे। यह संभव नहीं है कि वे अपने लेख में मिथ्या बातें लिखेंगे। आश्चर्य यह है कि मेलिसन आदि अनेक इतिहासकारों ने इस लेख का जिकर अपने ग्रन्थों में कहीं भी नहीं किया है! कप्तान पिंकने साहब के लेख की सत्यता का एक अत्यंत दृढ़ प्रमाण है। मार्टिन साहब, जिन्होंने स्वयं अपने हाथ से महारानी लक्ष्मीबाई के खलीते अंगरेजोंको दिये, वे लिखते हैं कि "She sent Kharreetas to Colonel Erksine at Jubbalpore, to Col. Fraser, Chief Commissioner of Agra, which I *handed to him with my own hand*, to hear her explanation, but—No! Jhansi had been a byword and was condemned un-heard!!" अर्थात्, "महारानी ने जबलपुर के कमिश्नर कर्नल इर्कसाइन और आगरे के चीफ़ कमिश्नर कर्नल फ्रेजर साहब को खलीते भेजे। ये खलीते मैंने अपने हाथ से उन्हें दिये, परंतु कुछ लाभ न हुआ! झांसी, एक मसल के समान बदू हो गई थी और बिना पूछ पाछ के ही वह अपराधी ठहराई गई!"

उक्त लेखों पर से महारानी लक्ष्मीबाई के शुद्ध हृदय का पूरा परिचय मिलता है। यह हम लोगों के दुर्भाग्य की बात है कि उस समय के अंगरेज अफ़सरों ने, बिना कुछ समझे बूझे और बिना कुछ पूछ पाछ किये ही, एक हिंदू राजघराने की अबला स्त्री को, जो सदा बृटिश-सरकार से स्नेह रखने का यत्न करती थी, दुष्ट बागियों और हत्यारों की पंक्ति में बैठा दिया! इसी मिथ्या भ्रम के वश होकर अंगरेजों ने निरपराधिनी लक्ष्मीबाई के साथ घोर संग्राम करने का निश्चय किया!! जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि, महारानी लक्ष्मीबाई अंगरेजों के विरुद्ध नहीं थीं; किन्तु वे अंगरेजों ही की आज्ञा से और अंगरेजों ही के लिये, झांसी के राज्य का प्रबंध कर रही थीं; और इस बात की सूचना भी वे समय समय पर पत्र लिखवाकर सरकार को दे दिया करती थीं; तौभी उनकी सदिच्छा फलीभूत न हुई—उनके शुद्ध हृदय और सरल व्यवहार का परिचय अंगरेज सरकार को न मिला—उनके निष्कपट श्रम का उचित फल प्राप्त न हुआ—और अन्त में उनको प्रबल अंगरेजों से युद्ध करना पड़ा; तब यही कहा जा सकता है कि दैव की गति विलक्षण है—भावी बलवान है!!!

जब झांसी में, कुछ समय तक के लिये, बृटिश-राज्य-रवि का अस्त हो गया तब चारों ओर से उस प्रांत पर शत्रुओं का आक्रमण होने लगा। बृटिश-शत्रुओं का दमन करने के लिये महारानी लक्ष्मीबाई को नई सेना रखनी पड़ी। झांसी के महाराज गंगाधरराव के स्वर्गवासी हो जाने पर, उनके वंश के एक पुरुष, सदाशिव नारायण नाम के, अपने को गद्दी का वारिस बतलाकर, राज्याधिकार पाने का प्रयत्न बहुत दिनों से कर रहे थे। यह मौक़ा पाकर उन्होंने कुछ फ़ौज इकट्ठी की और ता० १३ जून १८५७ ई० को, झांसी से तीस मील की दूरी पर, करेरा के क़िले पर हमला किया। उन्होंने अंगरेज़ों के थानेदार और तहसीलदार को वहां से मार भगाया और क़िले को अपने अधिकार में करलिया। वहां उन्होंने आसपास के ठाकुर लोगों पर ज़ुल्म करके उन लोगों से धन वसूल करना भी आरंभ किया; और बड़े धूमधाम के साथ अपना राज्याभिषक उत्सव करके उन्होंने "महाराजा सदाशिवराव नारायण" यह पदवी धारण की; और यह प्रसिद्ध किया कि मैं झांसी-राज्य का सच्चा अधिकारी हूं। उन्होंने अपने नाम से आज्ञापत्र प्रकाशित किये और गांव गांव में अपने राजा बनने का समाचार पहुंचाया। अषाढ़ बदी अष्टमी सम्वत् १९१४ को, राजपुर के थानेदार गुलाम हुसेन को, उन्होंने यह आज्ञापत्र भेजा कि 'हमने तुमको राजपुर का थानेदार नियत किया है; तुम गांव गांव में यह जाहिर करदो कि महाराजा सदाशिवराव झांसी की गद्दी पर विराजमान हुए हैं'। थानेदार ने इस आज्ञा को न माना। तब अषाढ़ बदी १० को उन्होंने यह आज्ञा दी कि गुलाम हुसेन अपने पद से अलग कर दिया जाय और उसकी जायदाद ज़ब्त करली जाय। इस तरह उनके अत्याचारों से सब प्रजा दुःखित हो गई। जब यह समाचार महारानी लक्ष्मीबाई को मालूम हुआ तब उन्होंने, इधर उधर से फौज इकट्ठा करके, झांसी-राज्य की रक्षा के लिये, करेरा पर चढ़ाई करदी। सदाशिवराव ने वहां से भागकर, महाराजा सेंधिया के राज्यान्तर्गत नरवर में आकर, अपनी जान बचाई। वे वहां से फिर भी झांसी का राज्य पाने का उद्योग करने लगे। इस बार महारानी लक्ष्मीबाई ने उनको पकड़कर झांसी के

किले में कैद कर दिया और बृटिश-सरकार के एक शत्रु का नाश करके झांसी-प्रांत की रक्षा की।

इस झगड़े से महारानी को अवकाश मिलने न पाया था कि ओरछा-राज्य के दीवान नत्थेखां ने, २० हजार सिपाहियों को साथ लेकर, झांसी पर चढ़ाई करदी। उस समय महारनी के पास फौज बहुत थोड़ी थी। अतएव उन्होंने सेन्ट्रल इन्डिया (मध्य भारत) के पोलिटिकल एजन्ट को पत्रद्वारा सब हाल लिखवा भेजा और उनसे सहायता मांगी; परंतु पत्र ले-जानेवाले दूत को नत्थेखां के आदमियों ने रास्तेही में मारडाला! आस पास से किसी की भी सहायता न पाकर वे अपने मन में कुछ घबड़ाने लगीं; परंतु उन्होंने ऐसे कुसमय में भी, साहस का परित्याग नहीं किया। बृटिश-सरकार की सेवा और झांसी-प्रांत की रक्षा के लिये वे स्वयं उद्योग करने लगीं। उधर नत्थेखां ने महारानी को यह संदेसा भेजा कि "जो पेनशन बृटिश-सरकार तुमको देती है वह हम तुम्हें देने को तैयार हैं। तुम झांसी का किला और शहर हमारे सपुर्द करदो"। यह संदेसा सुनते ही महारानी को क्रोध उत्पन्न हुआ; उनकी आंखें लाल होगईं; और मुख पर लालिमा छा गई। वे थोड़ी देर तक प्रज्वलित क्रोधाग्नि से अपने मन को जलाती रहीं; और फिर कुछ शांत होकर बड़े गम्भीर स्वर से अपने कर्म्मचारियों से पूछने लगीं कि, इस विषय में आप लोगों की क्या राय है। कर्मचा-रियों ने नत्थेखां की सेना का बल अधिक देख, भयभीत होकर, बड़ी नम्रता से यह कहा कि, इस समय शत्रु की आज्ञा को मानकर युद्ध से मुख मोड़ना ही हितकारी जान पड़ता है। अपने कर्मचारियों की यह सम्मति सुनकर लक्ष्मीबाई का मन और भी संतप्त हुआ। वे बोलीं कि, "धिक्कार है तुम्हारे मानुषी जीवन को! मैं तो स्त्री जाति हूं। तौभी अपने साहस और धैर्य के बल पर मैं अपने कर्तव्य-कर्म का परित्याग करना नहीं चाहती। तुम पुरुष होकर ऐसे कायरता के वाक्य मुख से निकालते हो! इस असार संसार में एक दिन मरना सभी को है। यदि हम अपने राजा के काम आवें, और उस कर्तव्य-यज्ञ में हमारा मानवी जीवन भी समाप्त होजाय, तो क्या हम इस लोक और परलोक में यशस्वी

न होंगे ? मेरी तो इच्छा कभी युद्ध से पराङ्मुख होने की नहीं है।" वीर-बाला के इन वाक्यों को सुनकर कर्मचारीगण बहुत लज्जित हुए। तब महारानी लक्ष्मीबाई ने नत्थेखां से कहला भेजा कि "प्रबल अँगरेज-सरकार की आज्ञा से मैं इस राज्य का प्रबंध कर रही हूं। आप जैसे शूर पुरुषों को स्त्रियों के साथ छेड़छाड़ करना उचित नहीं है। यदि तुम अपना हठ न छोड़ोगे तो याद रक्खो, कि मैं परम-पराक्रमी शिवरावभाऊ की बहू हूं"। नत्थेखां जय की आशा से उन्मत्त हो गया था। जब उसको यह समाचार विदित हुआ कि महारानी लक्ष्मीबाई युद्ध करने को तैयार हैं तब उसने क्रोधित होकर अपनी सेना को क़िले पर धावा करने की आज्ञा दी।

इधर महारानी लक्ष्मीबाई ने भी झांसी-प्रान्त के बड़े बड़े ठाकुर और बुन्देले जागीरदारों को निमंत्रित करके राज-महल में एक दरबार किया। दीवान जवाहरसिंह कटीलेवाले पवार, दीवान दुलीपसिंह, ओरछा के राजा के दामाद, दीवान रघुनाथसिंह आदि प्राचीन सरदारों के आने पर महारानी ने कहा कि "आप लोग ओरछा के राजा के सम्बन्धी और झांसी की गद्दी के ताबेदार हैं। आप लोगों को इस कुसमय में मेरी सहायता करनी चाहिये"। इस पर सब लोगों ने यह कहा कि "झांसी-राज्य बृटिश-सरकार के अधीन है। इस कारण, इसके संरक्षणार्थ, सहायता करना हमारा कर्तव्य है। हम हर तरह सहायता देने को तैयार हैं। जबतक हमारे शरीर में प्राण हैं तबतक हम युद्ध-क्षेत्र से नहीं हट सकते"। यह सुनकर महारानी को धैर्य आया और वे प्रसन्न होकर बोलीं कि आप सरीखे क्षत्रिय-वीरों की सहायता से ही मुसलमानी राज्य में अकबर बादशाह ने सारे भारत को अपने अधीन करलिया था। इसमें सन्देह नहीं कि, बृटिश-सरकार भी, आपही की सहायता से, विजयी हुई और होगी। अब आप लोग युद्ध के लिये सामान इकट्ठा कीजिये।

महारानी लक्ष्मीबाई ने पुरानी तोपों को, जो जमीन में गड़ी हुई थीं, बाहर निकलवाकर दुरुस्त करवाया और उनको किले के बुर्जों पर रखवाया। बारूद

गोली बनाने का एक कारखाना खोला गया; जिसमें बड़ी शीघ्रता से युद्ध की सामग्री तैयार होने लगी। ठाकुर और बुन्देले सरदारों की सेना भी वहां आ पहुंची। प्रातःकाल होते ही महारानी ने, दीवान जवाहरसिंह कटीलेवाले को, रणकंकण बांधकर, सेनापति नियत किया। लक्ष्मीबाई भी स्वयं मरदानी पोशाक पहने, सिर में साफ़ा बांधे, कमर में तलवार लटकाए, गले में मोतियों का हार पहने, क़िले के मुख्य बुर्ज पर जा पहुंचीं और वहां उन्होंने पेशवाओं के समय का प्राचीन झंडा और बृटिश-सरकार का दिया हुआ "यूनियन जैक" नाम का झंडा खड़ा किया।

नत्थेखां की सेना क़िले के दक्षिण ओर से आने लगी। ज्योंही वह तोप के गोलों की मार के भीतर पहुंची त्योंही महारानी ने अपने चतुर गोलंदाज़ ग़ुलाम गौसख़ां को तोप दागने की आज्ञा दी। इन गोलों की मार नत्थेखां की फ़ौज सह न सकी। व्याकुल होकर उसके पैर उखड़ गये और वह पीछे हटने लगी। इस तरह एक असहाय स्त्री से हार खाकर, नत्थेख़ां बहुत लज्जित हुआ। तब उसने रात को क़िले के ओरछा-दरवाज़े पर चार तोपों का निशाना लगाया और अपनी सेना के चार भाग करके झांसी की सेना पर हमला किया। जब ओरछा-दरवाज़े पर लगातार गोले बरसने से कुछ चोट लगी तब महारानी लक्ष्मीबाई शीघ्रही दरवाज़े के पास आईं और सिपाहियों को शाबाशी देकर दृढ़ता से युद्ध करने के लिये उत्साहित किया। सिपाहियों ने भी बड़ी बहादुरी दिखलाई। उन्होंने शत्रुओं को दरवाज़े के भीतर घुसने न दिया। इतने में महारानी के विश्वासपात्र शूर सरदार लाला भाऊबख़्शी ने झांसी की विख्यात तोप **कड़क बिजुली** को बुर्ज पर चढ़वाया। इस तोप से गोले छूटते ही शत्रु की सेना तितर बितर होगई और अपनी सब तोपों को रणभूमि में छोड़कर भागने लगी! इसके बाद भी कई दिनों तक युद्ध होता रहा; परंतु नत्थेख़ां की विजय न हुई। दीवान रघुनाथसिंह ने एक पहाड़ी पर से, जहां पर वे नियत किये गये थे, नत्थेख़ां की बची बचाई फ़ौज को तहस नहस कर डाला। महारानी ने प्रसन्न होकर, रघुनाथसिंह को, बहुत कुछ पुरस्कार दिया। नत्थेख़ां हार खाकर रणभूमि से भाग गया और अन्य उपायों से महारानी को तकलीफ़ देने लगा।

इस प्रकार, महारानी लक्ष्मीबाई ने, झांसी-राज्य पर आक्रमण करनेवाले दूसरे शत्रु का भी नाश किया, और बड़ी शूरता और दक्षता से झांसी प्रांत की रक्षा की। उन्होंने इन सब आकस्मिक घटनाओं का समाचार हैमिल्टन साहब को लिखवा भेजा, परन्तु नत्थेखां ने सुराग लगाकर उस पत्र के लेजानेवाले को मार डाला और एक दूसरा पत्र अपनी ओर से यह लिखकर भेज दिया कि, रानी लक्ष्मीबाई बागी हो गई हैं और मैं उनसे युद्ध कर रहा हूं। दैवगति भी बड़ी विचित्र है ! यद्यपि महारानी लक्ष्मीबाई ने बृटिश सरकार की ओर से झांसी—राज्य का उत्तम प्रबंध किया और उसको अनेक शत्रुओं से बचाया, तथापि उनके परिश्रम का उचित फल उन्हें मिलने न पाया !! महारानी के परिश्रम के संबंध में मिस्टर मार्टिन साहब ने यह लिखा है—"After the mutinous troops had quitted Jhansi, she certainly took possession of her country when the two States, Dattia and Tehree, who could easily have protected our people, but would not, so much as raise a finger to help us, though the Orcha boundary was not more than a mile and half from Jhansi parade grounds, and that of Dattia only 6 miles—with large bodies of armed men on their respective frontier watching the doings of our Troops. Imagining that the Ranee being unprepared, and that they would with ease wrest her country from her hands, attacked her with their combined forces, and were, from time to time, thrashed back by that gallant Lady." इसका भावार्थ यह है—

"इसमें संदेह नहीं कि जब बागियों की सेना झांसी से चली गई तब उन्होंने वह प्रांत अपने अधिकार में ले लिया; परंतु उस समय दतिया और टेहरी के राजाओं ने हम लोगों की सहायता के लिये एक अंगुली भी न उठाई। यदि वे चाहते तो बहुत आसानी से हम लोगों की सहायता कर सकते थे; क्योंकि ओरछाराज्य की सीमा झांसी के परेड से सिर्फ डेढ़ मील और दतिया-राज्य की सीमा सिर्फ छः मील थी। वे अपनी अपनी सरहद में फौज लेकर हमारी सेना की कार्रवाई देख रहे थे। उन दोनों ने अपनी सेना एकत्रित करके महारानी लक्ष्मीबाई पर यह सोचकर हमला किया कि वे युद्ध के लिये तैयार न होंगी और हम लोग आसानी से उनका राज्य छीन लेंगे। परंतु इस वीरशालिनी स्त्री ने उनके दांत खूब खट्टे किये।"

इस अनुपम सेवा का फल यही हुआ कि अंगरेज़ों के मन में महारानी लक्ष्मीबाई के बागी होने का वृथा भ्रम उत्पन्न हो गया !

उपर यह बात सिद्ध की गई है कि महारानी लक्ष्मीबाई का, बागियों से, किसी प्रकार का सम्बन्ध न था। नत्थेखां के साथ उन्होंने जो घनघोर संग्राम किया उससे भी यही बात सिद्ध होती है कि वे बागी नहीं थीं। यदि वे सचमुच बागी होतीं तो उन्होंने, नत्थेखां के साथ मिलकर, बृटिश-सत्ता का विरोध क्यों नहीं किया ? यदि वे ऐसा करतीं तो निस्सन्देह विद्रोहियों का बल कई गुना अधिक बढ़ जाता। इसके सिवा, जिस दीवान रघुनाथसिंह की सहायता से लक्ष्मीबाई ने विजय पाई, उसकी योग्यता से भी यही बात सिद्ध होती है कि, वे विद्रोहियों से पृथक् थीं। दीवान रघुनाथसिंह ने विलियम हेनरी स्लीमन के जमाने में शूरता के बहुतसे काम किये थे। इस लिए उनको 'ख़ास विक्टोरिया का सार्टिफिकट और शस्त्र-पुरस्कार' प्राप्त हुआ था। यदि उनका सम्बन्ध किसी विद्रोही से होता तो सरकार उनका आदर कदापि न करती। अतएव हमारा यह विश्वास है कि ऐसी योग्यता के सरदार ने जिनकी रणभूमि में सहायता की वे महारानी लक्ष्मीबाई बागी नहीं थीं; किन्तु वे जैसा अपने खलीतों में लिखकर भेजती थीं, अंगरेजों की ओर से ही झांसी-राज्य की रक्षा कर रही थीं। दुर्भाग्यवश, उनके उज्वल हार्दिक विचारों का प्रभाव, उस समय के अंगरेज अधिकारियों के मन पर, कुछ भी न हुआ ! वे व्यर्थ ही बागी समझी गईं !

पांचवां अध्याय

महारानी लक्ष्मीबाई का शासन-समय और झांसी की लड़ाई।

स्त्रियांहि नाम खल्वेता निसर्गादेव पंडिताः।
पुरुषाणां तु पांडित्यं शास्त्रैरेवोपदिश्यते ॥ १ ॥

महारानी लक्ष्मीबाई ने लगभग दस महीने तक, अंगरेजों की ओर से, झांसी-राज्य का यथाशक्ति प्रबंध किया; और जबतक बृटिश-सरकार का अधिकार पुनः पूर्ण-रूप से स्थापित न हो जाय तबतक उस प्रांत को सुरक्षित रखने का उन्होंने बहुत यत्न किया। इसी विचार से उन्होंने झांसी में बहुत सी सेना एकत्र की थी। यह समय इस देश के इतिहास में चिरकाल के लिये प्रसिद्ध हो गया है। जिस समय लक्ष्मीबाई के पति जीवित थे उस समय उनके अनेक स्वाभाविक गुण प्रकट होने नहीं पाए; परंतु अब प्रत्यक्ष राज्य-प्रबंध का भार सिरपर आते ही उनका एक एक गुण प्रकाशित होने लगा। उन्होंने अल्प समय ही में झांसी-प्रांत का ऐसा अच्छा प्रबंध किया कि राजकार्य-प्रवीणता, प्रजावत्सलता, न्याय-कुशलता, स्वधर्मपरायणता, गुणग्राहकता आदि उनके अनेक गुणों से झांसी की प्रजा अत्यंत सुखी और संतुष्ट हो गई। झांसी के राजदरबार में प्राचीन समय की शोभा दिखाई देने लगी और शहर में विविध भांति के नये नये कारखाने जारी हो गये।

इस बात का उल्लेख पिछले अध्याय में किया गया है कि महारानी लक्ष्मीबाई, अपने पति की मृत्यु के पश्चात्, हिंदूधर्म के अनुसार, केवल उदासीनवृत्ति से रहकर, रातदिन पूजापाठ और दानधर्म करने ही में लगी रहती थीं; परंतु जब राज्यप्रबंध का समय आया तब उन्होंने, कार्यवश, अपनी दिनचर्या बदल दी। उसका वर्णन, उनके एक नौकर ने, इस प्रकार किया है:— महारानी लक्ष्मीबाई, नित्य प्रातःकाल के पांच बजे उठकर, स्नानादि से निवृत्त हो, सुंदर स्वच्छ सफेद चंदेरी की साड़ी पहनकर, पार्थिवपूजा करती थीं। उस समय, वहां, गायकगण गान करते और पुराण बाचनेवाले कथा आदि पढ़ते थे। उसके बाद सरदार और आश्रित लोगों का मुजरा होता था। रानी साहबा का ध्यान पूर्णरूप से प्रत्येक कार्य की ओर रहता था। जब कभी कोई सरदार एक या दो दिन तक मुजरा करने के लिये नहीं आता तब वे तुरंत उससे पूछतीं कि, कल आप कहां थे? इसके बाद वे भोजन करतीं और कुछ समय तक आराम करतीं या नजरानों की वस्तुओं की देखभाल करके किसी एक उत्तम वस्तु का स्वीकार करतीं और शेष गरीबों को बांट देती थीं। तीन बजे वे कचहरी को जातीं और वहां शाम तक राज्यप्रबंध और न्याय आदि का काम स्वयं करती थीं। उनकी पोशाक के विषय में गिलीन नामके एक लेखक ने *The Ranee* नामके ग्रंथ में यह लिखा है—"यद्यपि उनका पहनाव स्त्री के पहनाव का सा था तथापि वह उनके समान ऊंचे दर्जे की स्त्रियों के मामूली पहनाव का सा न था। वे सरपर एक चमकीले लाल रेशम की टोपी लगाती थीं, जिसके आसपास मोतियों की लड़ें और जवाहरात जड़े रहते थे। कम से कम एक लाख रुपये की हीरों की एक छोटी सी माला उनके कंठ को सुशोभित करती थी। उनकी कंचुकी सामने खुली रहती थी, जिससे उनकी सुडौल और भरी हुई छाती देख पड़ती थी। यह कंचुकी कमरतक पहुंचती थी और सुनहरी जरीदार कमरपट्टे से दृढ़ बंधी रहती थी। इस कमरपट्टे में दो उत्तम नक्शीदार दमस्क के बने हुए और चांदी से मढ़े हुए पिस्तौल (तमंचे) रहते थे। इन्हींके साथ एक सुडौल पेशकब्ज़ भी रहता था, जिसकी तेज़ नोक विष में बुझाई गई थी और

जिसका एक छोटासा घाव प्राणनाशक होता था। मामूली साड़ी के बदले वे एक ढीला पायजामा पहनती थीं।" एक सुंदर गौरवर्ण की स्त्री की इस प्रकार विचित्र पोशाक देखकर किसी युवा पुरुष का भ्रम होता था। कभी कभी वे स्त्रियों की पोशाक पहनकर कचहरी को जाती थीं। उस समय वे सफ़ेद चादर और चोली पहनती थीं। उनके गले में मोतियों की एक माला और अनामिका में हीरे की एक अंगूठी रहती थी। इसके सिवा उन्होंने और सब आभूषणों का त्याग कर दिया था। दरबार में वे किसी को देख नहीं पड़ती थीं। उनके बैठने के लिये एक अलग कमरा नियत था जिसके दरवाजे पर दो भालदार, हाथों में सोने की छड़ी लिये हुए, खड़े रहते थे। महारानी के पास दीवान लक्ष्मणराव काग़ज़, क़लम, दावात लिये बैठे रहते थे और जो कुछ वे कहती थीं वे लिखते चले जाते थे। लक्ष्मीबाई की बुद्धि बहुत तीव्र थी। जो कोई मामला उनके सामने पेश होता था उसकी वे खूब जांच करतीं और स्वयं उसका निर्णय करती थीं। उनकी न्याय-दक्षता से सब लोग प्रसन्न थे। टेलर साहब ने महारानी के सम्बन्ध में यह लिखा है—"महाराष्ट्र-ब्राह्मण जाति की स्त्री, रानी लक्ष्मीबाई, परदे में रहना पसन्द नहीं करती थीं। वे प्रति दिन अपने मृत पति की गद्दी पर बैठतीं, रपोटें और अर्जियां सुनतीं और हुक्म देती थीं। वे अपने पद के योग्य धैर्य और निश्चय-बुद्धि से व्यवहार करती थीं।"

महारानी की धर्म पर भी बड़ी श्रद्धा थी। वे सदैव श्री महालक्ष्मी जी के मन्दिर में, कभी पालकी और कभी घोड़े पर चढ़ कर, जाया करती थीं। राह में जो गरीब भिखारी लोग मिलते थे उनको कुछ न कुछ दान दक्षिणा देकर वे प्रसन्न करती थीं। उनकी उदारता और दान—शक्ति के सम्बन्ध में अनेक बातें प्रसिद्ध हैं। एक दिन की बात है कि महारानी श्री महालक्ष्मी जी के दर्शन करके दक्षिण-दरवाजे से वापस आ रही थीं। उस समय हजारों भिखारी रास्ते में खड़े होकर हल्ला करने लगे। तब महारानी ने दीवान लक्ष्मणराव से पूछा कि यह क्या है। उन्होंने कहा कि ये सब भिखारी हैं; आज कल जाड़े के दिन हैं; वस्त्रहीन होने के कारण उन्हें बहुत

कष्ट होता है; अतएव उन लोगों की यह प्रार्थना है कि आप उनकी कुछ सहायता करें। यह सुनकर महारानी के कोमल अंतःकरण में दया उत्पन्न हुई। उन्होंने तुरंत आज्ञा दी कि शहर के सब भिखारियों को पेट भर भोजन दिया जाय और हर आदमी को एक मिरजई, टोपी और कम्मल दिया जाय। महारानी की आज्ञा के अनुसार झांसी के सब भिखारियों को भोजन और वस्त्र दिये गये। उनके शासन-समय में कोई भी गरीब भिखारी याचक दुखी न था।

महारानी लक्ष्मीबाई घोड़े पर सवार होने में बड़ी प्रवीण थीं। घोड़े की परीक्षा में तो वे अद्वितीय थीं। उस समय उनका नाम अश्वपरीक्षा में इतना प्रसिद्ध था कि जब कोई घोड़ा मोल लेता तब वह महारानी के पास उसे दिखाने अवश्य जाता था। एक दिन एक सौदागर दो घोड़े लेकर महारानी के पास आया। दोनों घोड़े देखने में बहुत अच्छे थे। लक्ष्मीबाई ने उन घोड़ों की परीक्षा की और यह कहा कि एक घोड़े की क़ीमत एक हज़ार रुपये और दूसरे की पचास रुपये है। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे इस अन्तर का कारण पूछने लगे। जब लक्ष्मीबाई ने यह बतलाया कि दूसरे घोड़े की छाती में चोट है तब घोड़ेवाला भी बहुत प्रसन्न हुआ। उसने महारानी की अश्व-परीक्षा की खूब प्रशंसा की।

महारानी लक्ष्मीबाई बड़ी दयालु थीं। युद्ध में जो पुरुष घायल होते थे उनको वे स्वयं: देखतीं, उनके शरीर पर हाथ फेरतीं और उनके दवा पानी और मलहम पट्टी का प्रबन्ध करती थीं। इस दयालुता ही के कारण उनकी प्रजा उन पर मातृवत् प्रेम करती थी। लक्ष्मीबाई की चतुरता, उदारता, दयालुता आदि गुणों को देखकर यही कहना पड़ता है कि यदि उस भयंकर विद्रोह के समय वे झांसी की रक्षा न करतीं और क़िले को अपने अधिकार में न ले लेतीं तो वह प्रांत विद्रोहियों के हाथ में चला जाता। परंतु दैवयोग से महारानी लक्ष्मीबाई के शासन-समय का अन्त और उसी के साथ उनकी जीवन-लीला के भी समाप्त होने का समय निकट आ गया। जिस समय वे अपने मन में यह सोच रही थीं कि, सन् १८५७ के जून महीने में मैंने अंगरेजों की जो सहायता की और अब तक झांसी-प्रांत की

रक्षा के लिये जो मैंने यत्न किया है उसके पलटे अंगरेज़-सरकार से मुझे कुछ पारितोषिक मिलेगा—जबलपूर के कमिश्नर, सेन्ट्रल इन्डिया (मध्य भारत) के पोलिटिकल एजन्ट और आगरे के कमिश्नर आदि बड़े बड़े अफ़सरों के पास भेजे हुए खलीतों का अच्छा प्रभाव होगा—महाराज गंगाधरराव की मृत्यु-समय की अंतिम इच्छा के अनुसार, न्यायी और उदार बृटिश-गवर्नमेन्ट की ओर से, बालक दामोदरराव के स्वत्वों का उचित विचार होकर उनको वंशपरम्परागत झांसी की गद्दी दी जायगी; ठीक उसी समय, दुर्भाग्यवश, अंगरेज़ों के मन में, बिना कुछ सोच विचार के ही, यह बात समा गई कि, लक्ष्मीबाई बागी हैं और झांसी सब बागियों का एक बड़ा भारी अड्डा है। इसलिये सरकार की आज्ञा से यूरोपीय युद्ध-कला-विशारद, प्रसिद्ध सेनापति, सर ह्यू रोज साहब अपनी प्रचंड सेना लेकर झांसी पर चढ़ाई करने के लिये रवाना हुए। जगन्नाथ पंडित के निम्न श्लोक के भावार्थ के अनुसार, महारानी लक्ष्मीबाई की सब आशाएं नष्ट हो गईं:—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम् ।
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पद्मजालम् ॥
इत्थं विचिंतयति कोशगते द्विरेफे ।
हा ! हंत ! हंत ! नलिनीं गज उज्जहार ! ॥ १ ॥ *

[यही कहना पड़ता है कि 'ईश्वरेच्छा बलीयसी !'

पिछले अध्याय में यह बात लिखी गई है कि, जब से झांसी का राज्य बृटिश-सरकार के अधिकार में चला गया तब से महारानी लक्ष्मीबाई के पास कोई चतुर राजनीति-निपुण पुरुष न था। जो नए नए आदमी महारानी के दरबार में थे वे अल्पकालिक राजसत्ता की प्राप्ति से उन्मत्त

* **भावार्थः**—पंकज रेणु दुरो सो दुरो चकचौंधि भयो मन में अति ऊबा ।
ह्वैहै प्रभात जो भानु उदै अरु छूटो चहै मद मोह में डूबा ॥
बेनी कहै सुन हे मनमूरख है भगवान को खेल अजूबा ।
प्रात: गज खाय गयो नलिनी रहिगो मन को मनही मनसूबा !

हो गये थे। यद्यपि इस बात की खबर झांसी में पहुंच गई थी कि, अंगरेजी सेना झांसी की ओर आ रही है, तथापि उन लोगों ने इस बात पर कुछ भी ध्यान न दिया। दरबार में जो एक दो पुराने आदमी थे, उन लोगों ने नये दरबारियों को बहुतेरा समझाया और कहा कि, इस समय कुछ उचित प्रबंध अवश्य करना चाहिए; परंतु उन लोगों ने किसी की भी न सुनी। तब नाना भोपटकर नाम के एक वृद्ध पुरुष ने, महारानी से एकान्त में मिलकर, यह कहा कि "मैं झांसी की गद्दी का प्राचीन सेवक हूं। यह समय बड़ा कठिन है। यह नहीं कहा जा सकता कि, आपने जो खलीते, समय समय पर, सरकार के पास भिजवाये थे, वे सब सुरक्षित पहुंच गये होंगे। इसलिये अब आप अपने एक वकील को भेजकर भारत-सरकार को यह बात अच्छी तरह से समझा दीजिये कि, झांसी के विद्रोह से आपका कुछ सम्बन्ध नहीं है और सरकार ही की आज्ञा से आप इस राज्य का प्रबन्ध कर रही हैं। यदि यह बात सरकार को विदित न होगी, तो उसका परिणाम बहुत बुरा होगा।" रानी साहब स्वयं राजकाज में निपुण और विचारशीला थीं। उन्होंने नाना भोपटकर की सलाह पसंद की और अपने मंत्रियों को आज्ञा दी कि, ग्वालियर और इन्दौर के पोलिटिकल एजन्टों के पास, अंगरेजी जाननेवाला एक वकील भेजा जाय; परंतु मंत्रियों की मूर्खता और असावधानी से यह काम जैसा होना चाहिए था वैसा न हुआ। उन्होंने अपनी मंडली में से एक नव युवक के सपुर्द यह काम कर दिया! ये महाशय न तो ग्वालियर गये न इन्दौर! वे सेंधिया-सरकार के ईसागढ़ नाम के सूबे में जाकर, रामचंद्र बाजीराव के यहां ठहरे और वहां से झूठा पत्रव्यवहार करने लगे। खेद और दुःख की बात है कि, झांसी-दरबार के अनभिज्ञ लोगों ने, अपने वकील की झूठी चिठ्ठियों पर, विश्वास किया! संस्कृत में एक कहावत है "दुर्मंत्री राज्यनाशाय।" यही कहावत झांसी के दरबारियों ने चरितार्थ कर दिखाई!!

यद्यपि महारानी लक्ष्मीबाई, अंगरेज-सरकार की तरफ से, झांसी-राज्य का प्रबंध कर रही थीं, तथापि उचित समय पर और उचित रीति से, सरकार को सब हाल समझा देने में, उनके दरबारियों ने बहुत बड़ी

भूल की। इसीलिये महारानी की राजनिष्ठा गवर्नमेंट को विदित न हुई। यदि उनकी राजनिष्ठा सरकार को विदित हो जाती, तो वह झांसी पर कभी चढ़ाई न करती। झांसी में १८५७ के जून महीने में जो भयंकर विद्रोह हुआ था उसका वर्णन सुनकर अंगरेज अधिकारियों का मन संतप्त हो गया था। उन्होंने यही समझा कि, उस हत्याकांड में, महारानी लक्ष्मीबाई अवश्य शामिल थीं। अतएव विद्रोहियों का दमन करने के लिये, सरकार ने खूब तैयारी की। विलायत से सर ह्यू रोज साहब बुलवाये गये। वे ता० १६ सेप्टेंबर सन् १८५७ को बम्बई पहुंचे। उन्होंने, कमांडर-इन-चीफ सर क्यांबेल साहब और बुंदेलखंड के पोलिटिकल एजंट ह्यमिल्टन साहब की सलाह से, झांसी पर चढ़ाई का बंदोबस्त किया। कमांडर-इन-चीफ की आज्ञा से फ़ौज के दो भाग किये गये। एक भाग बंबई और मद्रास की फ़ौज का किया गया, जिसका केन्द्र-स्थान मऊ में नियत किया गया। दूसरे भाग का केन्द्रस्थान जबलपुर में नियत किया गया। पहले भाग पर सर ह्यू रोज नियत हुए और दूसरे पर ब्रिगेडियर जनरल विटलाक।

सर ह्यू रोज साहब ने अपनी सेना के दो भाग किये। एक पर स्टुअर्ट साहब को और दूसरे पर स्ट्यूवर्ट साहब को नियत किया। पहिले भाग में बंबई का तीसरा रिसाला, चौदहवीं लाईट ड्रगून्स, हैदराबाद कन्टीन-जंट के दो रिसाले, ८६ वीं पलटन के दो भाग, बंबई नेटिव इनफन्ट्री की २५ वीं पलटन और तीन तोपखाने थे। दूसरे भाग में बंबई के रिसाले का मुख्य भाग, हैदराबाद कनिटनजंट का एक रिसाला, तीसरी बंबई युरोपियन रेजीमेंट, २४ वीं बंबई नेटिव इनफन्ट्री, हैदराबाद कनिटनजंट की एक पैदल पलटन, भूपाल का तोपखाना और मद्रास सायपर्स की एक कंपनी थी। इस सेना का पहिला भाग मऊ में और दूसरा सीहोर में रक्खा गया। इस सारी फ़ौज का अधिकार सर ह्यू रोज साहब ने १७ डिसम्बर सन १८५७ को अपने हाथ में लिया।

तारीख ६ जनवरी सन १८५८ को रोज और हेमिल्टन साहब ने अपनी फ़ौज को सीहोर की ओर बढ़ाया। राह में भूपाल की बेगम के भेजे हुए ८०० सिपाही इस सेना में आकर मिल गये। इन लोगों को साथ

लेकर रोज साहब सागर की ओर विद्रोह दमन करने के लिए चले। सर ह्यू रोज साहब की फ़ौज ने, सागर से २४ मील की दूरी पर, रहटगढ़ नामक स्थान में आकर अपना डेरा डाला। उस समय रहटगढ़ का क़िला * मुसलमान पठानों के अधिकार में था। मुसलमानों ने अपने क़िले की रक्षा का खूब अच्छा प्रबंध किया था; परंतु अंगरेज़ी सेना के सामने उनकी दृढ़ता कुछ भी काम न आई। चार दिन तक घनघोर युद्ध करके मुसलमानों को क़िला खाली करके भाग जाना पड़ा! इस पहिली विजय से रोज साहब को खूब उत्साह मिला और वे अपनी सेना को लेकर आगे बढ़े। रहटगढ़ से १५ मील की दूरी पर बरोदिया नामक ग्राम में बानपूर के राजा ने कुछ थोड़े से विद्रोहियों को सहायता देकर अपने पास रक्खा था। यह समाचार पाते ही रोज साहब ने उन लोगों पर धावा करके उनको वहां से मार भगाया। इस धावे में अंगरेजी सेना के कप्तान नेविहलो नामक एक शूर वीर का देहान्त होगया!

उक्त दो स्थानों में विजय प्राप्त करके, रोज साहब ने तीसरी फ़रवरी को सागर पर चढ़ाई की और वहां के विद्रोहियों को भगाकर, क़िले में जो अंगरेज लोग थे उनको मुक्त किया। जिस समय १४ वीं ड्रगून्स पलटन के सिपाही क़िले के पास पहुंचे उस समय क़िले में घिरे हुए अंगरेजों को बहुत आनंद हुआ। उन्होंने अंगरेजी सेना के स्वागतार्थ तोपों की सलामी दी। इस

* रहटगढ़ का क़िला इतना मज़बूत है कि उसको हस्तगत करने में, सन् १८१० ई. में, दौलतराव सेंधिया के समान शूर सरदार को भी सात आठ महीने तक युद्ध करना पड़ा था। इस क़िले को सर ह्यू रोज़ साहब ने अनायास ही चार दिन में ले लिया! यह बात, अंगरेज़ी सेना के लिये, सचमुच प्रशंसा के योग्य है। परंतु इससे बढ़कर प्रशंसा और आश्चर्य की बात यह है कि, जब रोज़ साहब की सेना ने क़िले को घेर लिया था तब, यद्यपि क़िले के भीतर रहनेवाले बागी लोगों को बाहर जाने के लिये कोई भी मार्ग न था तथापि वे लोग, अपनी जान पर खेलकर, क़िले की दीवाल पर से कूदकर, ऐसे बिकट पहाड़ी रास्तों से भाग गये, जहां न तो पैर रखने की जगह थी और न कोई बिना चकाचौंधी आये खड़ा रह सकता था! अंगरेज़ी सेना ने न तो वहां एक जिन्दा आदमी पाया और न स्त्री! इसी विस्मयकारी घटना के सम्बन्ध में, डाक्टर लो साहब ने लिखा है कि:—

"The most amazing thing was to see the place from whence they had escaped. To look down the precipitious path made one giddy; and yet down this place, where no possible footing could be seen, they had all gone—men and women—in the dead of the night! One or two mangled bodies lay at the bottom, attesting the difficulty of the descent",

प्रकार, सागर तक का सब प्रांत विद्रोहियों के कबजे से छीनकर, रोज साहब ने गढ़ाकोटा नामक क़िले पर, जो सागर से २५ मील की दूरी पर था, चढ़ाई की। यह क़िला बंगाल की ५१ और ५२ वीं पलटन के बाग़ी सिपाहियों के हाथ में था। अंग्रेजी सेना ने उसको सहजही में हस्तगत कर लिया।

जब रोज साहब ने यह देखा कि नर्मदा नदी के उत्तरी किनारे का बहुतसा भाग अपने हाथ में आगया है, तब उन्होंने बुँदेलखंड की ओर बढ़ने का निश्चय किया। वे यह समझते थे कि बुँदेलखंड के विद्रोहियों का मुख्य स्थान झांसी है। उधर कमान्डर-इन-चीफ़, सर कालिन क्यांबेल साहब, ने भी इसी बात का अनुरोध किया कि, झांसी को हस्तगत किये बिना उत्तर हिन्दुस्थान के बाग़ियों का पराजय न होगा। परंतु झांसी तक पहुंचने के लिए, मार्ग में अनेक कठिनाइयां थीं। सागर से कानपुर तक का सब प्रदेश बाग़ियों के कबजे में था। राह में नारूत, मालथोन, मदनपुर और धामौनी आदि बड़ी बड़ी घाटियां हैं। वहां विद्रोहियों ने दृढ़ता से युद्ध करने का ख़ूब प्रबंध किया था। रोज साहब कुछ ऐसे वैसे सेनानायक न थे। वे युद्धविद्या से पूर्ण-परिचित थे। उनको यह पहिलेही से ज्ञात था कि विद्रोही लोग अमुक अमुक स्थान पर हमारे साथ युद्ध करेंगे। इसलिए उन्होंने अपनी फ़ौज के बहुत से भाग करके, उन्हें भिन्न भिन्न मार्गों से निकल जाने की आज्ञा दी। और वे स्वयं नारूत घाट पर से जाने के लिए तैयार हुए। परंतु नारूत घाट के ऊपर, बानपुर का राजा, युद्ध के लिये तैयार है, यह जानकर उन्होंने मदनपुर घाट से, जो शाहगढ़ के राजा के अधिकार में था, निकल जाने का इरादा किया। इस मार्ग से जाने में भी एक बात का भय था। वह यह कि, जब बानपुर के राजा को यह मालूम होगा कि, अंगरेजी-सेना मदनपुर के घाट से पार उतरना चाहती है, तब वह अपनी सेना लेकर शाहगढ़ के राजा की सहायता के लिये आ जायगा; और ऐसा होने से, दो राजाओं की एकत्रित सेना से युद्ध करना पड़ेगा। इसलिये उन्होंने अपनी थोड़ी सी फ़ौज नारूत घाट की ओर भेजदी और बानपुर के राजा को उधर अटका रखने का प्रबंध किया। इसके बाद वे अपनी सब सेना लेकर, मदनपुर के घाट पर से, बे-खटके चले गये। वहां पर अंगरेजी सेना को

बाग़ियों के साथ कुछ समय तक युद्ध करना पड़ा। खुद रोज़ साहब के एक गोली लगी और उनका घोड़ा गोली लगने से मरगया। इस युद्ध में बहुत से बुंदेले सरदार काम आये। अंगरेज़ी सेना, विद्रोहियों को हटाती हुई सराय के क़िले के समीप आई। सराय का क़िला एक छोटी सी पहाड़ी के ऊपर था। उसके समीप ही शाहगढ़ के राजा का एक सुंदर बाग़ था। उसी बाग़ में अंगरेज़ी सेना ने अपना डेरा डाला। दूसरे दिन मुरोवरा गांव पर चढ़ाई करके वहां का क़िला भी अंगरेज़ी सेना ने अपने अधिकार में करलिया। इस प्रकार, जब उस प्रांत के सब विद्रोहियों का विध्वंस हो गया, तब पोलिटिकल एजंट सर राबर्ट हैमिल्टन साहब ने शाहगढ़-राज्य को बृटिश-राज्य में मिलाए जाने की आज्ञा प्रकाशित करदी। इस आनंद के समय, सरकारी सेना ने, सराय के क़िले पर से तोपों की सलामी दी। शाहगढ़ का राजा तो पहले ही भाग गया था; अब उसके कई सरदारों को पकड़कर फांसी दी गई! उस राजा का एक ज्योतिषी भी इस लड़ाई में पकड़ा गया था। उसीने राजा साहब को मुहूर्त (सुदिन) बतलाकर युद्ध के लिये उत्तेजना दी थी। उसके सम्बन्ध में डाक्टर लो साहब, जो अंगरेज़ी सेना के साथ थे, यह लिखते हैं:—

"The Raja of Shahghur had escaped, and his astrologer, who was now in our hands, confessd that he had been mistaken in his prediction of the fitting day for the annihilation of the Feringhees. He evidently had read the stars through a glass darkly that night, and had woefully proved himself a false prophet!"

इसका भावार्थ यह है:—"शाहगढ़ का राजा भाग गया। उसका ज्योतिषी, जो अब हमारे पास है, यह कहता है कि, फिरंगियों के नाश के लिये मुहूर्त-निश्चय में, मुझसे भूल होगई। उसने उस रात्रि को सितारों को कांच के द्वारा अच्छी तरह नहीं देखा। इसलिये उसने अपने को झूठा भविष्यवादी साबित किया।" इस प्रकार, ज्योतिषविद्या पर विश्वास रखकर, जो लोग युद्ध करते हैं, उनको कितना यश प्राप्त हो सकता है, इसका पाठकगण स्वयं विचार कर लें।

रोज साहब की सेना का जो भाग बानपुर की ओर गया था उसमे उधर बहुत कम युद्ध हुआ। इसका कारण यह है कि, जब बानपुर के राजा मर्दनसिंह ने यह सुना कि, शाहगढ़ के राजा को पराजित करके अंगरेजी सेना मदनपुर घाट से पार होगई, तब उसने लड़ना व्यर्थ समझा। वह अपने बाल बच्चों को साथ लेकर भाग गया! इस तरह, अंगरेजी सेना ने बानपुर को सहजही में अपने अधिकार में करलिया। सेना ने वहां आकर देखा तो शहर खाली पाया। हमिल्टन साहब ने १० मार्च को. यह आज्ञा प्रकाशित की कि, बानपुर बृटिश-गवर्नमेण्ट के आधीन है और जो लोग बलवे में शामिल नहीं हैं वे वहां निर्भय होकर रहें। बानपुर के राजमहल का कुछ भाग मेजर बयली ने ११ मार्च को तोप से उड़ा दिया और शेष भाग में आग लगवा दी। रात भर इस प्रचंड अग्नि-लीला से अंगरेजी सेना अपनी अपूर्व विजय का आनन्द मनाती रही। १२ तारीख को अंगरेजी सेना तालबेहट गांव के समीप पहुँची। वहां बहुत से विद्रोही एकत्रित थे। वहां का क़िला भी उन लोगों ने हस्तगत कर लिया था। पहले पहल तो मेजर आर और विद्रोहियों में कुछ थोड़ा युद्ध हुआ; परन्तु जब उन लोगों ने यह देखा कि, अंगरेजी सेना अधिक है तब वे इधर उधर भाग गए और क़िला सहजही में अंगरेजों के हाथ आ गया। यह क़िला एक छोटीसी सुहावनी टेकड़ी के ऊपर बना हुआ है। इसके चारों ओर सृष्टि की बड़ी ही अपूर्व सुन्दरता दिखाई देती है। इसी क़िले पर अंगरेजों ने अपना झंडा खड़ा किया। इस प्रकार विजय करते हुए रोज साहब १७ मार्च को बेतवा नदी के पार हुए। उसी दिन उनकी सेना ने, चन्देरी का प्राचीन और प्रसिद्ध क़िला विद्रोहियों से छीनकर, झांसी की ओर क़दम बढ़ाया। रोज साहब अपनी सेना साथ लेकर १९ तारीख को, झांसी से १४ मील की दूरी पर, चंचनपुर नाम के गांव में जा पहुंचे। दूसरे दिन उन्होंने एक तोपखाना और कुछ घुड़सवार झांसी के मार्गों की देख-भाल करके नाकाबन्दी करने के लिये भेजे। इसके बाद वे स्वयं जानेवाले थे कि, इतने में कुछ घुड़सवारों ने आकर गवर्नर जनरल साहब का एक पत्र सर राबर्ट हमिल्टन साहब को और दूसरा पत्र कमांडर-इन-चीफ़

का रोज़ साहब को दिया। इन पत्रों को पढ़कर उन दोनों को कुछ आश्चर्य और कुछ चिन्ता हुई। इन पत्रों का सारांश यह था कि, "बुन्देलखंड-प्रांत में चरखारी का राजा रत्नसिंह अंगरेज़ों का बड़ा मित्र है। उसके राज्य पर तात्या टोपे ने चढ़ाई की है। उसकी रक्षा करना बहुत ज़रूरी है। इसलिये पहले उसको इस संकट से मुक्त करके फिर झांसी पर चढ़ाई की जावे।" गवर्नर जनरल की यह आज्ञा पाकर, रोज़ साहब को बड़ी चिन्ता हुई; क्योंकि उस समय जिस स्थान पर वे थे, वहां से झांसी सिर्फ १४ मील, और चरखारी ८० मील, दूर थी। यदि वे झांसी छोड़कर चरखारी जावें, तो यहां का बना बनाया काम बिगड़ जायगा; और यदि चरखारी न जावें, तो सरकारी आज्ञा का उल्लंघन करना पड़ेगा। रोज़ साहब इसी बात को बहुत देर तक सोचते रहे कि अब क्या किया जावे। तब हमिल्टन साहब ने अपने सिर पर सब ज़िम्मेदारी लेली और यह कहा कि, पहले झांसी के क़िले को अपने अधिकार में ले लेना ही अत्यन्त आवश्यक है। उन्होंने गवर्नर जनरल साहब को भी यह उत्तर लिख दिया कि "यदि हम चरखारी जाते हैं, तो झांसी पर चढ़ाई न हो सकेगी। और फिर कालपी के सम्बन्ध में जो प्रबन्ध हम लोगों ने सोच रक्खा है, वह भी नष्ट हो जायगा। परंतु कालपी को हस्तगत करना सर ह्यू रोज़ साहब का आवश्यक कर्त्तव्य है। यद्यपि हमारी यह इच्छा है कि, हम चरखारी के राजा की सहायता करें, तथापि इस समय इस सेना को उधर ले जाना असम्भव है। रोज़ साहब की यह राय है कि, जब हम झांसी पर चढ़ाई करेंगे, तब उधर (अर्थात्, चरखारी) के सब बाग़ी लोग आपही आप इधर चले आवेंगे। ज्योंही झांसी हमारे हाथ आजायगी त्योंही सब बाग़ियों का समूह तितर बितर हो जायगा; और अन्त में, जिस रानी का नाम इस बलवे का प्रधान कारण है, उसकी सामर्थ्य भी घट जायगी"। इससे यह बात स्पष्ट विदित होती है कि, अंगरेज़ लोग, समय पड़ने पर, कितनी भारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले सकते हैं। इस तरह निश्चय करके, रोज़ साहब अपनी सारी सेना लेकर, २० मार्च को सबेरे ७ बजे, झांसी के बिलकुल समीप पहुंच गये।

जब यह ख़बर झांसी में पहुंची कि, अंगरेज़ी सेना युद्ध के लिये

समीपही आ पहुंची है; तब झांसी के दरबार के लोग घबड़ाने लगे। उस समय दरबार में अनुभव-प्राप्त तथा राजनीति-निपुण मंत्रियों की बहुत कमी थी। वहां एक भी आदमी ऐसा होशयार न था जो, इस संकट से पार होने का, अच्छा प्रबंध करता और रानी साहब की ओर से अंगरेजी सेना को यह समझा देता कि रानी साहब बाग़ी नहीं हैं—वे बृटिश गवर्नमेन्ट की पूर्ण-विश्वासपात्री और पक्षपाती हैं। वहां तो प्रत्येक मनुष्य अपने ही मन के अनुसार काम करने की सलाह देता था। नाना भोपटकर आदि कुछ तजरबेकार और वृद्ध लोगों ने अपने दूत ग्वालियर भेजे और वहां के मुख्य मुख्य लोगों से सलाह ली। उन लोगों ने यही कहा कि, अंगरेजी सेना के साथ युद्ध करना उचित नहीं है; अंगरेजी सेना के प्रधान अधिकारियों से मिलकर रानी साहब की ओर का सब हाल उन्हें बतला देना चाहिए; इससे दोनों पक्षों में मित्रता हो जायगी। यह सलाह झांसी-दरबार के लोगों को पसंद न हुई। इसके सिवाय, एक यह भी बात थी कि, झांसी की सेना के अधिकांश लोग अंगरेजों से अप्रसन्न थे। इन सब लोगों ने द्वेष बुद्धि से, झांसी के नवसिखे और मूर्ख दरबारियों को, अंगरेजों से युद्ध करने की सलाह दी।

इस समय महारानी लक्ष्मीबाई क़िले में रहती थीं। उनको उचित परामर्श देने और अंगरेजों की ओर का सच्चा हाल बतलाने के लिए वहां कोई न था। जिन मूर्ख, राज्यव्यवहारहीन और अनुभव-रहित मंत्रियों का उल्लेख ऊपर किया गया है, उनके सिवाय और किसी को रानी साहब के पास जाने की इजाजत न थी। इसलिये रानी साहब को अंगरेजों की ओर का कुछ हाल मालूम होता न था; और न अंगरेजी सेना ही के अफ़सरों को रानी साहब का कुछ हाल मालूम होता था। उन लोगों ने रानी साहब को यह समझा दिया कि, जिन अंगरेजों का आप इतना विश्वास करती हैं उन्होंने, आपके किये हुए अनेक अच्छे अच्छे कार्यों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया; वरन् आपकी दृढ़ राज-भक्ति का भी कुछ विचार न करके, उन्होंने आपको बाग़ी मान लिया है और अब इसीलिये वे सेना लेकर आपको पकड़ने के लिए यहां आये हैं। लक्ष्मीबाई तो बिचारी

एक अबला स्त्री थीं। उन्होंने इन बातों को सच मान लिया। यद्यपि हमिल्टन साहब बहुत दिनों तक मध्यभारत में पोलिटिकल एजंट का काम कर चुके थे और उन्हें झांसी-राज्य की बहुत कुछ बातें मालूम थीं, तथापि उन्हें भी रानी साहब की ओर का यथार्थ हाल अन्त तक विदित न हुआ। कोई कहते हैं कि, अंगरेजी सेना से रानी साहब को एक पत्र मिला था, जिसमें यह लिखा था कि " आप अपने दीवान लछमणराव, लाला भाऊबख्शी, मोरोपन्त ताम्बे आदि आठ आदमियों को साथ लेकर और निःशस्त्र होकर हमसे मिलिए। " परन्तु यह बात स्वाभिमानी लक्ष्मीबाई को पसन्द न आई। कोई कहते हैं कि, अंगरेजों ने रानी साहब को बाग़ी समझकर उनको और उनके सरदारों को क़ैद कर लेने की ग़रज से बुलाया था। इस तरह क़ैद होने में लक्ष्मीबाई ने अपनी हतक समझी और इसी लिए उन्होंने क्षत्री-धर्मोचित युद्ध करने का निश्चय किया। अर्थात्, जब उन्होंने अपनी राजभक्ति से कुछ लाभ होता हुआ न देखा, तब वे लाचार होकर युद्ध के लिए तैय्यार हुईं। कोई कहते हैं कि, जब अंगरेजी सेना झांसी के समीप पहुंची, तब वहां के लोगों ने यह समझा कि, वह नत्थेखां ही की सेना है और वह अपने सिपाहियों के मुंह सफ़ेद रंग से रंगकर और उन्हें भिन्न भिन्न प्रकार के कपड़े पहिनाकर, झांसी पर चढ़ाई करने के लिए आया है। ऐसा समझकर झांसी-दरबार उसके साथ युद्ध करने के लिए सन्नद्ध हुआ। कोई कहते हैं कि, जब अंगरेजी सेना के कुछ सवार झांसी शहर की देखभाल कर रहे थे, तब उनपर क़िले से गोलियां चलाई गई थीं। इससे अंगरेज चिढ़कर लड़ाई करने लगे। रानी साहब ने भी " विनाशकाले विपरीत बुद्धिः " इस कहावत के अनुसार, बिना कुछ सोचे, अपनी सेना को युद्ध करने की आज्ञा दे दी। कोई कहते हैं कि, रानी साहब ने सुलह करने के लिए अंगरेजी सेना के अफ़सरों के पास अपने कुछ सरदार भेजे थे। परन्तु अंगरेजों ने उन लोगों को फांसी दे दी। इससे दोनों पक्ष के लोगों के मन बिगड़ गए और दोनों ओर से भयंकर युद्ध होने लगा। सारांश यह है कि, इस युद्ध के सम्बन्ध में, जो जो बातें उस समय हुईं; वे इस समय किसीको भी भलीभांति मालूम नहीं हैं और न उनके मालूम होने

का अब कुछ उपायही है। इन बातों का, उस समय की स्थिति से, केवल अनुमान ही किया जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि, उस समय के अंगरेज लोगों के चित्त में पूरा विश्वास था कि, झांसी हीं सब बागियों का मुख्य स्थान है और लक्ष्मीबाई इन बागियों की अगुवा हैं। इसी व्यर्थ भ्रम में पड़कर, उन्होंने झांसी पर चढ़ाई की। झांसी के दरबार में भी कोई ऐसा राजनीति-निपुण और बुद्धिमान आदमी न था जो रानी साहब की राज-भक्ति और उनके शुद्ध हृदय का परिचय बृटिश-सरकार को देकर अंगरेजों के चित्त का भ्रम मिटाता। उस समय दरबार में ऐसे ऐसे अनाड़ी पुरुष थे कि, जो स्वार्थवश होकर रानी साहब को उलटा लड़ाई करने के लिए उभाड़ते थे। अत्यन्त खेद की बात है कि, अंगरेजों के व्यर्थ भ्रम और झांसी-दरबार की बुरी दशा के कारण, लक्ष्मीबाई को अंगरेजी सेना के साथ युद्ध करना पड़ा। यदि रानी साहब का शुद्ध विचार, उनकी असीम राजभक्ति और निष्कपट मित्रता, किसी प्रकार अंगरेजों पर प्रकट हो जाती, तो निस्संदेह बृटिश-गवर्नमेन्ट की ओर से उनका बहुत सम्मान होता। परन्तु होनहार किसीके टाले नहीं टलती। किसी संस्कृत कवि ने ठीक कहा है कि "लिखितमपि ललाटेप्रोज्झितुं कः समर्थः" —'होनहार ह्वै रहै मिटै मेटे न मिटाये'।

अंगरेजी सेना के झांसी के निकट पहुंच जाने तक, लक्ष्मीबाई ने युद्ध की कुछ भी तैयारी नहीं की थी। परन्तु जब उन्होंने अपने मंत्रियों से यह सुना कि, अंगरेजी सेना हमको बागी जानकर झांसी पर चढ़ाई करने और हमको क़ैद करने के लिए आई है; और जब उन्हें इस बात का भी स्मरण दिलाया गया कि जबलपुर के कमिश्नर, आगरा के कमिश्नर, सेन्ट्रल इन्डिया के पोलिटिकल एजन्ट आदि बड़े बड़े अफ़सरों को तथा गवर्नर-जनरल और पार्लिमेन्ट-सभा को अनेक प्रार्थनापत्रों के भेजे जाने पर भी, बृटिश-सरकार ने कुछ विचार नहीं किया; तब तो उनका मन अंगरेजों के अन्याय और दुराग्रह से अत्यंत कुपित हो गया। यही कारण है कि, अबला होने पर भी उन्होंने अपने धैर्य, निश्चय, तेजस्विता, स्वाभि-मान, स्वाधीनता आदि स्वाभाविक गुणों से प्रेरित होकर, राजकुलोचित क्षात्रधर्म और वीरव्रत-पालन का स्वीकार करके, अपनी अनुपम शूरता का परिचय दिया।

झांसी का क़िला शहर के पश्चिम ओर एक छोटी सी पहाड़ी पर बना है। वह बहुत पुराना और मज़बूत है। क़िले के चारों ओर पत्थर और चूने की खूब मज़बूत दीवारें बनी हैं। इन दीवारों की चौड़ाई १६ से २० फुट तक है। युद्ध के समय बड़ी बड़ी तोपों को इन दीवारों पर से, एक स्थान से दूसरे स्थान तक, बड़ी आसानी से ले जाते थे। इन दीवारों में तोपें रखने के लिए बड़े बड़े बुर्ज बने हैं। गर्गज नाम का सबसे बड़ा एक बुर्ज था। वह चालीस हाथ लंबा, उतना ही चौड़ा और सवा सौ हाथ ऊंचा था। उसके चारों कोनों पर चार तोपें रक्खी रहती थीं और मध्य भाग में, बृटिश-सरकार की ओर से झांसी के सूबेदार रामचंद्रराव को मिला हुआ, 'यूनियन जैक' नाम का झंडा फहराता रहता था। क़िले में जगह जगह पर ५१ बड़ी बड़ी तोपें रक्खी थीं। इनमें से भवानीशंकर, कड़कबिजली, घनगर्ज, नालदार, आदि असंख्य मनुष्यों को संहार करनेवाली प्रख्यात तोपें थीं। क़िले में रानी साहब का एक बहुत बड़ा महल था और कुछ सरदारों के रहने के लिए अच्छी अच्छी इमारतें बनी थीं। क़िले के चारों ओर एक खूब गहरी खाई थी जिसको पार होकर कोई क़िले के भीतर आ नहीं सकता था। सारांश, क़िले की रचना स्वभाव ही से उत्तम थी और रानी साहब ने उसकी रक्षा का प्रबन्ध भी खूब परिश्रम से किया था।

क़िले के नैऋत्य कोन से दक्षिण-पूर्व और वायव्य कोन से उत्तर-पश्चिम, शहर की रक्षा के लिए, खूब ऊंची, चौड़ी और मज़बूत दीवार बनी थी। इस दीवार में भी जगह जगह पर बड़े बड़े बुर्ज थे, जिन पर तोपें चढ़ाई गई थीं। इस दीवार में पांच बड़े बड़े दरवाज़े थे। शहर का घेरा कोई साढ़ेचार मील का होगा।

जब यह निश्चय हुआ कि अंगरेज़ों से युद्ध करनाही पड़ेगा, तब महारानी लक्ष्मीबाई ने शहर और क़िले की रक्षा का, थोड़े ही समय में, उत्तम प्रबंध किया। उनके अद्वितीय धैर्य, अप्रतिम स्वाभिमान और अलौकिक दृढ़ निश्चय का परिचय नत्थेखां के युद्ध के समय लोगों को मिल ही गया था। अब उन्हीं गुणों की परीक्षा का समय फिर आया! उन्हें अपने प्राचीन राज-घराने का बहुत अभिमान था। वे अपनेको 'शिवरावभाऊ की बहू' कहलाने

में मान और भूषण समझती थीं। उनकी सेना में जितने लोग थे, उनमें से बुन्देले और अफ़गानी ही अधिक रणकुशल और परिश्रमी थे। शेष सब लोग युद्ध से अपरिचित थे। बहुत से लोग तो ऐसे भी थे जो अराज़भक्त, अंगरेजों का द्वेष करनेवाले और सचमुच बाग़ी थे। लक्ष्मीबाई ने इस सेना के कई विभाग किये और प्रत्येक विभाग पर उन्होंने अपने विश्वास-पात्र ठाकुर और बुन्देले सरदारों को नियत करके युद्ध का काम सौंप दिया। लक्ष्मीबाई स्वयं सब लोगों की देखभाल और रक्षा का प्रबंध करती थीं। सर ह्यू रोज़ साहब ने लिखा है कि, क़िले पर युद्ध की तैयारी का काम अर्थात् मोरचा बाँधने और दारू गोला ढोने का काम स्त्रियां करती थीं। डाक्टर लो, जो रोज़ साहब के साथ थे, लिखते हैं कि "अपने पहुंचने के बादही हमने, उन लोगों को, क़िले के दक्षिण दरवाज़े से थोड़ी दूर पूर्व की ओर, दीवाल पर तीन तोपों का मोरचा बांधने में अत्यन्त मग्न पाया। वे मधुमक्खियों की तरह अपने काम में लगे थे। हिन्दुस्थानियों को इस तेज़ी के साथ, काम करते हुए, मैंने पहले कभी नहीं देखा था। उन्होंने यह मोरचा, बहुत जल्द, और ठीक इन्जीनियरी तरीक़े पर, बांधकर तैयार किया।" क्या शत्रु के मुख से इस प्रकार प्रशंसा सुनकर लक्ष्मीबाई की रणकुशलता के सम्बन्ध में किसीको आनंद न होगा?

अब अंगरेज़ी सेना का कुछ हाल सुनिये। तारीख़ २१ मार्च को, अंगरेज़ी सेनापति सर ह्यू रोज़ साहब ने, झांसी शहर और क़िले की, सूक्ष्म दृष्टि से खूब देखभाल की; और लड़ाई के योग्य स्थान ढूंढ़कर, वहां उन्होंने अपनी फ़ौज और तोपें लगा दीं। शहर और क़िले के भीतर के लोगों को जिन जिन मार्गों से बाहर से, सहायता मिलने की संभावना थी, वे सब मार्ग उन्होंने, अपने आधीन कर लिये; और शहर के सब दरवाज़ों की नाकेबंदी भी करली। ठीक इसी समय चंदेरी से ब्रिगेडियर स्टुअर्ट की कुछ फ़ौज झाँसी आ पहुँची। इससे रोज़ साहब को, झांसी शहर और क़िले को घेरने के काम में, अच्छी सहायता मिली। जिन स्थानों में अंगरेज़ी सेना रक्खी गई थी वहां, उनकी रक्षा के लिए बड़े बड़े खंदक खोदे गये और एक स्थान से दूसरे स्थान तक तार लगाए गये, जिससे एक

स्थान का समाचार दूसरे स्थान पर शीघ्र पहुंच जावे। एक ऊंची सी पहाड़ी पर दूर्बीन लगाई गई, जिसकी सहायता से झांसी के क़िले के भीतर का सब हाल मालूम हो जाता था। वहां एक तारघर भी बनाया गया था। सारांश यह कि, अंगरेज़ी सेना की व्यवस्था, पाश्चात्य युद्ध-विद्या के अनुसार, पूरी पूरी की गई थी।

२३ मार्च को युद्ध का आरंभ हुआ। झांसी के आस पास के सब मैदानों में, और छोटी छोटी पहाड़ियों पर, अंगरेज़ी सेना सुसज्जित होकर, युद्ध के लिए तैयार थी। अपने अफ़सर का हुक्म पातेही, वे लोग क़िले पर हमला करने लगे। परंतु क़िले पर जो तोपें थीं, उनकी मार के सामने वे लोग बहुत देर तक ठहर न सके। तब उसी रात को, तीसरी यूरोपियन पल्टन ने आगे बढ़कर, झांसी शहर की दीवार से, ३०० गज़ की दूरी पर, अपनी तोपों का एक मज़बूत मोरचा बांधा। प्रातःकाल होते ही क़िले पर से तोपें दगने लगीं। जब घनगर्ज नाम की तोप से गोले बरसने लगे तब अंगरेज़ी सेना के होस हवास जाते रहे। इस तोप में यह चमत्कारिक गुण था कि, जब उसमें से गोला छूटता था तब उसका धुआं बिलकुल दिखाई नहीं देता था। इसलिए शत्रुओं को सावधान रहने का अवसर ही नहीं मिलने पाता था। इस तोप से जो भयंकर गोले निकलकर अंगरेज़ी सेना में जाकर गिरते थे वे उनको बहुत हानि पहुंचाते थे। बृटिश सैनिकों ने इस तोप का नाम 'व्हिसलिंग डिक'—Whistling Dick—रक्खा था।

२४ मार्च को अंगरेज़ी सेना ने, चार नये मोरचे और बांधे; और क़िले की दहिनी ओर से हमला करने की तैयारी की। उनकी भयंकर तोपों के गोले क़िले और शहर पर बरसने लगे। २४ और १८ पौंडर्स की तोपों की मार शहर की दीवार पर होने लगी। इस असह्य मार से, झांसी के कईएक गोलंदाज़ मर गये, तोपें बंद हो गई और दीवार में छेद हो गये। इतना होजाने पर भी अंगरेज़ी सेना का कोई मोरचा शहर पर कामयाब न हुआ। परन्तु अत्यन्त खेद और लज्जा की बात है कि, किसी स्वदेश-द्रोही और विश्वासघातक मनुष्य ने अंगरेज़ी सेना को यह भेद बतला दिया कि, पश्चिम की ओर मोरचा बांधने से शहर पर तोपों की मार अच्छी

तरह हो सकेगी। बस, वहां देर किस बात की थी। यह भेद पाते ही, अंगरेज़ों ने पश्चिम की ओर अपने मोरचे बांधे और अपनी बड़ी बड़ी तोपों में से लाल लाल गोले धड़ाधड़ शहर पर बरसाने लगे। एक एक गोला, किसी के घर या रास्ते में गिरकर, दस दस बीस बीस आदमियों के प्राण हरलेता और कई आदमियों को घायल करदेता था। इससे शहर में हाहाकार मच गया! सड़कों में कोई आदमी चलता देख नहीं पड़ता था! चारों ओर सुनसान हो गया! इस अनर्थापत्ति को देख महारानी लक्ष्मीबाई बहुत दुःखित हुईं। उनके स्वाभाविक कोमल अंतःकरण में पीड़ा होने लगी। वे मन ही मन में कहने लगीं कि, ये तो अशुभ लक्षण हैं—कदाचित् यही अपयश और निराशा की पहिली सीढ़ी होगी! परंतु उनका निश्चय अटल और साहस अलौकिक था। उन्होंने अपने सिपाहियों और गोलंदाजों की सहायता के लिए और आदमी भेजकर अंगरेज़ी तोपों की मार से शहर-निवासियों की रक्षा की। इसके बाद उन्होंने शहर के दीन और अनाथ जनों को अन्न-दान किया, ब्राह्मणों को भोजन दिया और अन्य निराश्रित लोगों के लिए सदावर्त खुलवा दिये!

२५ मार्च को रोज़ साहब ने अपनी सेना का कुछ बल क़िले के दक्षिण-ओर लगाया। इधर जो सेना नियत की गई थी उसमें, चन्देरी के युद्ध में विजय प्राप्त की हुई, पहिली ब्रिगेड भी थी। इस ब्रिगेड ने ख़ूब जोर से हमला किया; परंतु कुछ लाभ न हुआ। तब दूसरे दिन, अर्थात् तारीख़ २६ मार्च को, रोज़ साहब ने उन लोगों की सहायता के लिए और सेना भेज दी। दोनों ओर से बड़ा घनघोर युद्ध होने लगा। दोपहर के समय क़िले के दक्षिण-बुर्ज की तोप बंद हो गई। उस तोप पर अंगरेज़ी सेना ऐसे भयंकर गोले बरसा रही थी कि, वहां कोई गोलन्दाज़ ठहर नहीं सकता था। यदि कोई गोलन्दाज़ साहस करके वहां जाता तो तुरंत ही अंगरेज़ों के गोलों से मरकर नीचे गिर पड़ता था। यह दशा देखकर क़िले के सब लोग घबड़ाने लगे। तब महारानी साहब की आज्ञा से पश्चिम-बुर्ज की तोप वहां लाई गई। गोलन्दाज़ ने दूरबीन से देखकर अंगरेज़ी तोप के गोलन्दाज़ पर एक ऐसा गोला चलाया कि, वह तुरंतही मर गया।

अंगरेज़ी गोलन्दाज़ के मरते ही क़िले की पहली तोप फिर ठीक ठीक चलने लगी। इस समय महारानी लक्ष्मीबाई ने संतुष्ट होकर अपने गोलन्दाज़ को चांदी का एक तोड़ा इनाम दिया। इस शूर गोलन्दाज़ का नाम गुलाम गौसखां था, जिसने नत्थेखां के युद्ध के समय भी अपना अतुल पराक्रम प्रकट किया था।

३१ मार्च तक बराबर घनघोर युद्ध होता रहा। दोनों ओर की सेना मुस्तैदी और शूरता से लड़ती रही। अंगरेज़ी सेना के अधिपति भिन्न भिन्न तथा स्वकर्तव्यदक्ष थे और उनके सिपाही पाश्चात्य युद्धकला में प्रवीण तथा आज्ञाधारी थे। अंगरेज़ी सेना में किसी प्रकार की अव्यवस्था न थी। यद्यपि रानी साहब स्वयं शूर और धीरोदार थीं, तथापि उनकी सेना का प्रबंध उतना अच्छा न था। उनकी सेना में प्राय: अनाड़ी, युद्धविद्या से अपरिचित और केवल लूट की सम्पत्ति प्राप्त करने की आशा से हाथ में शस्त्र लेकर लड़ाई में शामिल होनेवाले लोग ही अधिक थे। उनके बड़े बड़े सरदार और अधिकारी लोग भी अंगरेज़ों के विरुद्ध बलवा करनेवालों में से ही थे। वे लोग नियमित रीति से कुछ काम करना तो जानते ही न थे! इस लिये युद्ध के प्रबंध का सब भार अकेली लक्ष्मीबाई के साहस और शूरता पर निर्भर था। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि, झांसी की सेना में नियम, युक्ति, प्रबंध और कर्तव्यदक्षता न होने से, रानी साहब की सारी स्वाभाविक शक्ति व्यर्थ ही चली गई। तथापि उन्होंने अपने बाहुबल और बुद्धिबल से, दस ग्यारह दिनों तक, प्रबल अंगरेज़ी सेना का, भयंकर सामना किया और अपनी अनुपम शूरता तथा अद्भुत पराक्रम की, पाश्चात्य युद्धकला-विशारद यूरोपियन सेना-नायकों से भी, प्रशंसा कराई। क्या यह बात उनके लिए भूषणास्पद नहीं है? देखिए, विपक्षी विद्वान् डाक्टर लो साहब, इस युद्ध के विषय में क्या लिखते हैं।

"On the 28th there was continued heavy firing from the batteries on both attacks, and the enemy kept up a very smart fire upon our various works from their guns and from the whole line of the wall reaching from the fort to the right attack. We had silenced several of their guns, and as often as they were silenced so often did they reopen from them to our astonishment. In the midst of this din and roar, flash

and smoke, a great explosion occurred in the fort on the east face. This followed the constant shelling from the right attack. Every ten minutes, in the twenty-four hours, shell and shot fell in various parts of this doomed place, and fresh fires burst out among the different buildings—each fire greeted with loud hurrahs by the men in our batteries. The excitement frequently became intense, and the gunners continued their work in the scorching sun as though it were winter time. By the 29th. the parapets of the fort bastions were torn down from the left attack, and the evening's guns were accordingly rendered useless.

" At the same time a breach was commenced in the town-wall near the fort. The cannonading went on with great spirit, while the enemy continued a determined opposition from the garden battery on the west side, and from musketry and light guns along the wall.

" During the midday heat scarcely a shot was fired by the enemy but about 3-30 p. m. every evening they reopened upon us with considerable spirit. Round shot of various sizes bounced over our heads, and matchlock balls whizzed like hail about us. From this hour till sun-set was always a dangerous time, and our poor fellows were severely tried. The 'garden battery' and guns on the fort-gate pestered us a good deal. Near the former battery we could see scores of the enemy among the trees sauntering about as though they were superintending a quiet every-day matter of business, although our shell occasionally dropped in the midst of them.

" The breaching and shelling were continued with unabated spirit on the 30th and 31st, and the enemy kept up a fearful fire upon us. Notwithstanding the damage done to their fort and works upon the wall, their vigilance and determination to resist abated not one iota; on the contrary, their danger appeared to add to their courage. "—

Central India P. 242—244.

ठीक ऐसा ही वर्णन, रानी साहब के पक्ष के एक आदमी ने भी लिखा है, जो स्वयं इस युद्ध में शामिल था । अतएव हम उक्त अंगरेजी लेख का अनुवाद न करके, अपने देशी आदमी का लिखा हुआ वर्णन ही यहां पर लिखे देते हैं । पढ़नेवाले इन दोनों वर्णनों का मुक़ाबला करके देखलें कि, इनमें कितनी साम्यता और सत्यता है ।

" रात्रि के समय शहर और क़िले पर बड़े बड़े गोले गिरा करते थे । यह दृश्य बहुत भयानक था । पचास पचास साठ साठ सेर का गोला

एक छोटी सी गेंद के समान तोप से निकल कर आकाश में दौड़ता हुआ दिखाई देता था। प्रत्येक मनुष्य को ऐसा मालूम होता था कि अब यह गोला मेरे ही शिर पर गिरेगा। इस तरह रात दिन मृत्यु के भय से शहर के लोग त्रस्त हो गये थे। कभी रानी साहब की जय होती और अंगरेजी तोपें बंद हो जाती थीं; कभी अंगरेजों की जय होती और रानी साहब की तोपें बंद हो जाती थीं। सातवें दिन सूर्यास्त के समय पश्चिम दिशा की तोप बंद हो गई। वहां कोई भी गोलन्दाज क्षण भर ठहर नहीं सकता था। अंगरेजी तोपों की मार से किले का मोरचा भी टूट गया था। तब अंधेरी रात में कई आदमी कम्मल ओढ़ कर, बुर्ज पर चढ़े; और रातही रात मोरचा दुरुस्त किया! किले की तोप फिर से चलने लगी। अंगरेजी सेना की बहुत हानि हुई।

"आठवें दिन, प्रातःकाल के समय, अंगरेजी सेना ने फिर किले पर गोले बरसाना आरम्भ किया। अंगरेज लोग अपनी दूरबीनों से यह बात जान लेते थे कि किले या शहर में किस जगह कौन आदमी किस प्रकार का युद्ध का प्रबन्ध कर रहा है। उन लोगों ने दूरबीन से देखा कि किले में एक छोटासा जलाशय है जहां लोग पानी भरने जाते हैं। बस, उन लोगों ने उसी जलाशय की ओर अपनी तोप का मुंह फेर दिया। धड़ाधड़ गोले बरसने लगे। पानी भरनेवालों में से कई मर गये, कई इधर उधर भाग गये। दो पहर तक लोगों को पानी न मिला। इससे लोगों के स्नान, भोजन आदि नित्य-आवश्यक कर्म रुक गये। जब रानी साहब को यह समाचार मिला तब उन्होंने पश्चिम और दक्षिण के बुर्जों पर की दोनों तोपें एकदम चलाने की आज्ञा दी। अंगरेजों की तोपें बंद हो गईं। लोग जलाशय पर फिर आने लगे। भोजन आदि हो जाने पर कुछ ही समय हुआ होगा कि, एक बहुत बड़ी आवाज हुई और चारों ओर धुआं और धूल देख पड़ने लगा। लोग भय-भीत हो गये। न जाने यह कौनसी आपत्ति है! जब धुआं कम हुआ तब मालूम हुआ कि रानी साहब के महल के सामने के मैदान में जो बारूद गोले का कारखाना था उसमें आग लग गई। कई आदमी मरे और कई घायल हुए।

"आठवें दिन की लड़ाई बड़ी भयानक थी। दोनों ओर के वीर खूब मुस्तैदी से लड़ते रहे। बंदूक, कड़ाबीन और तोपों की आवाज से आकाश गूंज रहा था। शहर में हजारों मनुष्य मर रहे थे। कुछ लोग अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए, किसी एकांत स्थान में छिप कर रहने का उपाय कर रहे थे। शहर की दीवाल पर जो गोलन्दाज और सिपाही रक्खे गये थे उनमें से बहुतरे मर गये। उनके स्थान में नये आदमी भरती किये गये। रानी साहब को इस युद्ध का प्रबन्ध करने में बहुत परिश्रम करना पड़ा। जहां किसी बात की न्यूनता या अव्यवस्था होती थी वहां वे स्वयं जातीं और उचित प्रबन्ध कर देती थीं। इसी लिए उनकी सेना के लोग उत्साहित और उत्तेजित होकर खूब लड़ रहे थे। यद्यपि अंगरेजों ने शूरता से युद्ध किया तथापि ३१ तारीख* तक उन लोगों का प्रवेश किले के भीतर होने न पाया"।

जिस समय महारानी लक्ष्मीबाई को अंगरेजी सेना से युद्ध करने का निश्चय करना पड़ा उस समय उन्होंने रावसाहब पेशवा को एक पत्र लिखकर यह निवेदन किया था कि इस संकट के समय आप हमारी कुछ सहायता कीजिये। रावसाहब ने अपने सेनापति तात्या टोपे को झांसी जाकर रानी साहब की सहायता करने के लिए आज्ञा दी। तात्या टोपे अपने साथ बीस हजार फौज लेकर कालपी से रवाना हुए और जिस समय अंगरेजी सेना और झांसी की सेना का, ऊपर लिखे अनुसार, खूब घनघोर युद्ध हो रहा था, ठीक उसी समय झांसी के समीप आ पहुँचे। जब यह समाचार, तार द्वारा, रोज साहब ने सुना तब वे बड़े चिंतित हुए और मन में सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए। इसका कारण यह है कि

---

* इसी रात को रानी साहब ने एक विलक्षण स्वप्न देखा 'एक गौरवर्ण और मध्यम अवस्था की सुंदर सुहागिन स्त्री जिसकी नाक सरल थी, माथा ऊंचा था, नेत्र काले और बड़े थे, सब आभूषणों से विभूषित होकर, लाल रंग की सारी पहनकर, अंचल बांधकर, किले के बुर्ज पर खड़ी है और अत्यंत कठोरता से तोप के लाल लाल गोले अपने कोमल हाथों से झेल रही है। और रानी साहब से कह रही है कि, देख मेरे हाथ गोले झेलते झेलते कैसे काले हो गये हैं। मैं ही इन गोलों को झेल सकती हूं।

अंगरेजी फौज बहुत न थी। जो कुछ थी वह सब किले को घेरने, उसपर धावा करने और मारकों की जगहों की नाकाबन्दी करने के लिए नियत की गई थी। रोज़ साहेब को यही भय था कि यदि यह सेना वहां से हटाई जावे तो किला अपने हाथ से जाता रहेगा; इतना ही नहीं, किंतु बाहर की सहायता पाकर, रानी साहब की सेना हम लोगों में से एक को भी जीता न छोड़ेगी। ऐसी स्थिति में विजय-लाभ करना बहुत कठिन काम था। परंतु रोज़ साहब युद्ध विद्या में बड़े निपुण थे। उन्होंने युक्तिपूर्वक अपनी सेना का प्रबंध करके दोनों शत्रुओं का एकदम सामना किया और अन्त मे विजयश्री को अपने वश कर लिया!

सर ह्यू रोज़ साहब ने, ३१ तारीख को, रात्रि के समय पहिली ब्रिगेड के कुछ शूर सिपाहियों को गुप्त रीति से कालपी के रास्ते पर भेज दिया और २४ पौंडर्स की दो तोपें ओरछा की सड़क पर लगा दीं। शहर के भीतर से लोगों का आना जाना बिलकुल बंद कर दिया और रातभर किले पर तोपें चलती रहीं जिससे लोगों को यह न मालूम हो कि अंगरेजी फौज कमजोर हो गई है। इस प्रकार युक्तिपूर्वक रोज़ साहब ने अपने दोनों शत्रुओं की सेना से युद्ध करने की तैयारी की।

तात्या टोपे, बाजीराव साहब पेशवा का, बड़ा पराक्रमी और शूर नौकर था। जब बाजीराव के पुत्र नाना साहब पेशवा अंगरेजों के विरुद्ध बलवा* करने के लिए खड़े हुए तब तात्या टोपे ने उनकी बहुत सहायता की। यथार्थ में तात्या टोपे ही के पराक्रमों से सन् १८५७ ई के बागियों का पक्ष बहुत प्रबल हो गया था। बलवे के समय उसके विषय में, विलायत

---

* बाजीराव के साथ जो संधि की गई थी उसमें यह लिखा था कि, बाजीराव के निजके और उनके कुटुंब के निर्वाह के लिये (For the support of himself and his family ये उस संधिपत्र के शब्द हैं) बहुत पेन्शन दी जायगी चौथे अध्याय में इस बात का उल्लेख किया गया है कि नाना साहेब की, अपने पिता की पेन्शन पाने को, प्रार्थना किस तरह अस्वकृित की गई। अँगरेजों के अन्याय से अप्रसन्न होकर नाना साहेब ने बलवे का झंडा खड़ा किया और कुछ दिनों तक उन लोगों को खूब तंग किया।

के "डेली न्यूज़" समाचारपत्र में, यह लिखा था "तात्या महाराष्ट्र जाति का एक ब्राह्मण है। वह उच्च कुल का पुरुष नहीं है। उसने डांका डालने और लूटमार करने का काम खूब सीखा है। वह बड़ा बुद्धिमान है; परन्तु वह शिक्षित नहीं है—उसको लिखना पढ़ना नहीं आता है। युद्ध के काम में वह निपुण है इसी कारण उसके साथी उसका आदर और मान करते हैं। वह अत्यन्त बलवान है। वह अपनी शूरता और बहादुरी से अपने साथियों को सदा अपने वश में रखता है। उसकी अवस्था ४० वर्ष के क़रीब है। वह बड़ा साहसी और निर्भय पुरुष है। उसका चेहरा शौर्ययुक्त और सतेज है। उसकी आंखों में खूब तेज भरा हुआ है। वह सदैव सादे वस्त्र पहनता है। उसकी शरीर-रक्षा के लिए २५-३० आदमी सदा उसके साथ रहते हैं। वह सदा घोड़े पर सवार होता है परंतु जब कभी थकावट आ जाती है या रणभूमि में जखमी हो जाता है तब वह पालकी में बैठकर चलता है। वह अपने को नाना साहब पेशवा का प्रतिनिधि बतलाता है"। तात्या टोपे की अलौकिक शूरता का वर्णन करते हुए एक अंगरेजी ग्रंथकार ने उसको हिंदू गेरिबाल्डी * कहा है। सच है; जिस प्रकार गेरिबाल्डी ने अपने इटली-देश को स्वतंत्र करने का यत्न किया उसी प्रकार तात्या टोपे ने भी हिंदुस्थान को स्वतंत्र करने का यत्न किया है। और जैसे पोप, आस्ट्रिया का राजा, नेपल्स का राजा और उनके अनुयायी गेरिबाल्डी को आदर की दृष्टि से नहीं देखते; वैसे ही प्राय: सब अंगरेजी अधिकारी और उनके अनुयायी तात्या टोपे को भी आदर की दृष्टि से नहीं देखते!

पहिली अप्रेल को प्रातःकाल ही से अंगरेजों का, तात्या टोपे से, युद्ध आरम्भ हुआ। ऊपर लिखा गया है कि, युद्ध के एक दिन पहले, रात्रि के समय, रोज़ साहब ने अपनी सेना गुप्त रीति से भिन्न भिन्न

---

* देखिये, *Empire in India* नाम के ग्रंथ में यह लिखा है:—"With a little more gallantry, with a few positive exploits added to his negation strategic feats, Tautia Topee would soon have become a Hindoo Garibaldi."

स्थानों में भेज दी थी। इस लिए पेशवा की सेना के अग्रभाग के लोगों को यह मालूम हुआ कि अंगरेजी सेना बहुत थोड़ी है और हम लोग उसका सहज ही में नाश कर डालेंगे। पेशवा की सेना में ग्वालियर की कटिन्जन्ट फौज भी थी। उसने कानपुर में जनरल विंढाम की फौज को पराजित किया था। इस लिए वह विजयानंद से फूल गई थी और यह समझती थी कि, हमारे सामने अंगरेजी फौज क्या ठहर सकती है ? तात्या की निज की फौज, जो सब के पीछे बेतवा नदी के किनारे खड़ी थी, चरखारी पर विजय प्राप्त करने के कारण, वृथा अभिमान में चूर थी ! सारांश, पेशवा की यह सेना, जो महारानी लक्ष्मीबाई को सहायता करने के लिए आई थी, अपनेही राग में मस्त थी। उसने, इस समय, अपने शत्रु की सेना की युक्ति और सामर्थ्य का कुछ भी विचार न किया। इसका परिणाम यह हुआ कि, युद्ध का आरंभ होते ही, पेशवा की सेना का एक भाग झांसी के किले के लोगों की सहायता के लिए जोर से आगे बढ़ता चला गया। परंतु ज्योंही वह अंगरेजों के निशाने के भीतर आया त्योंही उसपर, दाहिनी ओर से कप्तान लाइटफूट के रिसाले और कप्तान प्रेटीजान की पल्टन ने और बाईं ओर से रोज़ साहब की तोपों ने, अपना प्रहार आरंभ किया। इस भयंकर प्रहार से पेशवा की सेना घबड़ाकर इधर उधर भागने लगी। तब तात्या टोपे की तोपें अंगरेजी सेना पर धड़ाधड गोले बरसाने लगीं। पेशवा की सेना कुछ समय तक धैर्य से समरभूमि में खड़ी रही। परंतु जब दाहने बायें दोनों ओर उसपर अंगरेजी रिसाला, पलटन और तोपों का प्रहार होने लगा तब निरुपाय होकर उसने शत्रु को पीठ दिखाई ! इस पराजित सेना के पीछे दो मील पर बेतवा नदी के किनारे तात्या की सेना जंगल में छिपी थी। सर ह्यू रोज़ साहब को यह समाचार किसी एक भेदिया द्वारा मालूम हुआ। उन्होंने तुरन्त कप्तान लाइटफूट को "ईगलट्रूप" की चार तोपें और "फील्ड बैटरी" देकर उधर भेज दिया। अंगरेजी सेना को अपनी ओर आते देख तात्या की सेना ने जंगल में आग लगा दी। जंगल में आग लगा देने पर भी अंगरेजी सेना बेतवा नदी के किनारे तक चली गई। उस समय दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध होने लगा। दोनों ओर की तोपों से लाल लाल गोले बरसने लगे। परंतु अंगरेजी सेना स्थान पर थी; इसलिए

दूसरे दलकी तोपों से उनकी कुछ हानि नहीं हुई। अंगरेज घुड़सवारों ने बड़ी हिम्मत के साथ नदी पैर करके तात्या की फौज पर हमला किया। तात्या की फौज इनके सामने ठहर न सकी! वह अपनी बड़ी बड़ी तोपें रणभूमि में छोड़कर भाग चली! तोपैं बहुत भारी थीं। उनके पहिये नदी के रेत में घुस गये थे। इस कारण वे लोग इन तोपों को भागते समय अपने साथ न ले जा सके। ये सब तोपें और उनका सामान गोला बारूद अनायास अंगरेजी सेना के हाथ आगया। इतनाही नहीं; किन्तु अंगरेजी सेना ने तात्या की फौज का सोलह मील तक पीछा किया और उनकी सारी सामग्री छीन ली। तात्पर्य यह है कि झांसी के दुर्भाग्य या पेशवा की फोज के व्यर्थ घमंड से तात्या टोपे की हार हुई और इस युद्ध में उनके १५०० आदमी खेत रहे! रोज़ साहब की सेना को, विजय प्राप्त होने से, बड़ा आनन्द हुआ। शत्रुओं की सारी सामग्री अनायास हाथ आने से अंगरेजी सेना में सब लोगों को एक प्रकार की नई हिम्मत आगई। इधर झांसी की फौज आठ-दस दिन लगातार युद्ध करते रहने से थक गई थी। उसको तात्या टोपे से सहायता पाने की जो आशा थी वह तो नष्ट होही गई; किन्तु इससे अंगरेजी सेना को जो लाभ हुआ वह झांसी की फौज के लिये इष्ट न था। इस प्रकार निराश होकर झांसी की फौज किले के भीतर हाहाकार मचाने लगी। जिन शूर और प्रतापी तात्या टोपे ने अनेक युद्धों में विजय पाई थी वही, इस समय, भाग्यवश हारकर कालपी को भाग गये! वहां जाकर उन्होंने अपने स्वामी नाना साहब पेशवा से जो कुछ कहा उसका भाव, नीचे लिखे श्लोक में अवश्य मिलता है। यह श्लोक अर्जुन ने अपने विषय में खेदपूर्वक कहा है :—

त एवामी बाणास्तदपि हरलब्धं धनुरिदम।
स एवाहं पार्थः प्रमथितसुरारातिनिचयः॥
इमास्तास्ता गोप्यो हरिचरणचित्तैकशरणाः।
ह्रियंते गोपालै र्विधिरपि बलीयान्नतु नरः॥

सर ह्यू रोज ने तात्या टोपे को इस तरह भगाकर झांसी का किला लेने का दृढ़ संकल्प किया। २३ मार्च से लेकर ३ अप्रेल तक ११ दिन

अंगरेजी सेना किले को घेरकर लड़ती रही; परन्तु महारानी लक्ष्मीबाई के अतुल धर्म और दृढ़ निश्चय से अब तक किले में उनका प्रवेश न हो सका। यह दशा देखकर रोज साहब ने बड़ी चतुरतापूर्वक अपनी सेना को तीन भागों में बांटकर बड़ी दृढ़ता के साथ झांसी के किले पर धावा करने का प्रबंध किया। किले के पश्चिम की ओर से धावा करने के लिए जो सेना भेजी गई थी उसके अधिपति मेजर गाल साहब थे। दाहिनी ओर की सेना के अधिपति ले० क० लिडेल, कप्तान रॉबिनसन और ब्रिगेडियर स्टूवर्ट थे। बाईं ओर से धावा करनेवाली सेना के मुख्य अधिकारी ले० क० लोथ और मेजर स्टुअर्ट थे। यह सब सेना, गुप्त रीति से तैयारी करके, तीसरी अप्रेल को अपने अपने स्थान पर, नियत समय पर, जा डटी। पहले भाग की सेना ने सिड्ढी लगाकर किले के भीतर प्रवेश करने का यत्न किया और दूसरे भाग की सेना ने तलवार और बन्दूक लेकर शत्रुओं से सन्मुख लड़ाई करके शहर के भीतर जाने का यत्न किया। किले के पहरेवालों को जब मालूम हुआ कि अंग्रेजी सेना लड़ने को चली आ रही है तब उन्होंने भयसूचक बाजे बजाकर भीतर की सेना को सचेत कर दिया। इस समय किले में रहनेवालों की दशा किसी प्रकार संतोषदायक न थी। लगातार ग्यारह दिन तक किले पर तोप के गोले बरसते रहे। इस कारण किले की दीवार का बहुत सा भाग कमजोर हो गया था और बहुत से शूर-वीर काम आ चुके थे। तात्या टोपे का पराभव सुनकर सब लोग निराश हो गये थे। वे लोग यह सोचने लगे थे कि पेशवा की बलवान सेना का जिन लोगों ने पराभव किया है वे साधारण मनुष्य नहीं हैं— उनके साथ हम लोग कब तक लड़ सकेंगे! इस तरह महारानी लक्ष्मीबाई की सेना में उदासीनता और निराशा छा गई थी। ऐसी अवस्था में भी उन्होंने अपने धैर्य और निश्चय का त्याग नहीं किया। उन्होंने अपनी फौज के सारे अधिकारियों, सरदारों और सिपाहियों को इकट्ठा करके कहा कि "आज तक आप लोगों ने जिन जिन लड़ाइयों में विजय पाई है वह कुछ पेशवा की फौज के सहारे नहीं। आप अपने ही बल और पराक्रम से सदा विजयी हुए हैं। आज तक आप लोगों ने अपना स्वाभिमान,

अपना धैर्य और अपनी शूरता जिस प्रकार प्रकट करके अपना नाम प्रसिद्ध किया है उसी प्रकार अब भी हिम्मत बांधकर युद्ध करो। झांसी की रक्षा आपही लोगों के हाथ में है। पेशवा की सहायता की कुछ भी अपेक्षा न करनी चाहिए।" इस प्रकार सेना के लोगों को प्रोत्साहित और उत्तेजित करके महारानी ने अपने मुख्य मुख्य सरदारों को स्वर्ण-कङ्कण और वस्त्राभूषण पुरस्कार में दिये। इससे झांसी के शूर बुंदेलों, मराठों और मुसलमानों को युद्ध करने का फिर साहस हुआ। झांसी के प्रसिद्ध गोलन्दाज गुलाम गौसखां ने तोपखाने का उत्तम प्रबंध करके पूर्ववत् अंग्रेजी सेना पर गोला फेंकना आरंभ किया। कुंअर खुदाबख्श और दूसरे कितनेही बड़े बड़े सरदारों ने अपने अपने मोरचे सम्हालकर अंग्रेजी सेना से युद्ध आरंभ कर दिया। महारानी लक्ष्मीबाई किले की रक्षा के लिये स्वयं परिश्रम कर रही थीं। उस रात को बड़ाही भयंकर संग्राम हुआ। अंगरेज गोलन्दाजों ने कमाल कर दी। गोलों की ऐसी वृष्टि हुई कि किले की दीवार में बड़े बड़े छेद हो गये। राजमहल को भी गोलों से बहुत हानि पहुँची। महल के भीतर गणपति का एक बहुत ही उत्तम मंदिर था। वहां भादों के महीने में गणेशचतुर्थी के दिन बड़ा उत्सव होता था। गोलों की वृष्टि से यह मंदिर चूर चूर हो गया। चार आदमियों की मृत्यु भी हुई! इस कारण महल में हाहाकार मच गया और सब लोग धैर्यच्युत होकर "किं कर्तव्य-विमूढ़" हो गये। परंतु लक्ष्मीबाई का धीरज अटल बना रहा। वे बड़ी सावधानी से किले की रक्षा करती रहीं। कमर में तलवार बांधकर और हर एक मोरचों पर स्वयं जाकर वे फौज के अधिकारियों को उत्तेजित करती थीं। ऐसे भयंकर समय में उनका साहस और वीरता दूनी हो गई थी। महारानी लक्ष्मीबाई के इस प्रकार उत्साह दिलाने पर झांसी की सेना में फिर से हिम्मत आ गई और अत्यन्त घनघोर युद्ध होने लगा।

अंगरेजी फौज ने झांसी विजय करने के लिये जब शहर के मुख्य दरवाजे पर हमला किया तब शहर की दीवाल और क़िले के बुर्ज पर से तोप के गोले छूटने लगे। कुछ समय तक अंगरेजी सेना पर अग्नि की लाल चद्दर छाई हुई देख पड़ती थी। बंदूक़ों की गोलियों की मार से, तोपों

के गोलों की वृष्टि से और अन्य प्राणनाशक शस्त्रों के प्रहार से अंगरेजी सेना घबड़ाने लगी। ऐसी दशा में भी ले. डिक, ले. मिकलीजान, ले. बोनस और ले० फाक्स आदि अंगरेज वीरों ने, अपने जीवन की आशा परित्याग करके, बड़े साहस के साथ, शहर की दीवार पर सीढ़ी लगा कर चढ़ जाने का यत्न किया। परन्तु भीतर के वीर लोगों के सन्मुख एक भी ठहर नहीं सके। भीतर की सेना ने झांसी शहर की दीवाल और मुख्य दरवाजे की रक्षा भली भांति की। इतने में ले० डिक और ले० मिकलीजान बड़ी चतुरता से, संकटों को झेलते हुए, सीढ़ी लगा कर दीवार पर खड़े हो गये। और अपनी पलटन को बुलाने लगे। परंतु झांसी की फौज ने उनको तुरंतही मार डाला। यही हाल ले० बोनस और फाक्स का हुआ। तात्पर्य यह है कि अंगरेजी सेना ने शहर की दीवार पर चढ़ जाने का बहुतेरा प्रयत्न किया; पर झासी की फौज ने उनका यह उद्देश सिद्ध होने न दिया।*

---

* इस लड़ाई का जो वर्णन डाक्टर लो साहब ने किया है उससे झांसी की सेना की शूरता अच्छी तरह प्रकट होती है।

"No sooner did we turn into the road leading towards the gate than the enemy's bugles sounded, and a fire of indescribable fierceness opened upon us from the whole line of the wall, and from the towers of the fort overlooking this site. For a time it appeared like a sheet of fire, out of which burst a storm of bullets, round shots and rockets, destined for our annihilation. We had upwards of two hundred yards to march through this fiendish fire, and we did it, and the Sappers planted the ladders against the wall in three places for the stormers to ascend; but the fire of the enemy waxed stronger and amid the chaos of sounds of vollies of musketry and roaring of cannon, and hissing and bursting of rockets, stink-pots, infernal machines, huge stones, blocks of wood and trees, all hurled upon their devoted heads,— the men wavered for a moment, and sheltered themselves behind stones. But the ladders were there, and there the sappers, animated by the heroism of their officers,

दक्षिण की ओर कुछ और ही हुआ। इधर जब ले० डिक के अधिकार की सेना का पराजय हो गया तब ब्राकमन साहब ने महाराणी लक्ष्मीबाई की सेना में घुसकर उनकी शक्ति के नाश करने का यत्न किया। और ब्रिगेडियर स्टुअर्ट और कर्नल लोथ ने, अपनी २५ वीं और ८६ वीं पैदल पलटन की सहायता से, झांसी शहर का ओरछा-दरवाजा हस्तगत कर लिया। यह दशा देख शहर की फौज, निर्भय होकर और अपने प्राणों का मोह छोड़ कर, अंगरेजी सेना को काट काट कर फेंकने लगी। परन्तु अंगरेजी सेना टिड्डी-दल की तरह भीतर घुसती ही गई। दक्षिण-ओर की सेना के विजय का समाचार जब दाहिनी-ओरवालों को मिला तब वे भी फिर से हिम्मत बांधकर किले की दीवाल पर सिड्ढी लगा कर चढ़ने लगे। दीवाल की रक्षा के लिये जो बुंदेले लोग नियत किये गये थे उन्होंने अंगरेजी सेना को असह्य वेदना पहुँचाई; पर दुर्भाग्यवश उनसे किले की रक्षा अंत तक न हो सकी। थोड़े ही समय में हजारों गोरे शहर की दक्षिण दीवार पर देख पड़ने लगे। इस विजय में दूलाजी बुंदेले से अंगरेजों को बहुत सहायता मिली। कहते हैं कि, इस उपकार के बदले, अंगरेजी-सरकार ने अपने परम राजनिष्ठ दूलाजी को दो गांव जागीर में दिये। इस तरह ओरछा-दरवाजे को हस्तगत करने के पश्चात् शीघ्रही सर ह्यू रोज साहब ने झांसी की सेना को वहां से मार भगाया और बुर्ज पर अपना अधिकार जमा लिया। यहां से उन्होंने शहर के भीतर आगे बढ़ कर राजमहल को हस्तगत करने का निश्चय किया।

महारानी लक्ष्मीबाई किले के सारे मोरचों पर स्वयं जाकर

---

keeping firm hold until a wound or death struck them down beneath the walls. It seems as though Pluto and the furies had been loosed upon us; and inside bugles were sounding and tomtoms beating madly, while the cannon and the musket were booming and rattling, and carrying death among us fast. At this instant on our right three of the ladders broke under the weight of men, and a bugle sounded on our right for the Europeans to retire !!"—*Central India P. 204.*

अपनी सेना को उत्साह दिलातीं और बड़ी सावधानी से लड़ती थीं! जब उन्होंने यह समाचार पाया कि शहर के दक्षिण दरवाजे पर शत्रु की सेना ने अपना अधिकार जमा लिया है और वहां से गोरे लोग शहर में घुसने चले जा रहे हैं तब उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ। वे कुछ समय तक "किं कर्तव्य-विमूढ़" होकर निस्तब्ध हो गईं। यह देख कर, कि १२ दिन भयंकर संग्राम करने पर भी अंगरेजों ने झांसी विजय कर ही ली, महारानी लक्ष्मीबाई का हृदय व्याकुल हो गया। किले की दीवार पर खड़े होकर जब उन्होंने शहर के दक्षिण भाग की ओर देखा तब शहर के भीतर हजारों गोरों को घूमते देख और शहरवासियों के हाहाकार को सुनकर क्षण भर के लिये उनका धीरज छूट गया! उनके चेहरे पर निराशा और भय के चिन्ह देख पड़ने लगे। ऐसा कुसमय उपस्थित होने पर भी उन्होंने पुनः विचार किया कि अब क्या करना चाहिये। यह शरीर अनित्य है; इसको किसी दिन परित्याग करना ही पड़ेगा; कापुरुषों की तरह कायरता के चिन्ह दिखलाना बड़ी लज्जा की बात है। युद्ध में प्राण देकर स्वर्ग में जाना सब से उत्तम है। जो युद्ध से पीठ फेरता है उसकी गति नहीं होती। जो सम्मुख युद्ध में प्राण देता है वह मुक्त हो जाता है। यश, अपयश, हानि और लाभ दैवाधीन होते हैं। मनुष्य को यथाशक्ति यत्न करना चाहिये—चाहे उसमें सफलता हो या न हो। इस प्रकार अपने मन में विचार करके, लक्ष्मीबाई ने निराशा और भय का त्याग किया; और अपनी स्वाभाविक शूरता की स्फूर्ति से उत्तेजित होकर अंगरेजों के साथ अंतिम युद्ध करने का निश्चय किया। बहुत दिनों से महारानी के यहां लगभग डेढ़ हजार अफ़गानी मुसलमान नौकर थे। उन्हें साथ लेकर स्वयं हथियार बांध वे तुरंत किले के नीचे उतरीं और बड़े फाटक से बाहर निकलकर दक्षिण की ओर उन्होंने धावा किया। शहर की दक्षिण-दीवार फांदकर जो हजारों गोरे भीतर घुस आये थे उनमें और महारानी की सेना में घोर युद्ध होने लगा। लक्ष्मीबाई अपने हाथ में नंगी तलवार लिये घोड़े पर सवार हो सब से आगे जा रही थीं। पीछे पीछे उनकी अफ़गानी सेना आ रही थी। ज्योंही दोनों पक्ष के

लोग एक दूसरे से भिड़ गये त्योंही अफ़गानी लोग गोरों को तलवार से काट काटकर फेंकने लगे। जब गोरों ने देखा कि तलवार-युद्ध में अफ़गानियों का सामना करना व्यर्थ है तब वे लोग इधर उधर भाग गये और घरों की आड़ से महारानी की सेना पर बन्दूकें चलाने लगे। पीछे से अंगरेजी सेना शहर में और आ गई। उसने तलवार से न लड़कर दूर से ही बन्दूक चलाना शुरू किया। इस प्रकार महारानी की फ़ौज पर दोनों ओर से गोरों की गोलियां बरसने लगी। उस समय महारानी के एक पुराने शुभचिन्तक ७५ वर्ष के बूढ़े सरदार ने हाथ जोड़ कर महारानी से कहा कि "अब आगे बढ़कर गोली से मरना अच्छा नहीं है। गोरे लोग मकानों की आड़ से गोली चलाते हैं। इसके सिवाय हजारों अंगरेज़ शहर में घुस गये हैं। शहर के सब दरवाजे खुले पड़े हैं। ऐसी अवस्था में यहां लड़कर जान देने के अतिरिक्त और कुछ लाभ नहीं है। इससे तो यही अच्छा है कि आप किले में चलकर भावी प्रबंध का कुछ विचार करें।" महारानी ने इसको स्वीकार किया। वे अपनी बची बचाई फ़ौज साथ लेकर किले में लौट गई। *

झांसी शहर के भीतर, चारों फाटकों से घुसकर, गोरे लोगों ने 'बिजन' बोलना आरम्भ कर दिया †। जो कोई हिन्दुस्थानी उन्हें मिलता

---

*इस लड़ाई के विषय में डाक्टर लो साहब ने सिर्फ़ इतना लिखा है कि:—

"To the west side of the palace about 1500 men collected..............and here they determined to stand or die. After some hard fighting a good many endeavoured to escape.........and the rest then moved beneath the fort in which the Ranee and, as reported, about 500 followers had taken shelter."

—*Central India. P. 260.*

† इसका वर्णन डा० लो साहब ने किया है। वह Central India नाम की पुस्तक में लिखा गया है। उसके पढ़ने से पाठकों को मालूम होगा कि हमारा यह वर्णन बिल्कुल सत्य है।

था वही उनकी गोली या तलवार का शिकार बनता था। पांच वर्ष के बालक से लेकर अस्सी वर्ष के बूढ़े तक जो कोई मिला वह जान से मारा गया। शहर के कई मुहल्ले आग लगाकर जला दिये गये। उस समय शहर-वासियों की दशा बड़ी सोचनीय थी। दुःख के कारण चारों ओर कोलाहल और हाहाकार मच रहा था। जहां जिसको ठिकाना मिला वहीं वह जी बचाकर या तो भाग गया या छिप रहा। बहुत से डरपोक और कायर पुरुषों ने स्त्री-भेष धारण कर अपने प्राणों की रक्षा की। तात्पर्य यह है कि जिसको जिस प्रकार जीव बचाने की युक्ति सूझी उसने उसी युक्ति से काम लिया।

बहुतसे लोग शहर के बीच एक बाग में एकत्र हुए और जब गोरे लोग वहां आये तब उन लोगों ने बड़े नम्रभाव से कहा कि "हम लोग इस शहर के निवासी हैं; पर हम लोग लड़नेवाले विद्रोही नहीं हैं। हम लोग निरपराधी प्रजा हैं। आप कृपा करके हम लोगों को प्राणदान दीजिये।" उन लोगों की ये करुणाभरी बातें सुनकर गोरों के एक अफ़सर को दया आई। उसने उन लोगों को अभय वचन देकर बाग के चारों ओर पहरा खड़ा कर दिया और फाटक में ताला बंद कर दिया। उसने इस बात का भी प्रबंध कर दिया कि बाहर से कोई लोग बाग के भीतर जाने न पावें और भीतर से कोई लोग बाहर आने न पावें। इसमें संदेह नहीं कि इस बात से उस गोरे अफ़सर की सुजनता पाई जाती है। दूसरी ओर गोरे लोगों ने घर घर में घुसकर आदमियों को मारना और सोना, चांदी आदि सामान लूटना आरम्भ कर दिया। घर में गोरों के पहुँचते ही यदि घर का मालिक अपना सब धन उसके हवाले कर देता तो उसका जी बच जाता था; नहीं तो तुरंत ही उसका सिर काट लिया जाता था, अथवा गले में रस्सी या कपड़ा बांधकर लटका दिया जाता था। जो मनुष्य एकबार धन देकर छुटकारा पाता वह यदि दूसरी बार किसी गोरे के पाले पड़ता था तो गोली से मार दिया जाता था। यह संतोष की बात है कि गोरों ने जानबूझकर स्त्रियों और बच्चों को नहीं मारा; परन्तु बहुतेरी कुलबालाओं ने, यह

समझकर कि हमारे सतीत्व का नाश होगा, मारे भय के, आप ही आप, प्राणों को त्याग दिया ! अनेक स्थानों में यह देखा गया कि जब कोई गोरा किसी हिन्दुस्थानी मनुष्य पर गोली चलाता था तब उसकी पतिव्रता स्त्री अपने पति के सामने खड़ी हो जाती थी और गोली की चोट से अपने प्राणों को विसर्जन करके जन्मजन्मान्तर के लिये अपना जीवन सुफल कर लेती थी ! इस प्रकार उसके पति के प्राणों की कुछ समय तक रक्षा होती थी, उसकी मृत्यु के अनन्तर पति को भी उसी हत्यारे की गोली से मरना पड़ता था। इस प्रकार झांसी शहर में दिन भर गोरों की गोलियों से हजारों स्त्री पुरुषों की मृत्यु हो रही थी। जान पड़ता था कि यम के दूत ही स्वतंत्र हो कर वहां अपना शिकार ढूंढ़ रहे हैं ! संध्या होने पर शहर की रक्षा का दृढ़ प्रबंध करके गोरे लोग अपने डेरों में चले गये।

जब शहर में अंगरेजी सेना का अमल हो गया तब सर ह्यू रोज और कर्नल लोथ ८६ वीं पलटन के लोगों को साथ लेकर राजमहल को हस्तगत करने के लिये आगे बढ़े। राजमहल में महारानी लक्ष्मीबाई के बहुतसे विश्वासपात्र और शूर नौकर रहते थे। वे बड़ी धीरता के साथ लड़े। कई अंगरेज मारे गये और घायल हुए। परंतु गोरों की संख्या अधिक होने के कारण लक्ष्मीबाई के थोड़े से नौकर वहां कब तक ठहर सकते थे ? अंगरेजों ने दूरही से घरों के आड़ से गोली चलाकर इन लोगों को निरुपाय कर दिया था। इसके सिवाय राजमहल के चारों ओर के घरों में आग लगा दी गई थी। उनकी ज्वालाओं से राजमहल में भी आग सुलग रही थी। इस लिये बेचारे पहरेवालों को हार खानी पड़ी। जिस तरह बिजली गिरने से उत्तम से उत्तम घर का नाश हो जाता है उसी तरह गोरों के आग लगा देने और हमला करने से, झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई का इतिहासप्रसिद्ध और वैभवसम्पन्न राजप्रासाद नष्ट हो गया ! राजमहल में घुसतेही अंगरेजी सेना ने वहां के सब लोगों को मार डाला। परन्तु महल के पीछे घोड़ों का एक छोटासा अस्तबल था उसमें अनुमान ५० लोग छिपे बैठे थे। जब उनका पता लगा तब ८६ वीं

और तीसरी पल्टन के सिपाहियों ने उनपर धावा किया। वे लोग भी बड़े शूर थे। उन्होंने अपनी तलवारें लेकर अंगरेजों से युद्ध किया। इनके धैर्य और पराक्रम को देखकर अंगरेजी सेना घबड़ा उठी। परंतु अंत में, इनकी संख्या कम होने के कारण, इन लोगों को हार खानी पड़ी। तथापि जब एक एक करके प्रत्येक वीर धराशायी हुआ तभी वह अस्तबल अंगरेजों के हाथ आया! जब तक उनमें से एक भी वीर जीता रहा तब तक किसी गोरे की हिम्मत अस्तबल में घुसने की न हुई। जब सब राजमहल अंगरेजों के हाथ आ गया तब उन लोगों ने वहां खूब आनन्द मनाया और वहां का सामान या तो लूट लिया या नाश कर डाला। झांसी के सूबेदार रामचन्द्रराव को लार्ड विलियम बेंटिंक ने "युनियन जैक" नाम का एक झण्डा दिया था। जब यह झण्डा गोरों के हाथ लगा तब उन्होंने खूब आनन्द मनाया। तुरंत ही वह झण्डा महल के ऊपर खड़ाकर दिया गया—मानों झांसी में बृटिश राज्य फिर से स्थापित हुआ।

इधर किले में लोग नाना प्रकार के विचार कर रहे थे। जब महारानी साहब ने यह देखा कि हमारी सेना को विजय प्राप्त नहीं होता तब वे किले के ऊपर राजमहल में लौट गईं और शोक-विव्हल होकर दीवानखाने में जाकर बैठ गईं। उस मानी और तेजस्विनी स्त्री की यह दशा देखकर और उसके अलौकिक पराक्रम का यह दुःखकारक परिणाम मन में लाकर दरबार के सब लोग अत्यन्त दुःखित हुए और सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिये। कुछ समय के बाद महारानी शहर की दशा देखने के लिये छत पर गईं। उस समय शहर की हृदयद्रावक दीन दशा देखकर उनके अन्तःकरण में वेदना हुई। उनकी आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी! हलवाईपुरा झांसी का सबसे बड़ा मुहल्ला था। उसमें बहुतसे धनसम्पन्न सरदार और साहूकार लोग रहते थे। उसके जल जाने से सारे शहर में हाहाकार हो रहा था। जिधर देखो उधर रोना पीटना, चिल्लाना और भागना जारी था। पल पल में बन्दूकों की सैकड़ों आवाजें होकर निरपराधी लोगों के प्राण व्यर्थ लिये जाते थे। इस प्रकार का भयंकर दृश्य देखकर महारानी का दयार्द्र अन्तःकरण दुःख से भर गया। वे

निस्तब्ध होकर आध घंटे तक वहीं खड़ी रहीं और अपनी प्रजा की शोक-जनक स्थिति देखकर आंखों से आंसू बहाती रहीं ! इसी समय किले के मुख्य फाटक के संरक्षक कुंअर खुदाबख्श और तोपखाने के प्रधान अधिकारी गोलन्दाज गुलाम गौसखां के गोली लगकर मरने का समाचार महारानी को विदित हुआ ! यह शोकजनक समाचार सुनकर महारानी की सब आशाएं भंग हो गईं और धीरज छूट गया ! उनको अपने दुर्भाग्य के चिन्ह प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगे। उन्होंने अपनी सेना के सब सरदारों को बुलाकर यह कहा कि "आज तक आप लोगों ने अंगरेजी सेना से भयंकर युद्ध करके झांसी की रक्षा की; परन्तु अब ऐसे चिन्ह नहीं देख पड़ते कि हम लोग विजय प्राप्त कर सकेंगे हमारे बड़े बड़े शूर वीर सरदार और चतुर गोलन्दाज सब के सब युद्ध में काम आये। शहर की दीवार और दरवाजों के सारे रक्षक मारे गये। शहर में अंगरेजों ने अपना अधिकार जमा लिया है और स्थान स्थान पर पहरा-चौकी लगा दी है। अब किले पर धावा करके उसको हस्तगत करना उनके लिये बहुत ही सहल काम है। सबेरा होते ही वे लोग किले पर चढ़ आवेंगे और हम लोगों को क़ैद कर लेंगे। फिर न मालूम वे लोग किस तरह हमारे शरीर और प्राणों का नाश करेंगे। इस कारण मैंने संकल्प किया है कि जिस कोठरी में गोला-बारूद रक्खा है वहां जाकर उसमें आग लगा कर अपना अन्त करूंगी। मैं अपने शरीर को, जीवित रहने तक, गोरे लोगों के स्पर्श से भ्रष्ट न होने दूंगी। इस लिये वे लोग यहां बने रहें जिनको मेरे साथ मरना हो। शेष सब लोग अपने अपने प्राण बचाकर रात होते ही किले के नीचे उतर जावें और अपनी रक्षा का उपाय करें"। महारानी के ये अन्तिम शब्द सुनकर सब लोग विस्मित हुए। एक वृद्ध सरदार ने नियम-पूर्वक कहा कि "बाई साहब, आप शान्त हूजिये। इस शहर पर जो विपत्ति आई है उसके नाश का हम लोगों के पास अब कोई उपाय नहीं है। संसार के सब काम पूर्व-सञ्चित कर्मों के अनुसार होते हैं हिन्दू शास्त्रकारों ने आत्महत्या की महापातकों में गणना की है। इस कारण आप सरीखी वीरबाला राजमाता को आत्महत्या करना उचित नहीं है। पूर्वजन्म में जो

पाप किये हैं उनका फल इस जन्म में भुगत रहे हैं। इस जन्म में पाप करके अन्य जन्म के लिये पाप-कर्म सञ्चित न करना चाहिये। जो दुःख आ पड़े उसे शांति-पूर्वक सहन करना ही चाहिये। आप शूर स्त्री हैं। आपको आत्महत्या का विचार भी मन में न लाना चाहिये। इस विपत्ति की दशा से पार होने का कोई उपाय सोचना चाहिये। यदि किले में रहना न बन पड़े तो आज ही रात को किले से बाहर हो, शत्रुओं का घेरा फोड़कर, शहर के बाहर निकल चलना चाहिये। कालपी में पेशवा की सेना पड़ी है। वहां जाकर उनसे मिलिये। यदि रास्ते में युद्ध होकर आपकी मृत्यु हो तो भी उत्तम है; क्योंकि आत्महत्या करके पाप-कर्म सञ्चय करने की अपेक्षा सन्मुख युद्ध में मरकर स्वर्ग जाना अति उत्तम है"।

वृद्ध सरदार के ऐसे उत्साहजनक वाक्य सुनकर महारानी को बहुत कुछ साहस और धैर्य आ गया। उन्होंने, उसकी सलाह से काम करके, रण-भूमि में प्राणत्याग करने का निश्चय किया। संध्या के समय उन्होंने अपने सब नौकरों को बुलाकर यथायोग्य पुरस्कार दिया और किले से बाहर जाने का गुप्त मार्ग दिखला दिया। महारानी के चलते समय उनकी पुरानी दासियों को उनके बियोग से बड़ा दुःख हुआ। सबों ने आंखों में आंसू भरकर महारानी के पैर छुए। कुछ स्वामिभक्त सेवकों ने महारानी के साथ चलने की आज्ञा मांगी। महारानी ने भी खुश होकर उनको साथ चलने की आज्ञा दी। मोरोपंत तांबे (महारानी लक्ष्मीबाई के पिता) कुछ और सरदारों के साथ हथियार बांध घोड़े पर सवार होकर महारानी के साथ चलने को बाहर निकले। इन लोगों ने राह खर्च के लिये खजाने से रुपयों के थैले निकालकर अपनी अपनी कमर में बांध लिये थे। बहुतसा द्रव्य, जवाहिरात आदि, एक हाथी पर हौदे में भर दिया गया और उस हाथी को इस छोटी-सी सेना के बीच में कर लिया। महारानी लक्ष्मीबाई करीब दो सौ आदमियों को साथ लेकर किले के बाहर निकलने को तैयार हुई। उस समय महारानी ने मर्दानी पोशाक धारण की! बदन में अंगरखा पहना, सिर में साफा बांधा, कमर में तलवार लटकाई और अपने ढाई हजार रुपये के उत्तम सफ़ेद घोड़े पर सवार हुई! उन्होंने अपने साथ कुछ भी

धन नहीं लिया। केवल अपने प्राणप्रिय दत्तकपुत्र दामोदरराव को अपनी पीठ पर धोती से मजबूत बांध कर घोड़े पर बैठा लिया!

इस प्रकार तयारी कर के 'जय शङ्कर' 'हर हर महादेव' शब्दों का उच्चारण करते हुए सब लोग किले से बाहर निकले। अंगरेज़ी सेना की स्थिति देखकर महारानी लक्ष्मीबाई ने शहर के उत्तरी दरवाज़े से कालपी को जाना निश्चय किया। जिस समय महारानी, झांसी को अंतिम नमस्कार करके, शहर के भीतर अपनी छोटी सी सेना के आगे, अपने प्यारे घोड़े पर सवार होकर, वायुवेग से भागती चली जा रही थीं, उस समय का दृश्य देखने योग्य था। उस समय शहर के बहुतेरे लोगों ने सड़क पर खड़े होकर इस वीरबाला के अन्तिम दर्शन किये। महारानी सब लोगों से प्रेमपूर्वक विदा होकर शीघ्रता से उत्तर के दरवाजे बाहर चली गईं*। वहां टेहरी की फौज का पहरा था। पहरेवालों ने उन्हें रोका; पर वे यह कहकर कि 'यह टेहरी की फौज रोज़ साहब की सहायता के लिये जा रही है' घोड़ा दौड़ाती हुई आगे चली गईं। अंगरेज़ी सेना ने उनका पीछा किया; पर वे शत्रुओं को अपनी तलवार का मज़ा चखाती हुई चली गईं! उनके साथ एक दासी, एक साईस और दस-बारह सवार थे। शेष सेना पीछे रह गई। उसको अंगरेज़ों से युद्ध करना पड़ा।

जब सर ह्यू रोज़ को यह समाचार मालूम हुआ कि महारानी लक्ष्मीबाई किला छोड़ कर शहर के भीतर से भाग गईं तब उन्होंने दांतों

---

* रानी साहब किले से बाहर किस तरह निकलीं और उनके साथ कितने आदमी थे इस विषय में एक ग्रंथकार लिखता है:—

"In the evening, the Rani, accompanied by 300 Valaitis and 25 troopers, left the fort and fled towards Kalpi. It was afterwards discovered that her horse had been brought into the fort ditch, with the connivance of a native contingent serving with Sir Hugh Rose, and that after being let down from a window in the turret she was placed in the saddle, with her stepson in her lap, and thus escaped."

—*Clyde and Straithnairn. P. 123.*

अँगुली दबाई और महारानी की चतुरता और वीरता की प्रशंसा की ! उन्होंने तुरंत ही लेफ्टिनेण्ट बॉकर को महारानी का पीछा करने की आज्ञा दी। ले० बॉकर निजाम सरकार के रिसाले के रणशूर सवारों की एक पल्टन अपने साथ लेकर महारानी के पीछे, उनको पकड़ने के लिये, रवाना हुए। परन्तु रात्रि होने के कारण अंगरेजी सवारों को उनका ठीक ठीक पता न लगा। तो भी वे उनके पीछे अपने घोड़े बढ़ाते हुए चले ही गये।

शत्रु की फौज में घुसकर बाहर निकल जाना अत्यन्त दुस्तर है। उसमें फिर प्रबल प्रतापी अंगरेजों की फौज के भीतर घुसकर बाहर निकल जाना तो और भी दुस्तर है ! तथापि महारानी लक्ष्मीबाई अपने अद्वितीय बुद्धिचातुर्य और अलौकिक वीरता से प्रबल अंगरेजी सेना में भी घुसकर बाहर निकल गईं ! क्या यह अचरज की बात नहीं है ? इस विषय में कर्नल मेडोज टेलर ने लिखा है:--

"At last, while yet much of night remained, one of the gates in a secluded part of the fortifications was opened and a sad procession issued forth. The Ranee and her sister, or companion, dressed like men, with a few of her chosen retainers, rode silently, from the portal, into the gloom beyond....No one spoke, except in whispers, and the gate was closed and barred as the last man passed out. It was to be a ride for life that night; for the English cavalry patrols of the 14th Dragoon, and the Hyderabad contingent, were everywhere vigilant; and to meet any of them was to ensure certain death. How these men were evaded was never ascertained; but the Ranee had perfect guides; she was a fearless rider and she pressed on at a rapid pace into the rough, jungly country in which her best safety lay!"

महारानी के किला छोड़ कर चले जाने पर ५, अप्रैल को सबेरे ले० बग्री ने किले पर चढ़ाई की। जब वे किले पर गये तब उन्हें वहां शून्यता के सिवाय और कुछ भी देख न पड़ा ! जहां जहां अंगरेजी सेना के लोग जाते थे वहां वहां उन्हें सूना ही दिखलाई पड़ता था। किसी आदमी की

तो वहां नाम निशान भी न था। यह दशा देख कर सरकारी सेना को बड़ा आनन्द हुआ। सारा किला बिना लड़ाई झगड़ा किये हाथ आ गया ! सरकारी सेना ते तुरन्त ही वहां अपनी विजय का झंडा खड़ा कर दिया।

महारानी के साथ जो सेना क़िले सें उतर कर नीचे आई थी और जो उनके साथ शहर के बाहर जा न सकी उसको अंगरेज़ी सेना ने आकर घेर लिया। दोनों सेनाओं में कुछ समय तक भयंकर लड़ाई हुई। महारानी के अफ़गानी सवार और बुंदेले सरदार प्राणों की आशा छोड़ कर खूब लड़े; परन्तु अन्त में सब के सब बड़ी क्रूरता और निर्दयता से मारे गये ! महारानी के पिता मोरोपंत तांबे, धन से लदा हुआ हाथी अपने साथ लेकर, महारानी के पीछे ही पीछे भाग रहे थे। यथार्थ में, युद्ध के समय, धन से लदे हुए हाथी के साथ भागना कदापि लाभदायक नहीं होता। परन्तु जब विनाश-काल समीप आता है तब मनुष्य की बुद्धि भी उलटी हो जाती है। रात्रि में जब वे हाथी को साथ लेकर भागते चले जा रहे थे तब किसीने उनकी जांघ में तलवार मारी। उससे वे बहुत पीड़ित हुए। तौभी हिम्मत बांध कर वे धीरे धीरे भागते ही चले गये। प्रातःकाल होते ही वे दतिया शहर में जा पहुँचे और वहां एक तमोली के घर जाकर ठहरे। परन्तु दतिया के राजा ने यह समाचार जानकर उनको पकड़ लिया और सब धन सम्पत्ति जब्त कर के उनको अंगरेज सरकार के पास झांसी भेज दिया। वहां पहुँचतेही, सर रावर्ट हैमिल्टन और सर ह्यू रोज़ की आज्ञा से, राजमहल के सामने, दिन के दो बजे, मोरोपंत तांबे को फांसी दी गई ! इस प्रकार महारानी लक्ष्मीबाई के पिता का देहान्त हुआ !

छठा अध्याय

झांसी की लूट और कालपी की लड़ाई।

विधौ विरुद्धे न पयः पयोनिधौ सुधौघसिंधौ न सुधा सुधाकरे।
न वाञ्छितं सिद्धयति कल्पपादपे न हेम हेमप्रभवे गिराविंगि॥

महारानी लक्ष्मीबाई के झांसी से चले जाने पर अंगरेज़ी सेना ने शहर और क़िले को अपने अधिकार में कर लिया। गोरे सिपाहियों ने सन ५७ के जून महीने में अपने भाईबन्दों के मारे जाने का स्मरण करके झांसी-निवासियों को निर्दयतापूर्वक गोली से मारना आरम्भ कर दिया। इस समय झांसी में लड़ैया लोग तो कोई थे ही नहीं। जो कोई निरपराधी और निरुपद्रवी मनुष्य शहर में देख पड़ता था उसीको गोरे सिपाही गोली चला कर मार डालते थे! इस समय झांसी के लोगों की जो दुर्दशा हुई उसका वर्णन करना कठिन है! एक ओर कतल-आम हो रहा था तो दूसरी ओर अग्नि देव प्रचण्ड वेग से सारे शहर को भस्म कर रहे थे! एक ओर गोरे सिपाही मानवी जीवन की क्षणभंगुरता सिद्ध कर दिखाने के लिये यमदूतों की नाईं भ्रमण कर रहे थे, और दूसरी ओर अंगरेज़ी पल्टन झांसी के प्राचीन वैभव को लूट मार कर नष्ट कर रही थी! सारांश, अनेक प्रकार की भयानक विपत्तियों ने झांसी को चारों ओर से घेर लिया था! शहर स्मशान के समान मालूम होता था। रास्ते में लोथों के ढेर के ढेर पड़े दिखाई देते थे। बहुतसे आदमी जिनके गोली लगी थी सड़क पर छटपटाते और रोते हुए अपना प्राण

विसर्जन कर रहे थे। गरीब लोग खाने के लिये भीख मांगते फिरते थे। हाथी, घोड़े, ऊँट इत्यादि जानवर बे-मालिक होकर इधर उधर दौड़ते थे। जो लोग घास के गंज या ढेर में जाकर छिप रहते थे उन्हें गोरे सिपाही, उस ढेर में आग लगाकर, वहीं जला देते थे! जो लोग कुंए में कूदकर अपने प्राणों की रक्षा करने का यत्न करते थे वे भी वहां सुरक्षित न रहने पाते थे।

इस प्रकार तीन दिन के लिए झांसी में 'बिजन' बोल दिया गया! और अब अंगरेजी सेना ने अपनी वीरता और बहादुरी के बदले झांसी की लूट की इजाजत पाई! सेना के लोग तो पहले ही से लूट मार कर रहे थे। सोना, चांदी, जवाहिरात आदि, लाखों रुपये का धन, जो कुछ हाथ आया उसीको लूटकर उन लोगों ने अपने कब्जे में कर लिया था। तीसरे दिन राजमहल के लूटने की बारी आई। राजमहल में कई पीढ़ियों की सम्पत्ति थी। पेशवाओं के समय से बुंदेलखंड के राजाओं से प्राप्त किये हुए अनेक बहुमूल्य रत्न खजाने में थे। पन्ना की खानि से निकले हुए अनेक अप्रतिम हीरे भी वहां थे। सरकारी सेना ने महल में घुसकर जो कुछ पाया सब लूट लिया और शेष वस्तुओं का नाश कर डाला *। सब से बड़ी हानि

---

* इस लूट और नाश का कुछ वर्णन डा० लो साहब ने किया है। वह *Central India* नामक पुस्तक के पृष्ठ २६४ में दिया है। बहुतेरे अंगरेज ग्रंथकारोंने इसका वर्णन ही अपने ग्रंथों में नहीं दिया है। मिस्टर जान हेनरी सिल्वेस्टर ने यह लिखा है कि झांसी में गोरों ने जो लूट की उसे 'लूट' नहीं कहना चाहिये; किन्तु यह कहना चाहिये कि उन लोगों ने अपनी कौतूहल-जिज्ञासा पूर्ण की! सिल्वेस्टर साहब के लेख से यह भी विदित होता है कि अंगरेजों ने अपनी कौतूहल-जिज्ञासा तृप्त करते समय झांसी में देवताओं की मूर्तियों का भी नाश किया! स्मरण रहे कि यह काम केवल कौतूहल-जिज्ञासा तृप्त करने ही के लिये किया गया था! सिल्वेस्टर साहब के लेख से कुछ वाक्य हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

" So soon as the fighting had ceased officers and men began to look about them with that spirit of curiosity......They dived into every house and searched its dark corners, they pulled down walls, all in this self-same spirit of curiosity—not to loot...............One class of articles, however, seemed to me to be looked on as *fair loot* by even the most scrupulous—these were the gods found in the temples. ! "

यह हुई कि उन लोगों ने झांसी के प्राचीन पुस्तकालय को भी नष्ट कर दिया! धन-सम्पत्ति और रत्न जवाहिरात तो फिर मिलना संभव है, राजमहल फिर बन सकता है, सोने, चांदी की कुर्सियां और नाना प्रकार के आभूषण आदि सब बना लिये जा सकते हैं; परन्तु प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों का फिर से संग्रह करना असम्भव है! मुसलमानों पर जो यह कलंक लगाया जाता है कि उन्होंने हिन्दुओं की प्राचीन पुस्तकों और मूर्तियों का नाश करके अपनी सङ्कीर्णहृदयता का परिचय दिया है वही दोष बृटिश सरकार पर भी लगाया जा सकता है! झांसी के प्रथम सूबेदार रघुनाथराव से लेकर अंतिम महाराजा गंगाधरराव तक, सब राजपुरुषों ने प्राचीन पुस्तकों के संग्रह करने में अपना द्रव्य और समय व्यय किया था। चारों वेद, उनके भाष्य, भाष्य सहित सब शाखाओं के सूत्र, टीका सहित स्मृति, सम्पूर्ण शास्त्र और पुराणों के ग्रंथ, झांसी-दरबार के पुस्तकालय में थे। इन धर्म-विषयक ग्रंथों के अतिरिक्त ज्योतिष, वैद्यक, नाटक, काव्य आदि विविध विषयों के भी अनेक ग्रंथ थे। यदि झांसी से चार-पांच सौ कोस पर भी किसी प्राचीन या नवीन ग्रंथ की खबर मिलती थी तो तुरंत वहां लेखक भेजा जाता था और उस ग्रंथ की नकल दरबार-पुस्तकालय में मँगवा ली जाती थी। झांसी-दरबार के पुस्तकालय के ग्रंथ कभी कभी काशी के विद्वान् तक देखने के लिये जाते थे। इस प्रकार बड़े परिश्रम से यह पुस्तकालय संग्रह किया गया था। उसको अंगरेजों ने बात की बात में नष्ट कर डाला!

किला, शहर और राजमहल लूटने के बाद अंगरेजी सेना ने झांसी की प्रसिद्ध देवी महालक्ष्मी के मन्दिर पर धावा किया और वहां के सब आभूषण आदि लूट लिये। जानपड़ता है कि श्री महालक्ष्मी देवी अपने वैभव और बहुमूल्य अलङ्कारों से ऊब गई थीं!

तीन दिन तक गोरों ने शहर को खूब मनमाना लूटा। चौथे दिन मदरासी पलटन ने तांबा, पीतल आदि धातु के पदार्थों की लूट मचाई। इसके बाद हैदराबाद की पलटन कपड़े लूटने लगी और अन्य लोग अनाज लूटने

लगे। इस तरह लगातार सात दिन शहर में लूट होती रही ! मालूम होता है कि झांसी के लोगों को, उनके पूर्व कर्मों का, परमेश्वर ने यह भयंकर फल दिया !

आठवें दिन सरकार ने 'खल्क खुदा का, मुल्क बादशाह का, अमल अंगरेजी सरकार का' इस प्रकार ढिंढोरा पिटवाकर, माफ़ी का इश्तहार निकाल कर, शहर-निवासियों को निर्भय किया। जो लाशें सड़क पर पड़ी थीं उनको उठवाकर उनकी अन्तिम क्रिया की गई। हजारों आदमियों को शहर में भेज कर रास्ते साफ़ कराये गये। जिन मुहल्लों में आग लगी थी वहां पानी से आग बुझाने का प्रबंध किया गया। हाथी, घोड़े, बैल ऊंट आदि जानवर, जो स्थान स्थान पर मरे कटे पड़े थे, सब इकट्ठा किये गये और शहर के बाहर एक बड़ा खन्दक खुदवा कर गाड़ दिये गये। इस तरह उस दिन सरकार ने सारे शहर को साफ़ और शुद्ध किया।

झांसी में ढिंढोरा पिटने के दूसरे दिन महल के सामने बाज़ार लगाया गया। लोगों ने अपनी अपनी आवश्यकता के अनुसार चीजें लेकर फिर कुछ दिनों तक संसार में रहने की तैयारी की।

शहर के बाहर, अंगरेजी छावनी में, लूटा हुआ सामान रोज नीलाम किया जाता था*। लड़ाई का उपयोगी सामान और हाथी-घोड़े आदि सेंधिया सरकार ने मोल ले लिये। बाकी सामान अन्य अन्य राजाओं और रईसों ने अपनी अपनी आवश्यकता के अनुसार नीलाम में लिया। इस तरह झांसी के प्राचीन राज्य-वैभव का अन्त हुआ और बहुतसा धन बृटिश सरकार के हाथ आया !

---

* इस विषय का उल्लेख लो साहब ने भी किया है। आप लिखते हैं:—

"The prize agents were busily engaged daily in taking stock of the money, jewels and other valuables found in the palace and town, and sales were going on daily in camp for the disposal of prize goods and the property that once belonged to officers who had died in action."

—*Central India. P. 265.*

झासी-विजय के बाद सर ह्यू रोज़ ने २५ वीं पलटन के अधिकारी मेजर राबर्टसन के अधिकार में किला देकर शहर का अच्छा प्रबंध किया। उन्होंने अपनी सेना के घायल हुए लोगों की सेवा और दवा-पानी के लिये एक अस्पताल खोल दिया। युद्ध में मारे गये ले० डिक, ले० मिकली जान, ले० सिन्क्लेयर, ले० सियंसन आदि योद्धाओं के मृत शरीर का कृस्तानी धर्म के अनुसार अन्तिम संस्कार किया। इसी तरह, सन ५७ के जून महीने में जो अंगरेज़ी अफ़सर विद्रोहियों के हाथ से मारे गये थे उनका भी विधिपूर्वक संस्कार कराकर उनकी आत्मा को भी शांति दी गई।

इस युद्ध में सर ह्यू रोज़ ने अपनी वीरता और कुशलता उत्तम रीति प्रकट की। इसके संबंध में डयूक आफ़ केम्ब्रिज और सर कालिन केम्बल आदि बड़े बड़े लोगों ने उनकी बड़ी प्रशंसा और स्तुति की है।

यह एक महत्व का प्रश्न है कि झांसी में जो घनघोर संग्राम और महाप्रलय हुआ उसमें दोनों ओर के कितने आदमी मारे गये। अंगरेज़ ग्रंथकारों के प्रमाणों से विदित होता है कि अंगरेज़ों के दल के ३६ सेनाधिकारी और ३०७ सिपाही मरे और जख्मी हुए; और झांसी के दल के ५००० आदमी काम आये। परंतु इस बात का निर्णय नहीं किया गया कि, झांसी के ५००० आदमी, युद्ध में मारे गये या 'बिजन' में। डाक्टर लो साहब के कथन से यह ध्वनि निकलती है कि झांसी के 'बिजन' ही में बहुतसे लोग मारे गये। आप लिखते हैं कि "In Jhansi we burnt and buried upwards of a thousand bodies, and if we take into account the constant fighting carried since investment, and the battle of the Betwa, I fancy I am not far wrong when I say I believe *we must have slain* 3000 of the enemy." यद्यपि अन्य ग्रन्थकारों ने झांसी की लूट और महाप्रलय का विस्तृत वर्णन अपने ग्रंथों में नहीं किया है तथापि अन्य विषयों का वर्णन करते समय जो थोड़ा सा उल्लेख कहीं कहीं इन बातों का किया गया है उससे प्रतीत होता है कि झांसी शहर में लगातार तीन दिन के लिये जो 'बिजन' बोला गया उसीमें बहुत से आदमी मारे गये। प्रत्यक्ष युद्ध में सब आदमी नहीं मारे गये। मिस्टर

मार्टिन ने अपने ग्रंथ में लिखा है—"On the 4th of April, the fort and remainder of the City were taken possession of by the troops, who committed *fearful slaughter*. No less than 5000 person are stated to have perished at Jhansi or to have been *cut down* by the flying camps. The plunder obtained is said to have been *very great*."—तात्पर्य यह है कि अंगरेज़ ग्रंथकारों के भिन्न भिन्न लेखों से यह बात निर्विवाद सिद्ध नहीं होती कि महारानी लक्ष्मीबाई के दल के ५००० आदमी झांसी की लड़ाई में ही मारे गये; किन्तु इस बात का सन्देह होता है कि इनमें से अधिकांश लोग झांसी की लूट और 'बिजन' में ही कतल किये गये।

महारानी लक्ष्मीबाई झांसी के किले से निकलकर दूसरे दिन अर्थात पाँचवीं अप्रेल को, भांडेर नामक एक गांव में जा पहुँचीं। वहां शौचादि से निवृत्त हो उन्होंने अपने बालक दामोदरराव को कुछ खिलाया-पिलाया। वे कालपी की ओर जाने की तैयारी कर रही थीं, कि इतने में लेफ्टिनेंट बौकर भी महारानी को पकड़ने के लिये अपनी सेना के साथ गांव के समीप आ पहुँचे। उस समय महारानी के पास न तो सेना थी और न अपनी रक्षा का, एक तलवार के सिवाय, अन्य कोई साधन था। अतएव तुरंत बालक को पीठ पर बांध, हाथ में तलवार ले, घोड़े पर सवार हो, वे शत्रु से लड़ने को तैयार हो गईं। अंगरेजी सवारों ने इनके ऊपर बड़े जोर से धावा किया। यथार्थ में यही समय महारानी के युद्ध-कौशल की परीक्षा का था। एक ओर बौकर साहब सरीखे अनुभाविक अंगरेज़ वीर अपने चुने हुए सवारों को साथ लेकर पवनगति से दौड़ते चले आ रहे हैं और दूसरी ओर उनका सामना करके वहां से सुरक्षित भाग जाने का यत्न एक ब्राह्मण अबला कर रही है! क्या यह दृश्य आश्चर्यजनक नहीं है? क्या ऐसे कठिन समय में भी महारानी के यशलाभ की आशा करना धृष्टता नहीं है? तथापि उन्होंने अपने अलौलिक साहस, दृढ़ निश्चय, अद्भुत शूरता और अद्वितीय रणकौशल से एक रणशूर अंगरेज़ योद्धा के भी दांत खट्टे किये! ज्योंही बौकर साहब अपने घोड़े को दौड़ाते हुए लक्ष्मीबाई को पकड़ने के लिये आगे बढ़े त्योंही

लक्ष्मीबाई ने कुछ दूर हटकर प्रथम उनके वेग को रोका और अपनी तलवार का एक हाथ ऐसी चपलता से चलाया कि बौकर साहब घायल होकर, छटपटाते हुये नीचे गिर पड़े। बस; फिर क्या था! रानी ने उसी समय अपने घोड़े को वायुगति से आगे दौड़ाया और सीधा कालपी का रास्ता पकड़ा! इस समय लक्ष्मीबाई की युद्ध-निपुणता की परीक्षा क्षण भरही में हो गई। किसी कवि ने कहा है:—

संग्रामे सुभटेन्द्राणां कवीनां कविमण्डले।

दीप्तिर्वा दीप्तिहानिर्वा मुहूर्तादेव जायते॥

इसका भावार्थ यह है कि संग्राम में योद्धाओं और कविमंडल में कवियों के तेज का प्रकाश या हानि एक क्षण भरही में मालूम हो जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि ठीक यही दशा इस समय लक्ष्मीबाई की भी हुई। एकही क्षण में उनके अपूर्व तेज का प्रकाश हो गया! जख्मी लेफ्टनेंट बौकर साहब और उनके साथी सवार हताश होकर झांसी लौट आये! * महारानी

---

*इस लड़ाई का वर्णन अंगरेज लेखकों ने अपने ग्रंथों में विस्तारपूर्वक नहीं किया है। मार्टिन साहब *British India* नाम की पुस्तक में सिर्फ इतना लिखते हैं कि:—

"She was pursued, and nearly overtaken. Lieutenant Bowker, with a party of cavalry, followed her to Bundere, twenty-one miles from Jhansi; and there saw a tent, in which was spread an unfinished breakfast. Pressing on, he came in sight of the Ranee, who was escaping on a grey horse, with four attendants; but at this point he was severely wounded, and compelled to relinquish the pursuit."

इसका भावार्थ यह है — "उनका पीछा किया गया। वे प्रायः पकड़ी ही गई थीं। लेफ्टिनेन्ट बौकर, घुड़सवारों की एक पार्टी अपने साथ लेकर, झांसी से २१ मील की दूरी पर भांडेर तक, उनके पीछे आये। उन्होंने वहां एक डेरा देखा जिसमें कलेवा की कुछ चीजें थीं—मालूम होता है कि वे कलेवा करने न पाई थीं। कुछ दूर आगे बढ़कर उन्होंने रानी को देखा, जो चार अनुयायियों के साथ, सफेद घोड़े पर बैठकर, भाग रही थीं। परंतु इसी समय ले० बौकर बहुत घायल हुए। इसलिये उन्होंने रानी का पीछा करना छोड़ दिया।"

लक्ष्मीबाई दिन भर घोड़ा दौड़ाती हुई रात के बारह बजे कालपी पहुँचीं। धन्य है! जो स्त्री सदा राजकीय सुख, विलास और वैभव में रहती थी उसीने आज, बिना कुछ खाये पिये, पीठ पर लड़के को बांधकर, २४ घंटे में १०२ मील का प्रवास किया और मार्ग में अनेक आपत्तियों के आजाने पर भी अपनी प्रतिज्ञा का दृढ़ता से पालन किया! इस पर से महारानी के साहस, मनोनिग्रह और घोड़े पर बैठने की शक्ति का सच्चा परिचय मिलता है।

कालपी एक छोटासा शहर है। यह जमुना नदी के किनारे बसा हुआ है। जमुना के पश्चिम किनारे पर एक मजबूत किला बना हुआ है। वह तीन ओर मजबूत कोट से घिरा हुआ है। चौथे ओर स्वयं जमुना-जी का गहरा और गंभीर प्रवाह उसे दृढ़ किये हुए है। किले के पश्चिम ओर एक मैदान है। उसके बाद शहर की आबादी है। यह शहर बहुत प्राचीन है। यहां बड़े बड़े धनिक व्यापारी रहते हैं। शाही जमाने में यहां कई बार भयंकर युद्ध हुए थे। यहां एक बहुत बड़ा कबरस्थान है। लड़ाई में जो शाही सरदार मारे गये थे वे सब यहां गड़े हैं। इस कबरस्थान में बादशाह के बड़े बड़े चौरासी सरदारों की अच्छी अच्छी कबरें बनी हैं। इन कबरों के गुम्बजों से वह मैदान शोभायमान देख पड़ता है। इस लिये उस स्थान को "चौरासी गुम्बज़ का मैदान" कहते हैं। यह इतिहास-प्रसिद्ध शहर पहले गोविन्दपंत बुन्देले के अधिकार में था। इसके बाद वह उनके वंशज जालौन के जागीरदार नाना गोविन्दराव के आधीन रहा। सन् १८०६ ई० में बृटिश सरकार ने जालौन के जागीरदार के साथ संधि करके कालपी को अपने अधिकार में कर लिया। तब से वह अंगरेजी-सरकार ही के अधिकार में रहा। एक बार सन् १८२५ ई. में नाना पंडित ने विद्रोह करके उसे अपने अधिकार में कर लिया था; परंतु उस समय बृटिश सरकार ने, झांसी के सूबेदार रामचन्द्रराव की सहायता से, उस पर फिर अपना अधिकार जमा लिया। इसके बाद सन १८५७ ई० के जून महीने की १२ तारीख को जब झांसी और कानपुर के बागी लोग कालपी आये, तब वहां की फौज

ने बलवा किया और मुंशी शिवप्रसाद डिपटी कलेक्टर को वहां से मार भगाया। तभी से कालपी में अंगरेज़ों की राजसभा नष्ट हो गई थी और केवल बागियों ही का अमल था। नाना साहब पेशवा के भाई रावसाहब ने यह सोचकर कि कालपी बुन्देलखंड के मध्य में हैं और वहां का किला बड़ा मज़बूत है, वे भी अपनी सेना लेकर यहीं आरहे। इससे कालपी शहर विद्रोहियों का एक मुख्य अड्डा बन गया था। युद्ध के लिये इन विद्रोहियों ने गोला बारूद आदि बहुतसा सामान भी इकट्ठा कर लिया था। इसी कारण महारानी लक्ष्मीबाई रावसाहब पेशवा के पास कालपी आईं कि वहां पहुँचकर अपनी रक्षा का अन्य कोई उपाय सोचा जाय।

कालपी में पहुंचते ही श्रीमान रावसाहब पेशवा की ओर से महारानी के रहने, भोजन आदि का सब प्रबंध उत्तम प्रकार से हो गया। दूसरे दिन उन्होंने श्रीमान की भेट करके अपनी तलवार उनके सामने रख दी और आंखों में आंसू भरकर कहा कि "आपके पूर्वजों ने यह तलवार हमें दी थी। उनके पुण्यप्रताप से आज तक हमारे पूर्वजों ने, और मैंने भी, इसका उचित उपयोग किया है। परंतु अब आपकी सहायता और कृपा नहीं है; इसलिये यह अपनी तलवार आप वापस लीजिये"। महारानी की इस युक्तिसङ्गत वाक्चातुरी को सुनकर श्रीमान ने खेद प्रगट किया कि झांसी की लड़ाई में हमारी सेना कुछ सहायता न कर सकी *।

* इसका ठीक ठीक कारण समझ में नहीं आता कि जिस समय झांसी में युद्ध हो रहा था उस समय पेशवा की सेना से महारानी लक्ष्मीबाई को सहायता क्यों नहीं पहुँची, जब अंगरेज़ी सेना पेशवा की सेना से लड़ने लगी तब झांसी के किले से अंगरेजी सेना पर तोप के गोले क्यों नहीं चलाये गये? यदि चलाये जाते तो अंगरेज़ी सेना को पेशवा की सेना पर हमला करने का मौका न मिलता और पेशवा की सेना का पराजय न होता। ऐसा मालूम होता है कि उस समय किले के बुर्ज़ पर लालताबादी नाम का जो सरदार था उसने यह कहा था कि अंगरेज़ी फौज पेशवाही की फौज है; और यह कहकर उसने अंगरेज़ी फौज पर किले से तोपें नहीं चलाने दीं। यह हाल 'गिलियन' नाम के ग्रंथकार ने 'रानी' नामक ग्रन्थ के २६० पृष्ठ में महारानी और तात्या टोपे की बातचीत में दिया है। जिस समय तात्या टोपे ने महारारानी से पूछा कि "जब हम तुम्हारी सहायता के लिये सेना लेकर आये और अंगरेजी सेना से हमारी लड़ाई आरम्भ हुई तब यदि उन पर

फिर उन्होंने महारानी से यह कहा " आपने झांसी के सूबेदारों की प्राचीन कीर्ति के अनुसार ही अब तक शूरता प्रकट की है और प्रबल अंगरेजी सेना की कुछ भी परवाह न करके बहुत दिनों तक युद्ध किया है। इस समय सब लोग आपकी शूरता, युद्ध-निपुणता और पराक्रम की प्रशंसा कर रहे हैं। यदि आपके समान स्वाभिमानी और शूर सरदार हमारी सेना के नायक हों तो हमारा उद्देश शीघ्रही सफल हो जायगा। हमारे पूर्वजों के समय में सेंधिया, हुलकर, गायकवाड़, बुंदेले आदि अनेक सरदार '**स्वराज्य**' के लिये अपने प्राण तक अर्पण करने को तैयार रहते थे; इसीलिये महाराष्ट्र का झंडा अटक तक फहराता था! यदि इस समय हमें भी आप सरीखे वीरों की सहायता हो तो फिर वही समय आ सकता है। अतएव आप इस समय इस तलवार का फिर स्वीकार करके पूर्ववत् हमारी सहायता कीजिये।" महारानी ने रावसाहब के कहने पर तलवार उठाकर अपने म्यान में रख ली। यद्यपि वे इस बात को भलीभांति जानती थीं कि महारणशूर

किले से गोले बरसते तो उनकी एक भी न चलती और न हमारी हार होती;" उस समय महारानी ने उत्तर दिया कि " किले में लालताबादी नाम का एक ब्राह्मण मुख्य हवलदार था। उसने हमें वैसा करने नहीं दिया। उसने अन्त तक हमसे यही कहा कि वे लोग सच-मुच हमला नहीं करते हैं—हम लोग बाहर निकलें और इसलिये वे फजूल तोपें दाग रहे हैं"। इसपर से मालूम होता है कि उस समय किले में कुछ भी तो दगाबाजी या मुखैता हुई थी। जिस समय तात्या टोपे की सेना पर अंगरेज़ी सेना ने धावा किया ठीक उसी समय किले से अंगरेजी सेना के ऊपर तोपें चलाना बन्द हो गया था। इस कारण अंगरेजी सेना को तात्या के हराने का अच्छा मौका हाथ लगा! यही बात एक और अंगरेज़ी लेखक की गवाही से सिद्ध होती है। सर ह्यू रोज़ के साथ डाक्टर सिल्वेस्टर नाम के एक असिस्टंट सरजन थे। आप *The Campaign in Central India* के पृष्ठ १०१–१०२ में लिखते हैं:—" Why the garrison did not, make a sortie, and destroy our batteries, while the Peshwa's army was attempting their rescue from without, *it is impossible to imagine.* Their overpowering numbers must have been successful, however well our infantry and gunners might have stood to their guns." इसका भावार्थ यह है—हम इस बात की कल्पना तक नहीं कर सकते कि जिस समय पेशवा की सेना किले में घिरे हुए लोगों की रक्षा बाहर से कर रही थी उस समय किले के लोगों ने हम पर एकदम हमला क्यों न किया। उन लोगों की संख्या ही इतनी अधिक थी कि उनकी अवश्य जीत होती, फिर हमारी पैदल पल्टन और तोपें चलानेवाले चाहे कैसाही अच्छा काम क्यों न करते।

शूर और प्रतापी अंगरेजी सेना से युद्ध करने का क्या परिणाम होगा, तथापि "हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्" इस उपदेश का स्मरण कर उन्होंने श्रीमान् पेशवा की आज्ञा स्वीकार की और प्रगट रीति से समर करने का निश्चय किया। ज्योंहीं यह बात सब लोगों को विदित हुई कि झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई ने रावसाहब पेशवा की सहायता करने की प्रतिज्ञा की है और कालपी में आकर वे उनकी सेना का प्रबंध कर रही हैं, त्योंही बांदा के नवाब, बानपुर के राजा और अन्य जमींदार लोग अपनी अपनी सेना रावसाहब के पास कालपी भेजने लगे। जब सब फौज आकर कालपी में इकट्ठा हो गई तब खुद रावसाहब ने उनकी क़वायद ली और तात्या टोपे और महारानी लक्ष्मीबाई को उसका मुख्य अधिकारी बनाया। इस प्रकार कालपी में घनघोर युद्ध की तैयारी आरम्भ हुई।

अब देखना चाहिये कि अंगरेजी सेना क्या कर रही है। जब सर ह्यू रोज़ साहब ने सुना कि विद्रोहियों का एक बड़ा दल कालपी में इकट्ठा हुआ है तब उन्होंने झांसी की रक्षा का बहुत ही उत्तम प्रबंध करके कालपी पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। उन्होंने अपनी सेना के भिन्न भिन्न भाग किये और उन पर मेजर गाल, मेजर आर आदि वीरों को मुख्य अधिकारी नियत करके अप्रेल की २५ तारीख को कालपी पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। इसी समय उन्हें यह खबर मिली कि लक्ष्मीबाई ने कालपी में पेशवा की सेना का उत्तम प्रबंध करके झांसी पर फिर चढ़ाई करने का निश्चय किया है; और वे तात्या टोपे, बानपूर के राजा और बांदा के नवाब की फौज को साथ लेकर कोंच गांव तक पहुंच गई हैं। यह खबर पाते ही रोज़ साहब के मन में चिन्ता उत्पन्न हुई। पहले उन्होंने मेजर गाल के अधिकार में २५ वीं और तीसरी पल्टन के कुछ चुने हुए सिपाही देकर पोंच गांव पर, जहां ५०० विद्रोही इकट्ठा थे, धावा किया। विद्रोहियों और अंगरेजी फौज के बीच में खूब युद्ध हुआ। बहुत से विद्रोही मारे गये। बाकी भाग गये। वहां का किला अंगरेजों के हाथ आया। जब यह सेना बेतवा नदी के उस पार चली गई तब वहां मेजर आर की सेना से

भेंट हुई। वहां उन्होंने यह समाचार पाया कि बानपुर और शाहगढ़ के राजा अपनी फौज लेकर विद्रोहियों की सहायता करने के लिये कोंच जा रहे हैं। यह समाचार पाते ही मेजर साहब ने उनको आगे बढ़ने से रोका; पर वे उन्हें रोक न सके। तब कोटरा गांव के समीप दोनों सेनाओं का युद्ध हुआ। उस समय जिगनी के राजा ने अपने हिन्दुस्थानी राजाओं की सहायता की जिसके कारण अंगरेज़ी सेना का सारा पराक्रम वृथा गया। विद्रोही लोग अपनी सारी सेना लेकर कोंच में तात्या टोपे के पास जा पहुँचे। मेजर गाल और मेजर आर भी अपनी अपनी सेना लेकर कोंच में अंगरेज़ी सेना से जा मिले।

मई महीने की ५ तारीख को ७१ वीं पल्टन और दूसरी ब्रिगेट के शूर सिपाही आकर अंगरेज़ी सेना से मिल गये। यह जानकर रोज़ साहब को धीरज हुआ। कोंच से दस मील की दूरी पर लोहारी नाम के गांव में मरहटों का बनवाया हुआ एक बहुत मज़बूत किला था। रोज़ साहब ने यह सोचा कि यदि यह किला हाथ आ जाय तो यहां से कोंच पर चढ़ाई करने में कुछ कठिनाई न होगी। इस लिये उन्होंने मेजर गाल को उस किले पर धावा करने की आज्ञा दी। मेजर गाल ने तीसरी यूरोपियन पलटन के कुछ शूर सिपाही साथ लेकर लोहारी पर धावा किया। इस किले की रक्षा के लिये कुछ विलायती (अफ़गानी) लोग नियत थे। उनमें और अंगरेज़ी सेना में खूब घनघोर युद्ध हुआ। अन्त में अंगरेज़ों के भाग्य की प्रबलता से विद्रोहियों की हार हुई और किला उनके हाथ आया इस लड़ाई में दो अंगरेज़ अफ़सर और बहुतसे गोरे सिपाही मारे गये।

लोहारी का किला हस्तगत करके रोज़ साहब ने कोंच पर धावा करने की सलाह की। रोज़ साहब यह बात जानते थे कि विद्रोही लोग अपनी सेना के अग्रभाग का अच्छा बंदोबस्त करते हैं। इस लिये उन्होंने सामने से धावा न करके विद्रोहियों की सेना के पिछले भाग पर धावा करने का निश्चय किया। इसके अनुसार दूसरे दिन अंगरेज़ी सेना १४ मीलकी दूरी पर हटाकर अपने अनुकूल स्थान पर रक्खी गई। वहां से उन्होंने पहिली

ब्रिगेड को अपनी बाईं ओर रखा और उसके पिछवाड़े के लोगों को नगपुरा गांव के पास रखा। दूसरी ब्रिगेड को मध्य भाग में चुमेर गांव के पास रख और दाहिनी ओर मेजर आर की अधीनता में हैदराबाद की पलटन को रखा। इस तरह मारके की जगह ढूंढ़कर अंगरेजी सेमा युद्ध के लिये तैयार होगई। इधर बांदा के नवाब, तात्या टोपे आदि ग्वालियर से सेना आने की राह देख रहे थे। इनकी थोड़ीसी फौज कोंच गांव के मैदान में पेड़ों के नीचे पड़ी थी। उनको अंगरेजी सेना के आने का समाचार जब मिला तब उन्होंने एकदम उनपर तोप चलाना आरंभ कर दिया। रोज़ साहब ने अपनी सेना के कई भाग करके उसको भिन्न भिन्न स्थानों में रखा था; इस लिये विद्रोहियों की तोपें अंगरेज़ी सेना के सामने ही के भाग पर चल रही थीं। अंगरेजी सेना ने इन्हें परास्त करने के लिये चारों ओर से अपनी तोपें और बंदूकें चलाना आरंभ किया, जिसके कारण विद्रोहियों के घुड़सवारों की बड़ी दुर्दशा हुई। वे रणभूमि से भागने लगे! विद्रोहियों ने सिर्फ सामने के भाग का प्रबंध किया था और अंगरेजी सेना ने उनपर चारों ओर से गोले बरसाना आरंभ किया। अतएव उनको मैदान से भाग जाने के सिवाय और कोई उपाय न था। अंगरेज़ी सेना को गर्मी के कारण बहुत कष्ट उठाना पड़ा। उन दिनों गर्मी ११० डिगरी थी! परन्तु ऐसी सख्त गर्मी में भी उन्होंने युद्ध का अच्छा प्रबंध कर के विद्रोहियों को मार भगाया! इस लड़ाई के संबंध में रोज साहब स्वयं अपनी रिपोर्ट में इस प्रकार लिखते हैं:—
"सख्त गर्मी से हमारी सेना का जो नाश हुआ यदि वह न हुआ होता तो हम पूर्ण रूप से शत्रुओं का विध्वंस कर डालते! हमारी सेना के ११ सिपाही तेज़ धूप के कारण मृत्यु के मुख में चले गये! बहुत से सिपाही बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़े! उनकी दशा का वर्णन हमसे नहीं हो सकता। चार बार गर्मी के कारण मुझे खुद अपना घोड़ा एक ओर छाया में ले जाना पड़ा। डाक्टरों ने मेरे सिर पर जब ठण्डे पानी की धार छुड़वाई और गर्मी शान्त करनेवाली औषधियां दीं तब मुझे होश आया!" डाक्टर अर्नाट साहब के लेख से भी यही मालूम होता है कि इस लड़ाई में गर्मी के कारण अंगरेज़ी सेना की हालत बहुत बुरी हो गई थी।

यद्यपि गर्मी के कारण अंगरेजी सेना की दशा बहुत बुरी थी, तथापि उसने एक घंटे तक बड़ा भयंकर युद्ध किया। ठीक दोपहर के समय ८६ वीं और २५ वीं पल्टन ने कोंच गांव पर धावा किया। पेशवा की फ़ौज ने अपना पराक्रम खूब दिखलाया। हैदराबाद इनफन्ट्री के अफ़सर ने विद्रोहियों को पीछे हटाकर उनकी जगह छीन ली; परंतु पेशवा की फ़ौज के सामने उनको फिर पीछे हटना पड़ा। उस समय अंगरेज़ी घुड़सवारों ने बड़ी बहादुरी का काम किया। तात्या टोपे और बांदे के नवाब ने अंगरेजी सेना को परास्त करने का बहुत प्रयत्न किया; परन्तु सब निष्फल हुआ! अंगरेज़ोंही का विजय हुआ। तात्या टोपे और बांदे के नवाब बची बचाई फौज को साथ लेकर कालपी चले गये। विद्रोहियों की आठ तोपें बहुतसी बारूद, गोली, गोला आदि अंगरेजों के हाथ लगा। इस युद्ध में यद्यपि विद्रोहियों की संख्या २०००० थी, तथापि उन लोगों का प्रबंध अच्छा न था। यही कारण है कि उनको एक मुट्ठी भर अंगरेजों ने हरा दिया। रोज़ साहब ने अपनी सेना की इस तरह प्रशंसा की है:—"इन सज्जन सिपाहियों ने कभी किसी बात की शिकायत नहीं की। यद्यपि धूप और थकावट के मारे उनकी संख्या घटने लगी थी, तथापि उन्होंने शिकायत करके अपने अफ़सरों की चिन्ता कभी नहीं बढ़ाई। वे चाहे कितने ही थके हों और उन्हें चाहे कितनी थोड़ी नींद आई हो, पर बिगुल बजते ही तुरंत वे हथियार बांधकर खुशी से खड़े हो जाते थे। अपने दुशमन से हार खाना या उसको पीठ दिखाना वे अपना अपमान समझते थे। सब लोगों का यही निश्चय था कि हमारा शारीरिक बल भले ही कम हो जाय, पर हमारा जोश, मानसिक शक्ति और आज्ञापालन करने की बुद्धि कभी कम न होगी। अकसर वे इतने बीमार हो जाते थे कि चल भी नहीं सकते थे; पर इसकी उन्होंने कभी परवाह न की। यह कहने की अवश्यकता नहीं है कि हमारे सिपाही कर्तव्य-परायण शान्त और आज्ञाधारी थे।" क्या ऐसी शूर, आज्ञाधारी और कर्तव्य-परायण सेना के सामने विद्रोही लोग रणभूमि में ठहर सकते थे? महारानी लक्ष्मीबाई इस युद्ध में प्रधान रीति से शामिल न थीं। बांदे के नवाब

और रावसाहब पेशवा ने सब प्रबंध अपने ही अधीन रखा था। परन्तु उन लोगों ने न तो स्वयं कोई उत्तम प्रबंध किया और न लक्ष्मीबाई को किसी प्रबंध का अधिकार दिया। इसीसे उनकी फौज का बंदोबस्त ढीला पड़ गया और अंगरेज़ों ने मारकों की जगह पर अपना अधिकार जमा लिया।

कोंच को फतह कर के सर ह्यू रोज़ ने काल्पी पर धावा करने का निश्चय किया। रोज़ साहब ने इस बात पर खूब विचार कर लिया था कि काल्पी पर किस ओर से धावा किया जावे। उनको सब से सरल मार्ग हर्दोई और उरई होकर दिखलाई पड़ा। उसी मार्ग से कालपी पर चढ़ाई करने की उन्होंने आज्ञा दी। मार्ग में विद्रोहियोंने, अंगरेजी सेना को बहुत तंग किया; परंतु रण-पण्डित रोज साहब धीरता और कुशलतापूर्वक आगे को बढ़ते ही चले गये। गर्मी के कारण अंगरेजी सेना हैरान हो गयी थी। इस लिये रोज साहब ने कमांडर-इन-चीफ़ को लिखा कि आप कर्नल मैक्सवेल को सेना सहित कालपी भेज दीजिये। यह समाचार पातेही कमांडर-इन-चीफ़ साहब ने ८८ वीं पल्टन के दो भाग, सिख लोगों की एक पल्टन और ऊंटों का एक रिसाला रोज़ साहब की सहायता के लिये भेज दिया। इस तरह रोज साहब ने अपनी सेना का अच्छा प्रबंध कर के, कालपी को घेरकर, ऐसा स्थान हस्तगत करने का विचार किया जहां शत्रुओं का प्रबन्ध बहुत ढीला हो।

जब विद्रोही लोग कोंच से भाग कर कालपी चले आये तब वहां महारानी लक्ष्मीबाई ने पेशवा से कहा "कोंच की लड़ाई में आपका प्रबन्ध बहुतही बुरा था। इस समय आपको होशियारी के साथ प्रबन्ध करना चाहिये। अव्यवस्थित सेना कभी युद्ध में विजय नहीं पा सकती। उत्तम व्यवस्था के कारणही अंगरेजी सेना को विजय प्राप्त होता है। अंगरेजी सेना के अधिपति भिन्न भिन्न और स्वकर्तव्य-दक्ष हैं; उनके सिपाही युद्धकला में प्रवीण और आज्ञाधारी हैं; उन सब लोगों पर एकही मुख्य अधिकारी है जिसकी आज्ञा के अनुसार सब लोग प्रबन्ध करते हैं। इस लिये जब तक आप अपनी सेना का अच्छा प्रबन्ध न करेंगे तब तक अंगरेजों से युद्ध करने में आपको कभी यश प्राप्त न होगा। आपको सब से पहले

मारकों की जगह ढूंढ़कर अपने मोरचे बांधना चाहिये और कार्यकुशल पुरुषों को वहां नियत करना चाहिये ।" राव साहब पेशवा ने महारानी की सूचना को ध्यान में रखकर अपनी सेना का कुछ प्रबन्ध किया। एक ओर बांदे के नवाब की सेना को नियत किया। दूसरी ओर रुहेलखण्ड से आये हुए रुहेलों को और बंगाल-नेटिव-इन्फेन्ट्री की काली पलटन को नियुक्त किया। बड़ी बड़ी तोपें मोरचों पर चढ़ाई गईं और वहां होशियार गोलन्दाज नियत किये गये। अंगरेजी फौज का रास्ता रोकने के लिये बुंदेलों की सेना नियत की गई। इस प्रकार सेना का प्रबन्ध करके राव साहब पेशवा ने प्रधान सेनापति का काम अपने हाथ में लिया।

यद्यपि रावसाहब यह जानते थे कि लक्ष्मीबाई युद्धविद्या में बहुत प्रवीण है—सच पूछिये तो उस समय सारे रणपण्डितों में महारानी से अधिक निपुण कोई था ही नहीं—तथापि वे स्वयं अपनी विशेष महत्वाकांक्षा के कारण अपनी सेना का मुख्य अधिकार एक स्त्री के अधीन कर देना अच्छा नहीं समझते थे। केवल बाहर से संतुष्ट रखने और आदर करने के हेतु उन्होंने महारानी के अधीन लालवर्दी के ढाई सौ घुड़सवार स्वतंत्र रीति से दे दिये और कहा कि आप यमुना की ओर रहिये। राव साहब के बहुत कहने सुनने पर महारानी लक्ष्मीबाई ने उत्तर-ओर की रक्षा करने का काम स्वीकार किया और पूर्ण युद्धकला-विशारद सेनानायक के समान उन्होंने अपनी सेना का प्रबन्ध किया।

१५ तारीख को अंगरेजी सेना कालपी से छै मील की दूरी पर गलावली गांव के पास आ पहुँची। यह खबर लगतेही कालपी के छबीना ने ज्योंही देखा कि अंगरेजी सेना अब सीधे मार्ग से समरभूमि में पहुँचेगी त्योंही उसने उतावली से उस पर छापा मारा और अंगरेजी सेना की रसद बन्द कर देने का प्रयत्न किया। छबीना के पास ग्वालियर की बहुतसी फौज थी। इस फौज ने अंगरेजी सेना की २५ वीं इन्फेन्ट्री पर धावा करके बहुत लोगों को मार डाला और बहुतों को घायल किया। परन्तु केवल इतनी हानि होने से अंगरेजी फौज का सामर्थ्य कुछ बहुत नहीं घट गया; क्योंकि अंगरेजी फौज के डेरे जगह जगह पर टिड्डी दल की तरह पड़े थे।

परन्तु ग्वालियर की फौज इतनेही में फूल गई; उसने समझा कि अब तो मार लिया! इतनेही आनन्द से इधर की फौज के लोगों ने खूब भंग उड़ाई और अपनेही रंग में मस्त होकर अंगरेजी फौज से बोले "तुम्हींने झांसी को लूटा है और अब कालपी की ओर आ रहे हो? ठीक है। आओ! तुम्हारी खबर लेने के लिये हम तैयार हैं!!" धन्य आत्मश्लाघा!

१६ तारीख को मेजर ओर की दूसरी ब्रिगेड की सेना से बलवाइयों ने सामना किया। कुछ लोगों को मारा और कुछ को घायल किया। सर ह्यू रोज साहब अपनी सेना दयापुर नामक गांव के पास ले आये। रोज-साहब को सेना रखने के लिये यह जगह बहुत अच्छी जान पड़ी। अन्त में उन्होंने वहीं अपना डेरा डालकर बलवाइयों से युद्ध करना प्रारम्भ किया। बहुत से विद्रोही मारे गये और अन्त में उनको पीछे हटना ही पड़ा। दूसरी ब्रिगेडवालों ने भी खूब घोर युद्ध किया और ७१ वीं हायलेंडर्स पलटन ने भी बलवाइयों को संहार करना शुरू कर दिया!

अंगरेजी सेना ने जिस जगह अपना डेरा डाला था वहां से काल्पी बहुत अन्तर पर थी। बीच में यमुना नदी तक बड़ा भारी बीहड़ रास्ता था। इस मार्ग में, लगातार यमुना नदी तक, बड़ी बड़ी दरारें और भयानक खड्ड थे। इसी कारण वहां तोपखाना नहीं जा सकता था। बलवाइयों को अपनी रक्षा के लिए यह अच्छा मौका हाथ लगा।

सर ह्यू रोज साहब ने काल्पी का रास्ता बहुत भयंकर देखकर एकाएक काल्पी पर चढ़ाई करने का विचार छोड़ दिया। गलावली गांव ही उन्हें अपने आश्रम के योग्य स्थान देख पड़ा, इस लिए वहीं आकर उन्होंने अपना कैंप डाला।

कोंच में विद्रोहियों ने जो हार खाई थी उससे वे अधिक लज्जित और क्रोधित हुए थे। काल्पी की सेना को इस समय अधिक स्फूर्ति चढ़ रही थी; और यमुना की शपथ खाकर उन लोगों ने संकल्प किया था कि अब या तो अंगरेजी सेना को चित करेंगे अथवा हम खुदही रण में प्राण दे देंगे। इधर से यह फौज क्रोध और अभिमान से मत्त अंगरेजी सेना को मार भगाने का

संकल्प किये हुए तैयार थी और उधर से सरकारी अफ़सर ब्रिगेडियर स्टुवर्ट, रे० क० रॉबर्टसन और ले० गार्डिन आदि रणशूर पंडित अपनी सेना के साथ, बलवाइयों को मार भगाकर काल्पी विजय करने के लिए, बढ़ रहे थे। विद्रोहियों ने बड़े आवेश से आगे बढ़कर शत्रुसेना पर छापा मारा। इससे उनकी फौज की रक्षा का स्थान छूट गया। अंगरेज़ी सेना को यह अच्छा मौका मिल गया। वह अपने मौके पर आ डटी और तोपों की मार शुरू हो गई।

कालपी की फौज ने अपनी जगह छोड़ दी, इस कारण इस तरफ़ की गोलियां अंगरेज़ी सेना पर कुछ काम नहीं कर सकती थीं। अंगरेज़ी सेना की तोपें धड़ाधड़ गोले बरसा कर विद्रोहियों को स्वाहा कर रहीं थीं। कालपी की फौज ने अपनी रक्षा के लिये बहुत प्रयत्न किया; और बड़े ज़ोर शोर से अंगरेज़ी फौज पर धावा किया; पर दुर्भाग्यवश कुछ भी लाभ न हुआ! उलटा इन्हीं लोगों की अधिक हानि हुई। इस बीच में कालपी की फौज का अधिक ज़ोर देखकर हैदराबाद की पलटन भी अंगरेज़ी फौज से आ मिली थी।

इस प्रकार काल्पी की सेना के अगले भाग का पराभव सुनकर कुल फौज भयभीत हुई। सब लोगों में निराशा छा गई। राव साहब पेशवा, बांदा के नवाब आदि मुख्य मुख्य योद्धा भयभीत होकर भागने का विचार करने लगे। परन्तु महाराणी लक्ष्मीबाई ने इनको धीरज दिला कर कहा कि आप लोग घबड़ावें नहीं; देखो मैं भी अब अपना कौतुक आप लोगों को दिखाती हूं। इतना कह उन्होंने अपना घोड़ा अपने पास बुलवाया। और उसपर वे खूब दृढ़ता से आरूढ़ हुईं। अपने लाल वर्दी के सवारों को साथ में लेकर वे आगे बढ़ीं। अंगरेज़ों की दाहिनी ओर जाकर उन्होंने बड़े वेग से धावा किया! उनका यह हमला अचानक झंझा वात की तरह अंगरेज़ों के लगा और उनकी फौज एकदम पीछे हट गई। बड़े बड़े अंगरेज़ी शूर वीर कट कट कर गिरने लगे! इस बार रानी साहब ने इतनी बुद्धिमानी और डौल के साथ युद्ध किया कि उनके शौर्य के कारण "लाइट फील्ड" तोपों के गोले कुछ देर के लिए बिलकुल

बन्द हो गये। और उनके गोलन्दाज स्तब्ध होकर जैसे के तैसे खड़े रह गये! इतनाही नहीं किन्तु रानी साहब उन तोपों से २० फीट के अन्तर तक मारती काटती चली गई! महाराणी साहब की इस विलक्षण वीरता को देखकर काल्पी की दूसरी सेनाओं को भी साहस बढ़ आया और वे भी अंगरेजी सेना पर बड़े वेग से चढ़ धाये। दोनों दलों की ओर से धमासान युद्ध मच गया! जिस समय महाराणी लक्ष्मीबाई अपने चपल घोड़े को बढ़ाती हुई, और अपनी समशेर के हाथ बड़ी चालाकी से चलाती हुई, अंगरेज़ी तोपखानों पर चढ़ धायीं उस समय उनकी वह वीर श्री, वह आवेश, वह मर्दूमी और बहादुरी देखकर पेशवा के दूसरे सेनानायक भी फड़क उठे! और वे भी अंगरेज़ी सेना पर इस प्रकार टूट पड़े जैसे जौ के खेत पर टिड्डी दल! उस समय जो घनघोर युद्ध हुआ उससे जान पड़ता था कि अब बलवाइयों की जीत होतीही है। महारानी साहब घोड़े की लगाम-डोर दांतों से पकड़े, दोनों हाथों से सड़ासड़ तलवार चला रहीं थीं। महारानी साहब का तेज और शौर्य मानो इस समय फूटा निकलता था; वे प्रत्यक्ष चण्डिका का अवतार धारण किये हुए सी जान पड़ती थीं! पेशवा की सेना भी बड़ी बहादुरी से लड़ रही थी! अंगरेज वीरों के छक्के छूट गये! तोपखानों के बचे बचाये गोलन्दाज हतवीर्य होकर भागने लगे। घोड़ों के ऊपर का तोपखाना फिसल गया; तोपख़ानों की व्यवस्था बिलकुल बिगड़ने लगी। इतनेही में ब्रिगेडियर स्टुवर्ट अपना घोड़ा बढ़ाते हुए तोपखाने के पास आये और गोलन्दाज लोगों को उत्साह दिला कर फिर से तोपों का चलवाना शुरू किया। जब सर ह्यू रोज़ साहब को यह समाचार लगा कि महारानी लक्ष्मीबाई ने पेशवा की सेना साथ लेकर बड़े वेग से धावा किया है और अंगरेज़ी तोपें बन्द कर दी हैं तब वे अपने साथ ऊंट-सवारों की सेना लेकर बहुत जल्द युद्धस्थल की ओर दौड़े और खुद सेना-नायक बनकर कालपी की फौज पर बड़े जोर से हमला किया। बलवाइयों की सेना बहुत देर तक भंग के रंग में मस्त अंगरेजी सेना से लड़ती रही; पर जब उन पर ८६ वीं और २५ वीं पलटन के शूर वीर सिपाही टूट पड़े तब उनके होश हवास जाते रहे! सर ह्यू रोज़ के ऊंट-सवारों ने बड़े जोर

से विद्रोहियों पर गोलों की वर्षा की ! कालपी की फौज भाग कर तितर बितर होने लगी। रानी साहब ने अपने सिपाहियों के साथ बढ़कर, अंगरेज़ी सेना की मार बन्द करके, उन्हें पीछे हटाने का बहुत प्रयत्न किया। पर पेशवा की फौज का साहस छूट जाने के कारण इनको और आगे बढ़ने की सहायता न मिली और निराश होकर पीछे लौटना पड़ा। इस प्रकार, पेशवा की फौज के हताश हो जाने पर, रानी साहब भी राव साहब पेशवा की छावनी में लौट आईं !

इस प्रकार कालपी की सेना फूटते ही सर ह्यू रोज़ साहब ने विद्रोहियों का पीछा किया और चारों ओर से संहार करना शुरू कर दिया ! अंगरेजी सेना ने अपने विजय के आनन्द से उत्साहित हो त्वेष में आकर बलवाइयों को ज़ोर शोर से कतल करना शुरू किया। जहां जो मिला वहीं वह मारा गया ! हज़ारों लोग भयभीत होकर बचाव के लिये यमुना नदी के बीहड़ में जा छिपे ! इस प्रकार सर ह्यू रोज़ साहब ने अपने उत्तम प्रबन्ध से, सुशिक्षित सेना के जोर से, असंख्य बलवाइयों को नीचा दिखाया। पेशवा की सेना अशिक्षित होने के कारण हार गई।

युद्धस्थल से विद्रोहियों को भगाकर रोज़ साहब ने कालपी शहर पर अपना अधिकार करने और ब्रिटिश झण्डा गाड़ने का निश्चय किया ! उन्होंने पहले ब्रिगेड की सेना ब्रिगेडिर सी० एस० स्टुवर्ट के साथ, यमुना नदी के किनारे से कालपी की ओर भेजी और दूसरे ब्रिगेड को खुद अपने साथ लेकर वे सीधे कालपी शहर की ओर रवाना हुए। राव साहब पेशवा ने कालपी के क़िले में गोला बारूद आदि बहुतसा लड़ाई का सामान इकट्ठा कर रखा था। क़िले में, उसकी रक्षा के लिये, बहुतसी सेना भी थी। इसके सिवाय जो सेना समर-भूमि से भागकर आई थी वह भी चारों ओर घिरी हुई थी। अंगरेज़ी तोपखाने के अफ़सर कर्नल मैक्सवेल ने बड़ी बड़ी तोपों से गोले छुड़वाना आरम्भ कर दिया। इससे जो सेना कालपी की रक्षा के लिये जमी हुई थी वह पीछे हटने लगी। इतने ही में खूब तेज़ी से अंगरेज़ी सेना शहर में आ घुसी। पेशवा के गोलन्दाज़ों ने और दूसरी जगहों के मोर्चेवालों ने शत्रु-सेना पर मार शुरू की। परन्तु इस

समय विरुद्ध पक्ष की तोपें भयंकर गोले वमन कर रहीं थीं, इस लिये कालपीवालों की तोपों का कुछ असर नहीं हुआ। कालपी की सेना इन तोपों की मार से घबड़ा उठी। अंगरेजी फौज ने बड़े वेग से धावा करके उनके चार हाथी जीत लिये और कालपी के आगे के मैदान में अपना डेरा डाल दिया। इतनेही में सर ह्यू रोज साहब भी अपनी सेना के साथ आ दाखिल हुए। कुल अंगरेजी फौज ने मिलकर शहर में प्रवेश किया। कालपी की फौज भागने लगी। कर्नल गाल साहब और हैदराबाद कंटिंजंट सेना के अफसर कप्तान ऐबट ने कई मील तक उनका पीछा किया और उनसे बहुतसे हाथी, घोड़े, ऊंट और तोपें छीन लीं! बहुतसी युद्ध-सामग्री अंगरेजों को मिल गई। इस झपाटे में बहुत लोग काम आये! २४ तारीख को सरकारी सेना ने पूरे तौर पर कालपी को सर कर लिया। इसी तारीख को महारानी विक्टोरिया का जन्म हुआ था। इस कारण कालपी के मैदान में खूब तोपों की सलामी हुई और विजय-उत्सव के उत्साह में दूना आनन्द मनाया गया।

अंगरेजी फौज को कालपी शहर की ओर अधिक अधिक घुसते हुए देखकर श्रीमान राव साहब पेशवा, महारानी लक्ष्मीबाई, बांदा के नवाब आदि प्रमुख लोग वहां से बड़ी युक्ति से निकल गये। अंगरेजी सेना को कालपी का किला और शहर लेने में कुछ भी परिश्रम नहीं पड़ा। शहर में जो पेशवा की पलटन थी वह लड़ाई करही नहीं सकती थी, क्योंकि इन दिनों सब बलवाई लोग निराश से हो गये थे। दिल्ली, लखनऊ, झांसी आदि बड़े बड़े संस्थान अंगरेजों ने जीत लिये थे। बड़े बड़े अनुभवी और पुराने फौजी वीर निराश होकर अपना अपना काम छोड़ बैठे थे। जगह जगह जो नोटिस निकाले गये थे उनको देखकर वे लोग अपने प्राण बचा कर भागे भागे फिरते थे; कोई कोई तो अपना वेष बदल कर दूसरा धंधा करने लगे थे। जो नये सिपाही भरती किये गये उन्हें युद्ध करने की रीति ही मालूम न थी। नवसिखे होनेके कारण वे युद्ध में टिकाऊ नहीं थे। इतनाही नहीं किन्तु अच्छे और सच्चे वीरों का अभाव था; चोर लुटेरेही लोग कालपी की सेना में रह गये थे। उनका लड़ाई की ओर बिलकुल ध्यान

नहीं था; लूट मार करने पर अधिक ध्यान था। कालपी में तीन दिन तक लड़ाई होने के बाद ज्योंही उन लोगों को मालूम हुआ कि अब अंगरेजों की जीत हुई और पेशवा हारे त्योंही सैकड़ों सिपाही युद्ध छोड़कर शहर में लूट मार करने लगे थे! उन्होंने शक्कर* के बोरों और सब प्रकार की जिन्सों को बड़ी दुर्दशा के साथ लूटा! इतनेही में तीसरे दिन अंगरेज लोग शहर में घुसे और देखते देखते उन लुटेरों को कतल कर डाला। अंगरेजों को सब लूटी हुई जिन्स अनायास मिल गई! अंगरेजी फौज ने शक्कर आदि खा पीकर खूब आनन्द प्राप्त किया! अस्तु।

अंगरेजों को यह जो फायदा हुआ उससे कई गुना अधिक फायदा यह हुआ कि उन्हें क़िले में खूब माल असबाब मिला। श्रीमान् राव साहब पेशवा और उनके प्रधान तात्या टोपे ने एक वर्ष भारी परिश्रम करके जो युद्ध की सामग्री एकत्र की थी वह सब सरकारी सेना को, बिना परिश्रम, मिल गई। उसमें सिर्फ बन्दूक में भरने के लिये बारूद ६०००० पौंड थी! इससे पाठक गण यह अनुमान कर सकते हैं कि और और चीजें, जैसे तोपें, बन्दूकें, तलवारें, तम्बू, निशान इत्यादि, कितनी होंगी! खुद अंगरेज ही ग्रन्थकार लिखते हैं कि इस सब सामान की क़ीमत दो लाख रुपये से अधिक होगी!† अस्तु।

---

* कालपी में पहले शक्कर का बहुत बड़ा व्यापार होता था। वहां शक्कर के कई कारखाने थे, जिनमें शक्कर बनाई जाती थी। विदेशियों ने ये कारखाने नष्ट कर दिये!

† डा० सिलवेस्टर साहब लिखते हैं:--

"There was an indescribable medley here, just as in the fort of Jhansi, but the articles here all pertained to the art of war. There were guns, large and small, numbering fifteen, besides a large mortar and howitzer: There were conical stocks of English round shot and shell, and several sheds in which the manufacture of cannon, howitzer, shells, and the repair of arms, was being carried on. The tools and appliances, such as forges, hammers, vices, smiths, braces, &c. were all of English make. Several muskets had been

सर ह्यू रोज़ साहब ने अनेक अड़चनें सहकर जो कालपी का विजय किया उसके लिये लार्ड केनिंग ने २४ मई सन १८५८ को, तार द्वारा उनका अभिनन्दन किया और लिखा कि "आज तक आपका युद्ध में जो बराबर यश छाया हुआ है उसमें कालपी का विजय सब से श्रेष्ठ है। इस विजय के लिये मैं आपका और आपके शूर सैनिकों का बड़ा आभार मानता हूं"। इस प्रकार सर ह्यू रोज़ ने सब मध्य हिन्दुस्थान बलवाइयों से ले लिया और कालपी में अपनी विजय-ध्वजा फहराई। इसके बाद कमांडर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैंबेल ने अपने अधीन सेना के दो भाग करके, झांसी और ग्वालियर में बन्दोबस्त रखने के लिये, भेजने का निश्चय किया। युद्ध में लगातार कठिन परिश्रम करने के कारण सर ह्यू रोज़ साहब थक गये थे, इस लिये विश्राम लेने के लिये उन्होंने छुट्टी लेकर बम्बई लौट जाने का निश्चय किया। तारीख १ जून को उन्होंने अपनी सेना का फिर प्रकट रीति से गुण गाया और सैनिक लोगों को धन्यवाद दिया। इस बार

---

restocked, and very well fitted. There were vast numbers of broken brass shells, which proved they had rather failed in that branch of ordnance manufacture : they had all been cast on clay moulds, and the outside filed smooth....In fact, this was the greate t central arsenal of the mutineers, and had it been capable of defence *it would not have fallen such an easy pray to us." The Campaign in Central India P. 116-17.*

इसका भावार्थ यह है कि झांसी के किले मे जैसा गड़बड़ हुआ वैसा ही वहां भी हुआ। परन्तु यहां पर जितना सामान था सब युद्ध से सम्बन्ध रखता था। बम के गोले छोड़ने-वाली दो बड़ी बड़ी तोपों के सिवाय छोटी बड़ी सब मिलाकर वहां कोई १५ तोपें और थीं। चोवधार विलायती गोले गोलियों का वहां एक ढेर का ढेर जमा था। कई एक छप्परों के नीचे छोटी छोटी तोपें, गोले और हथियारों के बनाने और सुधारने का काम चल रहा था। भट्टी, घन, सँड़सा धौंकनी, वगैरह सब औजार विलायती बने हुए थे। बन्दूकों के कुन्दे फिर से लगाये गये थे और वे बिलकुल ठीक लगे थे। मिट्टी के सांचे में ढाले हुए, ऊपर से खूब चिकने रिते हुए वहां बहुत से टूटे हुए पीतल के गोले पड़े हुए थे। जिनसे यह बात साफ तौर से मालूम होती थी कि बलवाई लोग गोले आदि नहीं बना सकते थे। * * * सच तो यह है कि उनका यह सिलहखाना बहुत बड़ा था। उसका यदि बचाव किया जाता तो इतनी आसानी से वह हमारे हाथ न लगता।

रोज़ साहब ने स्पष्ट रीति से कहा कि अंगरेज़ी फौज की आज्ञाधारकता और प्रबन्ध के कारण ही सब जगह विजय प्राप्त हुआ। उन्होंने अंगरेज़ों की असीम प्रशंसा की! पर उसमें यथार्थता कितनी है सो न पूछिये! क्योंकि विरुद्ध पक्ष की सेना में किसी प्रकार की व्यवस्था नहीं रही। सारे गड़बड़ का यही कारण हुआ; इसी लिये पेशवा की फौज की प्रबल शक्ति, अद्वितीय शौर्य और अगणित युद्ध-सामग्रियों का कुछ उपयोग नहीं हुआ; यही कारण है कि उनके असंख्य आदमी मारे गये और अंगरेज़ों की थोड़ी सी सेना को यह यश मिला! वास्तव में कालपी के समान प्राकृतिक सुरक्षित जगह में, चौरासी गुम्बज के मैदान सरीखे इतिहास प्रसिद्ध रणाङ्गण में, हज़ारों पौंड बारूद, सैकड़ों तोपें और अगणित फौज होने पर भी, प्रतापशाली पन्तप्रधान समशेर बहादुर और सूबेदार शिवराव भाऊ के समान रण-बांकुड़े योद्धाओं के वंशजों को थोड़ी सी ताम्रमुखी फौज के सामने भागने का प्रसंग क्यों आया? इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि इसका मुख्य कारण '**अप्रबन्ध**' ही है। अथवा अप्रबन्ध कहने की अपेक्षा इस को '**दुर्दैव**' कहें तो भी ठीक है! एक बार जहां दुर्दैव ने घेर लिया वहां फिर किसीका वश नहीं चलता!

इस अध्याय के शीर्ष में दिए हुए श्लोक में कवि ने क्याही यथार्थ कहा है कि "दैव प्रतिकूल होने पर जलनिधि में भी जल नहीं मिलता, अमृतौघ के सिंधु चन्द्र में सुधा का एक बिन्दु भी नहीं मिलता, प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष के पास जाने से भी वाञ्छा-सिद्धि नहीं होती और सोने के पर्वत मेरु में भी सोने का एक टुकड़ा नहीं मिल सकता।

सातवाँ अध्याय

ग्वालियर की लड़ाई और रानी साहब की मृत्यु।

गावत गुन आगम निगम, निशि दिन लहत न अन्त।
तीन काल युग चार में, है भावी बलवन्त ॥

जब राव साहब पेशवा ने देखा कि अब कालपी अंगरेज़ों ने जीत ही ली तब वे अपनी बची बचाई सेना साथ ले ग्वालियर के नैऋत्य ओर ४६ मील की दूरी पर गोपालपुर नामक गांव में भाग आये। महाराणी लक्ष्मीबाई भी उनके साथही थीं। राव साहब पेशवा के सेनापति तात्या टोपे कोंच की लड़ाई में हार कर जालौन के पास चरखी नामक महल में अपने पिता से भेट करने चले आये थे। कालपी का पराभव सुन कर वे भी बहुत जल्द गोपालपुर में आकर इन लोगों से मिले। राव साहब पेशवा के मित्र बांदावाले नवाब भी भागते भागते गोपालपुर में आ मिले।

जिस प्रकार वर्षा ऋतु में किसी दिन चारों ओर से बादल घिर आते हैं और कुछ समय तक बिलकुल अन्धकार घिर जाता है; फिर एकाएक खूब ज़ोर से पानी बरसकर आकाश स्वच्छ और शान्त हो जाता है। इसी प्रकार उस समय बुन्देलखण्ड में बलवाइयों की सत्ता का हाल हुआ। सन् १८५७ के जून मास में एकाएक सागर, कालपी, बांदा आदि स्थानों से ब्रिटिश राज-

सत्ता चली गई और वहां बलवाइयों का साम्राज्य शुरू हो गया ! परन्तु जब सर ह्यू रोज और विटलाक साहब ने उनपर चढ़ाई की तब अंगरेजी सत्ता स्थापित होने में कुछ बहुत समय भी नहीं लगा ! दोही तीन महीने में सर ह्यू रोज साहब ने नर्मदा के किनारे का सारा प्रान्त अपने अधीन कर झांसी और कालपी को भी जीत लिया ! विटलाक साहब ने बांदा और करुई जीत कर कालपी की लड़ाई में मदद दी । मेजर राबर्टस् ने राजपूताना से कर्नल स्मिथ को एक नवीन पलटन देकर यमुना के पश्चिमी किनारे पर भेजा । इसके सिवा सरकारी अधिकारियों ने जगह जगह बलवाइयों के दबाने के लिये सेनाएं नियत कर दीं । इस प्रकार धीरे धीरे सारा बुन्देलखण्ड अपने हाथ से चला गया । झांसी और कालपी के भारी किले, प्रचंड तोपें और अगणित युद्ध-सामग्री दुर्दैव के कारण शत्रुओं को मिल गई ! और अन्त में बहुत सी सेना का भी नाश हुआ । इस कारण निराश होकर राव साहब पेशवा, तात्या टोपे, बांदा के नवाब आदि इस बात का विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिये ।

इन सब लोगों के लिये यह बड़े विचार का प्रसंग आ पड़ा । वह समय यही था कि जब इन सब राजसी लोगों की बुद्धि-चतुरता कसौटी पर कसी जानेवाली थी । ऐसे समय में किसी युक्ति के बल पर फिर विजय प्राप्त किये बिना रक्षा का और कोई उपाय न था । और इधर अंगरेज़ी सेना से टक्कर मारना भी बहुत कठिन हो गया था; क्योंकि पहले तो वह सेना स्वयं शिक्षित और युद्ध कला में प्रवीण थी तिसपर भी समय समय पर बहुत सी युद्ध-सामग्री मिलने के कारण उसका पक्ष और भी ज़ोरदार हो गया था । विरुद्ध पक्ष की दशा इस समय बिलकुल सोचनीय हो रही थी । न तो कोई युद्ध-सामान ही पास था और न सेना ही का प्रबन्ध ठीक था । यदि ये लोग अब चुप बैठते हैं तो भी नहीं बनता; उधर अंगरेजी सेना इनकी तलाश में है । श्रीमान राव साहब पेशवा, बांदा के नवाब और तात्या टोपे इस बात के विचार करने में मग्न हो रहे थे कि इस संकट के समय में क्या उपाय निकालना चाहिये । पेशवा की छावनी में रातभर

इसी बात पर विचार होता रहा; पर कोई बात निश्चित नहीं हुई। सब लोगों पर घबड़ाहट और चिन्ता छा गई।

महारानी लक्ष्मीबाई यह बात जानती थीं कि बलवान अँगरेज़ी फौज के सामने अपनी एक भी न चलेगी। परन्तु उनका निश्चय और साहस विलक्षण दृढ़ था, इस कारण बार बार अँगरेज़ों पर चढ़ाई करने के लिये उन्हें आवेश चढ़ आता था और किसी वीर-शिरोमणि की तरह रणशूरता दिखला कर विजय प्राप्त करने की उन्हें बड़ी लालसा थी। वे चाहती थीं कि पेशवा की फौज का एक बार खुद प्रबन्ध कर वे प्रबल युद्ध करें। जब उन्हें मालूम हुआ कि रावसाहब पेशवा इस समय बहुत चिन्तित हैं तब वे स्वयं उनके डेरे में जाकर मिलीं और यह उपदेश किया कि,

उचित निराशा है नहीं, धरो धीर आवेश।
करो युद्ध, मारो प्रबल शत्रु-सेन, वीरेश!

(ल० च० वा०)

पेशवा साहब की ओर से वचन पाकर वे बोलीं:—"आज तक जिन जिन वीरों ने बहादुरी दिखलाई है उन सब को सुदृढ़ किलों का आश्रय लेना पड़ा है। छत्रपति श्री शिवाजी महाराज ने मुसल्मानों को नीचा दिखा कर जो हिन्दू राष्ट्र स्थापित किया था वह भी सिंहगढ़ रायगढ़ तोरणा आदि किलों के ज़ोर पर किया था। पहले पहल अपनी रक्षा के लिए उन्होंने प्रचण्ड और लड़ाई के योग्य किले ले लिये, इसके बाद अपना पराक्रम और शूरता दिखला कर राजसत्ता स्थापित की। इस लिये प्राचीन अनुभव से भी यही सिद्ध होता है कि बिना किलों के लड़ाई करना वृथा है। झांसी और कालपी के समान जंगी किले अपने अधीन थे, इसी लिये इतने दिनों तक अंगरेज़ी फौज के सामने हम लोग अड़ सके। परन्तु दुर्दैव के कारण अब ये किले अपने हाथ में नहीं रहे! इस लिये फिर एक प्रचण्ड किला हस्तगत करने का प्रयत्न करना चाहिये। इस समय जी बचा कर जहां हम लोग भाग कर जायँगे; अंगरेज़ी सेना वहीं हमारे

पीछे पीछे पहुँचेगी और हमारा नाश किये बिना न रहेगी । अस्तु । जो कुछ होना होगा सो तो होहीगा; उस पर कुछ भी ध्यान न देकर इस समय कोई किला लेना चाहिये और उसकी मदद से अंगरेजों से लड़ाई करके विजय प्राप्त करना चाहिये; यही इस समय कर्त्तव्य है "। महारानी लक्ष्मीबाई की यह सलाह सब को पसन्द आई। राव साहब पेशवा ने पूछा कि कौन सा किला हस्तगत करना चाहिये ? महारानी ने कहा कि "इस समय झांसी अथवा कालपी का किला लेने की आशा करना जान बूझकर शत्रुओं के मुख में पड़ना है । इस लिये ग्वालियर पर चढ़ाई करके सेंधिया सरकार और उनकी फौज से सहायता लेना चाहिये । वहां के पहाड़ी किले का आश्रय मिलने पर फिर कुछ दिनों तक युद्ध चलेगा और विजय पाने की अभिलाषा पूर्ण होने की आशा बँधेगी "।

रानी साहब ने इस संकट के समय में जो यह युक्ति सुझाई उसके लिये कर्नल मैलेसन साहब के समान अंगरेज ग्रन्कारों ने भी उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। मैलेसन साहब ने राव साहब पेशवा, बांदावाले नवाब, तात्या टोपे और लक्ष्मीबाई, चारों मुखियों की बुद्धि-चतुरता की तुलना करके उन सब में रानी साहब को श्रेष्ठ माना है। इस विषय में जो कुछ उन्होंने लिखा है उसे पढ़कर किसको विस्मय और आनन्द न होगा ? वे लिखते हैं:—

"The situation then seemed desperate to the rebel chieftains. But desperate situations suggest desperate remedies; and a remedy which, on first inspection, might well seem desperate, did occur to the fertile brain of one of the confiderates. To which one it is not certainly known. But, judging the leading group of conspirators by their antecedents—Rao Saheb, the Nawab of Banda, Tantia Topi, and the Rani of Jhansi—we may at once dismiss the two first from consideration. They possessed neither the character nor the genius to conceive a plan so vast and so daring. Of the two who remain, we may dismiss Tantia Topi. Not that he was incapable of forming the design, but—we have his memoirs—

and in those he takes to himself no credit for the most successful act with which his career is associated. The fourth conspirator possessed the genius, the daring, the despair necessary for the conception of great deeds. She was urged on by hatred, by desire of vengeance, by a blood-stained conscience, by a determination to strike hard whilst there was yet a chance. She could recognise the possibilities before her, she could hope even that if the first blow were successful the fortunes of the campaing might be changed; she possessed and exercised unbounded influence over one at least of her companions—the Rao Sahib. The conjecture, then, almost amounts to certainty that the desperate remedy which the confiderates decided to execute at Gopalpur was suggested and pressed upon her comrades by the daring Rani of Jhansi.—*Malleson's History of the Indian Mutiny, Vol. V. P. 143-144.*

इसका भावार्थ यह है कि, "बलवाइयों के अगुओं के लिये यह समय बड़े संकट और मारके का था। पर जब कोई टेढ़ा समय आ पड़ता है तब वैसे ही उपाय भी सूझ पड़ते हैं। वह उपाय बुद्धिमान रानी साहब के मस्तिष्क में आया। इस बात में सन्देहही था कि यदि यह उपाय रानी साहब न ढूंढ़ निकालतीं तो और किसीको सूझता या नहीं? इन चारों की पूर्वकृति को देखकर कहा जा सकता है कि राव साहब पेशवा और बांदावाले नवाब को यह उपाय कभी नहीं सूझ सकता था, इस लिये इन दोनों के सम्बन्ध में बिचार करने की कोई जरूरत नहीं। उन दोनों में से किसीके बर्ताव और बुद्धि से ऐसा नहीं जान पड़ता था कि वे इस भयंकर प्रसंग को दूर कर सकेंगे। अब बाकी दो में से हम थोड़ी देर के लिये तात्या टोपे को भी छोड़ देते हैं। हम यह नहीं कहते कि तात्या टोपे भी यह उपाय न ढूंढ़ पाते और हम यह भी नहीं कह सकते कि उनमें इस उपाय के ढूंढ़ निकालने की बुद्धि न थी; पर तात्या टोपे का चरित पढ़ने से मालूम होता है कि उन्होंने यह बात स्वयं कबूल की है कि यदि रानी साहब उस समय न होतीं तो शायद यह उपाय और किसीको न सूझता—अर्थात् इस उपाय के ढूंढ़ निकालने का सम्पूर्ण श्रेय रानी साहब ही को है। अब रही रानी साहब की बात—सो इसमें सन्देह नहीं कि

बड़े कामों के करने में जिस प्रकार के साहस और बुद्धिमानी की जरूरत पड़ती है वह सब उनमें थी। अपने शत्रुओं के प्रति द्वेषबुद्धि से, बदला लेने की इच्छा से, हृदय जलने के कारण से और प्राणान्त हो जाने तक युद्ध करने की इच्छा से, उनको इस मार्ग का अवलम्बन करना पड़ा। उनके मार्ग में जो आपत्तियां थीं उनको वे अच्छी तरह जानती थीं; वे यह भी जानती थीं कि पहले बार चाहे उनकी जीत हो भी जाय; पर अन्त में उनका पराभव होनेवाला था। उनके साथियों में से राव साहब पेशवा पर उनका वजन अधिक था। उपर्युक्त बातों से हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि साहसी रानी साहब ने जो उपाय सुझाया उसका अवलम्बन उनके साथियों को गोपालपुर में करनाही पड़ा"

रानी साहब की यह युक्ति राव साहब पेशवा को बहुत पसन्द आई। उन्होंने महाराणी लक्ष्मीबाई का बड़ा अभिनन्दन किया। तात्या टोपे वहीं मौजूद थे। रानी साहब के कथन का उन्होंने पूर्ण रूप से अनुमोदन किया। तात्या टोपे अनेक बार गुप्त रीति से ग्वालियर गये थे, इस कारण उनको वहां के दरबार और सेना का हाल अच्छी तरह मालूम था। उनको यह मालूम हो गया था कि इस धावा में पेशवा को किस कदर यश प्राप्त होगा। रानी साहब का मन्सूबा सब की अनुमति से पास हो गया और ग्वालियर पर चढ़ाई करने की तैयारी हुई। रानी साहब की निकाली हुई यह युक्ति बड़ी चतुरता और महत्व की थी। जब पेशवा की फौज के सर्दारों को यह बात मालूम हुई तब उन्हें भी कुछ विजय पाने की आशा और उत्साह हुआ। उन्होंने भी रानी साहब की बहुत तारीफ की और ग्वालियर पर चढ़ाई करके वहां का किला जीतने की इच्छा प्रदर्शित की।

महाराणी लक्ष्मीबाई की सलाह के अनुसार सब लोगों ने ग्वालियर की ओर कूच किया। यहां पर पाठकों के जानने के लिए पहले सेंधिया सर्कार के दरबार की दशा का कुछ वर्णन करके तब हम, आगे चलकर, रानी साहब की ओर के पराक्रम का बयान करेंगे।

उस समय श्रीमान जयाजीराव सेंधिया ग्वालियर के महाराजा थे।

उनकी अवस्था उस समय २३ वर्ष की थी। सन १८४४ ई० में जब अंगरेजी सर्कार और ग्वालियर दरबार की लड़ाई हुई तब उसमें अँगरेज जीते। सेंधिया सरकार ने उनसे सुलह कर ली। इसी समय से ग्वालियर राज्य में अंगरेजी सरकार का अच्छी तरह से प्रवेश हुआ; वहां के दरबार में सरकार का खूब दबाव हो गया था। इस सुलह से ग्वालियर का किला भी अंगरेजों के हाथ में चला गया था और सेंधिया सरकार का लड़ाई का सामान और सेना भी तितर बितर हो गई थी। सन १८५३ के साल से यद्यपि महाराज जयाजीराव को रियासत का पूरा अधिकार मिल गया था तौ भी उसका कुछ इंतिजाम रेजिडेंट के विचार से चलता था। महाराज जयाजीराव बड़े बुद्धिमान और पानीदार पुरुष थे। महाराज की ओर से श्रीयुत दिनकरराव राजवाड़े राजकाज करते थे। वे राजकाज करने में बड़े निपुण और व्यवहारदक्ष थे। उन्होंने रेजिडेंट साहब से मिल कर राज्य का अच्छा सुधार किया था।

मई महीने में जब मेरठ और दिल्ली आदि स्थानों में खुल्लमखुल्ला बलवा हुआ और उन जगहों में अंगरेजों का पराभव हुआ तब इसकी खबर ग्वालियर में भी आ पहुँची। ग्वालियर में अंगरेज सरकार की कंटिंजंट फौज थी और खुद सेंधिया सरकार की भी १०००० फौज थी। अंगरेज सरकार के विरुद्ध, कुल सेनाओं का मन बिगड़ रहा था। इस बात का कुछ ठीक न था कि कब यह सब फौज विरोधियों से जा मिले। इन्हीं दिनों में अंगरेज सरकार ने बहुत सी रियासतें ब्रिटिश राज्य में मिलाई थीं, इस लिये लोगों का असन्तोष बढ़ रहा था। इसी असन्तोष में कार्तूसों की चर्बी से हिन्दू धर्म के विध्वन्स का जोश भी लोगों में एकदम फैल गया; थोड़ेही समय में अंगरेजी राज्य के विरुद्ध लोगों के मन खराब होगये। ग्वालियर-दर्बार में भी अराजनिष्ठा फैल गई और पुराने सरदार और राजनीतिज्ञ अंगरेजी राजपद्धति के प्रतिकूल हो गये।

मेरठ और देहली में बलवाइयों की जीत देखतेही उत्तर हिन्दुस्थान में बहुत जगहों की सेनाएं बलवा करने के लिये उद्यत हुईं।

यह देखकर सेंधिया-सरकार ने खुद अपने पास के लोगों को लेफ्टिनेंट गवर्नर की रक्षा के लिये बहुत जल्द आगरे रवाना किया। मराठी फौज की एक टुकड़ी इटावा को भेजी। इतनाही नहीं किन्तु उन्होंने, ग्वालियर की कंटिंजंट फौज बिगड़ी हुई देखकर, रेजिडेण्ट के विचार से वहां के यूरोपियनों को बचाने के लिये अनेक प्रयत्न किये ! ता० १४ जून को वहां की फौज एकदम भड़क उठी; उसने खुल्लमखुल्ला बलवा करना शुरू कर दिया। अंगरेजी छावनी में आग लगा दी गई और मेजर ब्लेक, शेरिफ, कैप्टन हाकिन्स और स्टुवर्ट आदि फौजी अंगरेजों को मार डाला ! कप्तान मैकफर्सन को यह हाल मालूम होतेही वे बहुत जल्द फूलबाग में सेंधिया-सरकार के महल में आये और निश्चय किया कि रेजिडेन्सी के सब यूरोपियन लोगों को, स्त्री-बच्चों सहित, बहुत सी सेना के साथ आगरे भेज देना चाहिये। मैकफर्सन साहब ग्वालियर ही में रहना चाहते थे; पर सेंधिया सरकार ने यह बात पसन्द नहीं की; उन्होंने साफ तौर से कहा कि "तुम भी आगरे चले जाओ, यहां रहोगे तो बलवाई लोग तुम्हारी जान लिये बिना न छोड़ेंगे"! ऐसा कह कर महाराज जयाजीराव ने भरपूर सेना उन सब के साथ कर दी और उन्हें आगरे रवाना कर दिया !

चम्बल नदी से छः कोस पर हिंगोना नामक एक गांव है। वहां पर कुछ बलवाई लोग छिपे थे। उन सब का मुखिया, सेंधिया सरकार का एक पुराना नौकर जहांगिरखां था। उसकी इच्छा थी कि इन सब को बातों में भुलाकर नदी के खोह में ले जायँ और अपनी छिपी हुई सेना से इनका नाश करा डालें। परन्तु ग्वालियर-महाराज के दीवान दिनकरराव रघुनाथ राजवाड़े ने ठाकुर बल्देवसिंह नामक एक चतुर सरदार को इन लोगों की मदद के लिये भेजा था, उसने बड़ी होशियारी के साथ कुछ सेना के दो भाग करके बलवाइयों की इच्छा पूरी न होने दी। उसने सब यूरोपियनों को सुखपूर्वक चम्बल पार कर दिया। इसके बाद धवलपुर के राना ने हाथी आदि भेज कर अंगरेजों को आगरे पहुँचा दिया। इस समय अंगरेजों के साथ ग्वालियर के महाराज जयाजीराव, दीवान दिनकरराव, ठाकुर बलदेव सिंह और धवलपुर के राना ने जो उपकार किया वह चिरस्मरणीय है।

अंगरेज लोग जब ग्वालियर से भाग गये तब वहां की कंटिंजंट फौज सेंधिया सरकार से इस बात की बिनती करने लगी कि आप अंगरेजों का पक्ष छोड़ दें और हमारी सेना के अधिनायक बनकर आगरे पर चढ़ाई करें। ऐसा करने से आप फिर स्वतन्त्र हो सकेंगे। पर सेंधिया महाराज पूरे राजभक्त बन गये थे; उनके मन पर फौज की बिनती ने कुछ भी असर न किया! उस समय आगरे में अँगरेजों का बन्दोबस्त बिलकुल कच्चा था। ग्वालियर की यह फौज और दूसरे बलवाई लोग यदि वहां चढ़ाई कर देते तो विरोधियों का अवश्य विजय होता। इसी लिये मेजर मैकफर्सन ने वहां से सेंधिया सरकार के पास यह खबर भेजी कि जहां तक हो सके ऐसा उपाय किया जाय कि जिसमें बलवाई फौज आगरे की तरफ न आने पावे। यह खबर पातेही सेंधिया सरकार और उनके दीवान ने बिगड़ी हुई फौज को समझा बुझाकर, किसी न किसी तरह, ग्वालियर ही में रख लिया! इसी कारण अँगरेज लोग आगरे के किले में संरक्षित बने रहे! अस्तु।

ग्वालियर की कंटिंजंट फौज कुछ दिन तक चुप रही। उसके मुख्य मुख्य अधिकारियों ने सेंधिया सरकार को वश में करने का बहुत प्रयत्न किया। उन्होंने यहां तक कहा कि आप हमारे साथ होकर आगरे पर चढ़ाई करें अथवा इस काम में हमें आप द्रव्य की सहायता करें। तथापि दीवान दिनकरराव ने अपना गुप्त उद्देश फौज के लोगों पर बिलकुल प्रगट नहीं होने दिया। उन्होंने अपनी चतुरता, दृढ़ निश्चय और धैर्य्य से, विरोधी फौजवालों के पक्ष को अपनी अनुकूलता दिखाकर, सेंधिया सरकार की और अपनी रक्षा की। दरबार के दो सरदार और दीवान दिनकरराव, सिर्फ यही तीन आदमी ग्वालियर-महाराज के अनुकूल थे। बाकी सब लोगों के मन अँगरेजों के विरुद्ध हो गये थे। ये विरोधी लोग सेंधिया सरकार को वश में करने का प्रयत्न कर रहे थे। यदि महाराज जयाजीराव का भीतरी हेतु इन लोगों को उस वक्त मालूम हो जाता तो ये लोग उसी वक्त राज-महल पर तोपों की मार करके विध्वन्स कर डालते! क्योंकि उनकी १०००० फौज भी विरोधियों

में गुप्त रीति से मिली हुई थी। कुल दरबार में अँगरेजों के विरुद्ध सलाहें हो रही थीं। नाना साहब पेशवा का कानपुर का विजय ही ग्वालियर-दरबार के प्रोत्साहन का कारण था। दरबार के सब महाराष्ट्र नाना साहब से बहुत खुश थे। दिल्ली, मेरठ और लखनऊ आदि स्थानों में अँगरेजों की दशा बहुत शोचनीय हो रही थी। बहुत लोगों का तो यही मत है कि इस समय ब्रिटिश-सत्ता एक प्रकार से नष्ट हो गयी थी। यदि ऐसे अवसर पर सेंधिया-सरकार भी अँगरेजी सरकार के विरुद्ध हो जाती तो सन ५७ के बलवे को पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती थी। बुन्देलखंड की प्राय: सभी रियासतें ग्वालियर-महाराज का इस काम में सहायता दे सकती थीं। भूपाल और मालवा कंटिंजंट और होलकर की बहुतसी फौज विरोधियों के अनुकूल हो गई थी। ऐसे समय में ग्वालियर-सरकार ने यदि थोड़ी सी गड़बड़ कर दी होती तो हिन्दुस्थान के इन प्रान्तों में अँगरेजों का टिकना कठिन हो जाता। *

सितम्बर महीने के अन्त तक सेंधिया सरकार और उनके दीवान जी ने अपना गुप्त हेतु कंटिंजंट फौज पर प्रगट नहीं होने दिया। परन्तु

---

* इस समय का वर्णन एक अंगरेज ग्रंथकार ने इस प्रकार किया है:—

"Gwalior, while it thus continued in his hands, might have been regarded as in one sense the key of India, or rather, perhaps, as one link of a chain, which could not have given way in any part without ruining our power in India. If the Ruler of Gwalior had either played us false, or succumbed to the strong adverse elements with which he had to contend, the revolt would almost certainly have been national and general instead of being local and mainly military; and instead of its fate being decided by those operations in the easily traversable Gangetic valley, upon which public attention was concentrated, we should have had to face the warlike races of Upper India combined against us, in a most difficult country; and, in all probability, those of the south also." + + + "Had Scindia then struck against us—nay, had he even done his best in our behalf, but failed—the character of the rebellion might have been changed almost beyond the scope of speculation." *Memorials of Service in India.* इसका भावार्थ यह है:—

इसके बाद स्वयं एक ऐसा अवसर आ पड़ा कि जिससे उनका हेतु छिप नहीं सका। मऊ और इन्दौर के विरोधियों ने ग्वालियर की फौज को और भी भड़काया। इधर नाना साहब पेशवा के गुप्तचर भी इस फौज को अपने वश में कर लेने का प्रयत्न करने लगे। इस कारण ७ सितम्बर को इस फौज ने अपने ३०० चुने हुए लोग महाराजा के महल में भेजे। उन्होंने सेंधिया सरकार के पास जा कर कहा कि हम लोग आगरे पर चढ़ाई करके गोरे लोगों को मार भगाना चाहते हैं, इसलिये आप हमारी सहायता करें। इसके उत्तर में ग्वालियर महाराज ने साफ़ कह दिया कि "तुम्हारा यह बर्ताव हमारे हुक्म के बाहर है। बरसात खतम होने तक अगर तुमने किसी प्रकार की भी गड़बड़ की तो हमारी ओर से तुम्हें कोई मदद न मिलेगी और तुम्हारी तनख्वाह भी बन्द कर दी जायगी"! यह सुनतेही सेंधिया महाराज का गुप्त हेतु लोगों को मालूम हो गया। उन्होंने आवेश के साथ उत्तर देकर प्रगट रीति से बलवे का झंडा खड़ा किया। महाराज जयाजीराव पर यह बड़े संकट का समय आ पड़ा। कंटिंजंट फौज ने तोपों का मोरचा लगाकर महल पर और शहर पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। यह खबर लगते ही महाराज ने भी अपनी मराठी पलटन की तैयारी शुरू कर दी और ५००० नवीन सेना भरती की। महाराज ने ठाकुर लोगों की फौज को आगे करके खुद उसके सेनापति बने और शहर की रक्षा बड़ी चतुरता से की। जब

ग्वालियर को एक प्रकार से हिन्दुस्थान की कुंजी समझना चाहिए अथवा यह कहना चाहिए कि वह एक ऐसी शृंखला थी जिसका यदि कोई भी भाग टूट जाता तो वह हिन्दुस्थान में हमारी शक्ति का नाश किये बिना न रहता। ग्वालियर के महाराज हमको धोखा देते या बलवाइयों के वश हो जाते तो यह बलवा केवल स्थानिक और फौजी सिपाहियों का न होकर सार्वत्रिक और राष्ट्रीय हो जाता। उस समय हमें गंगा नदी के उन प्रदेशों में ही, जो आसानी से पार हो सकते हैं, लड़ना नहीं पड़ता; किन्तु हमें उत्तरीय हिन्दुस्थान के कठिन प्रदेश में और युद्ध-कुशल जातियों से युद्ध करना पड़ता। यह भी सम्भव है कि दक्षिण की जातियों से भी युद्ध करना पड़ता। यदि उस समय महाराजा सेंधिया हमारे विरुद्ध खड़े हो जाते—नहीं नहीं, यदि वे अपनी पूरी शक्ति से हमारी ही ओर से शत्रुओं के विरुद्ध लड़कर हार जाते तो भी—इस बलवे का रूप इतना बदल जाता कि जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

कंटिंजंट फौज ने देखा कि अब हमारी एक भी न चलैगी तब वह पीछे हट गई। इसी समय नाना साहब पेशवा के प्रधान तात्या टोपे के साथ वह सब सेना कानपुर चली गई। (इसी फौज ने कानपुर में जनरल विंडहम की फौज को हराया और तात्या टोपे के साथ जाकर पीछे से झांसी की लड़ाई में मदद दी थी)। इस कारण, आगरे के अँगरेजों पर जो आपत्ति आनेवाली थी वह एक दम टल गई!

यद्यपि कंटिंजंट फौज ग्वालियर से चली गई तौ भी सेंधिया सरकार की भीति तिलमात्र भी कम नहीं हुई; क्योंकि ग्वालियर की सब पलटनें भीतर ही भीतर महाराज के विरुद्ध भड़क उठी थीं। ग्वालियर के कुछ मुख्य सरदार अपनी चतुरता से, मैकफर्सन साहब की गुप्त सलाह से, उन फौजों को साधे हुये थे। चारों ओर बलवाइयों का जोर सुनकर ग्वालियर के सरदार भी ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध हो गये थे। उनको सिर्फ हुक्म पाने की देरी थी। ऐसे समय में ग्वालियर के धूर्त, राजकाज-कुशल और समयदर्शी लोगों ने अंगरेजों को बहुत बचाया!

सितम्बर सन १८५७ से एप्रिल १८५८ तक, सात आठ महीने, किसी तरह बीत गये थे; इधर झांसी और काल्पी आदि के युद्धों की खबरें सुन सुनकर ग्वालियरवालों के मन और भी भड़क रहे थे। दीवान दिनकरराव ने यद्यपि अभी तक अपनी चतुराई से सब प्रबन्ध ठीक रखा था; पर ऐसा जान पड़ने लगा कि अब उनके मन के अनुसार सब बातें न चलेंगी। इसी समय एक बार फिर तात्या टोपे सेंधिया की फौज को भड़काने के लिये आये थे। उनको इस समय सब दरबार के लोगों ने वचन दिया था कि हम लोग आपको जब काम पड़ेगा, सहायता देंगे। जिस प्रकार बारूद के कारखाने में आग लगने के लिये एक चिनगी आगही काम कर जाती है उसी प्रकार ग्वालियर में भी गड़बड़ हो जाने के लिये सिर्फ एक अल्प कारण की आवश्यकता थी।

ग्वालियर-दरबार की तो यह दशा हो गई थी। उधर सर ह्यू रोज साहब ने झांसी और कालपी जीत कर विद्रोहियों को इधर की ओर भगा

दिया था। तौ भी चारों ओर अराजनिष्ठा की आग धधक रही थी। इतनाही नहीं किन्तु अवध प्रान्त के रुहेले और काल्पी से हताश हुई राव साहब पेशवा की सेना के लोग यदि मिल जायँ और सेंधिया सरकार की कुल फौज यदि इन लोगों को मदद दे दे तो फिर आग भड़क उठे और उसकी ज्वाला चारों ओर फैलकर अंगरेजी राज्यसत्ता को भस्मीभूत कर दे। इस समय सारा दार-मदार सेंधिया सरकार पर था *। इसी लिये आगरे में ग्वालियर के रेजीडेण्ट मेकफर्सन साहब ने विचार किया कि ग्वालियर में भी कुछ अंगरेजी फौज रख दी जावे। इस विचार के अनुसार लार्ड केनिंग साहब को उन्हांने पत्र भी भेजा था। पर ग्वालियर में गोरी सेना जब तक आवे आवे तब तक इधर गोपालपुर में पेशवा की छावनी में ग्वालियर पर चढ़ाई करने की सलाह तै हो गई और उनकी सेना वहां से कूच होकर सेंधिया के राज्य में आमेन गांव तक आ भी पहुँची।

तात्या टोपे ने ग्वालियर जाकर वहां के मुखिया दरबारी लोगों के मन पहलेही से मिला लिये थे। इसी कारण पेशवा की फौज के आने में किसी

* इस समय सेंधिया महाराज यदि बलवाइयों में शामिल हो गये होते तो प्रलय-अग्नि की ज्वाला दक्षिण तक भभक उठती; और यदि उधर भी इस ज्वाला का प्रवेश हो जाता तो यहां के राजकर्ताओं को हिन्दुस्थान से अन्तिम 'राम राम' करने का मौका आ जाता। इस विषय में एक ग्रन्थकार लिखता है:—

"It needs but a glance at the map to show what the result might have been, had Gwaliar sided with the rebels. The Nizam's territories, already sufficiently inflammable, would assuredly have caught fire; and it is questionable, whether in that case any part of southern India could have been saved." *P. 326.*

सचमुच ऐसे संकट के समय में सेंधिया सरकार की राजभक्ति ही अंगरेजी राज्य के लिये संजीवनी होगई! कहते हैं कि गवर्नर जनरल लार्ड केनिंग तो यहां तक निराश हो गये थे कि उन्होंने नीचे लिखा हुआ तार भेजा था:—"If the Scindia joins the mutiny, I shall have to pack off to-morrow" अर्थात् 'यदि सेंधिया सरकार बलवे में शामिल हो जायगी तो फिर मुझ को कल ही अपना डेरा डंडा उठाना पड़ेगा।

ने कुछ रोक टोक नहीं की । यही नहीं किन्तु राव साहब पेशवा ने प्रगट रीति से महाराज जयाजीराव और श्रीयुत बायजाबाई * को इस प्रकार के पत्र लिखे थे कि "हम आपके पास स्नेहभाव से आते हैं आप हमारे पुराने नाते का याद करके हमें इस समय सहायता दें तब हम दक्षिण को जा सकेंगे"। परन्तु दीवान दिनकरराव ने इस पत्र का जवाब सन्देहपूर्ण और उड़ानटप्पू भेजा और यह सब हाल रेजिडेंट साहब को लिख भेजा! इधर राव साहब पेशवा इस बात के भरोसे पर, ता० २८ मई को आमन गांव में आ पहुँचे कि, सेंधिया हमारे पीढ़ीजाद नौकर हैं; वे हमको अवश्य सहायता करेंगे। पेशवा के वहां आतेही सेंधिया-सरकार के सूबा ने ४०० पैदल और १५० घोड़सवार सिपाही लेकर पेशवा की सेना का मार्ग रोका। उस समय राव साहब पेशवा ने उसकी बड़ी निर्भर्त्सना की और कहा "तुम हमें रोकनेवाले कौन हो ? सेंधिया और दिनकरराव को हम क्या समझते हैं! वे कौन ख़िरतो हैं और हमें किस लिये रोकेंगे ? हम राव पन्तप्रधान पेशवे हैं, और स्वराज्य के लिये तथा स्वधर्म के लिये युद्ध करते हैं। सेंधिया के पूर्वजों ने हमारी चाकरी की है और हमनेही उन्हें राज्य दिया है। सेंधिया की सब सेना हमसे मिली है। सेना के अफसरों के पास से हमारे यहां खुद आश्वासनपत्र आये हैं। तात्या टोपे ग्वालियर में आकर और सब से मिलकर पहलेही सब हाल मालूम कर ले गये हैं। अब हमारी सब तैयारी हो चुकी है। इसी लिये हम लश्कर की ओर आ रहे हैं। हमारे साथ युद्ध करने की क्या तुम्हारी

* श्रीमती बायजाबाई सेंधिया दौलतराव सेंधिया की पत्नी और महाराज जयाजीराव की मातामही थी। दूसरे बाजीराव पेशवा के समय में सर्जेराव घाडगे नामक जो प्रसिद्ध पुरुष था वह बायजाबाई का पिता था। बायजाबाई बहुत इतिहास-प्रसिद्ध स्त्री है; उसने अपने पति के मरने पर कई वर्ष तक बड़ी चतुराई से राजकाज किया था। आगे चलकर, कुछ दिनों के बाद, वह धर्मनिष्ठा हो गई थी। उसका दान, धर्म बहुत प्रसिद्ध है। लक्ष ब्राह्मण भोजन कराने का प्रण कर के जगह जगह तार-द्वारा निमंत्रण भेजने की जो कहावत वृद्ध लोग बताया करते हैं वह इसी स्त्री की है। बलवे की समाप्ति होने पर कुछ दिन के बाद इस स्त्री की मृत्यु हुई। मिसेस फेनी पार्क नामक एक विलायती स्त्री ने इसकी भेट का हाल बहुत अच्छा लिखा है।

इच्छा है ?" राव साहब पेशवा का ऐसा आवेशयुक्त भाषण सुनकर वह सूबा बिलकुल सिटपिटा गया और जब उसने देखा कि उनकी प्रचण्ड सेना के सामने मेरा कुछ वश न चलेगा तब उसने लाचार होकर युद्ध करने का विचार छोड़ दिया। पेशवा की सेना ३० मई १८५८ को रात के समय ग्वालियर से ६ मील पर बड़ागांव नामक स्थान में निर्भयता से उतर पड़ी।

श्रीमान् राव साहब पेशवा ने अपने आने का समाचार सेंधिया-सरकार के पास भेज दिया और योग्य सहायता देने के लिए उनसे बिनती भी की। ग्वालियर-दरबार में पेशवा का पत्र पहुँचतेही वहां उस पर बड़ा वादविवाद शुरू हुआ। सेंधिया महाराज के बहुत से सरदारों और राजनीतिज्ञों ने, अन्तस्थ रीति से पेशवा के वश में होने के कारण, सहायता देने के लिए अपनी सम्मति दी। दीवान दिनकरराव और महाराज जयाजीराव का, उस समय ब्रिटिश सरकार पर बड़ा स्नेह और विश्वास हो गया था, इस कारण इन लोगों की सहायता करने की उनकी इच्छा न हुई! पेशवा का अपने साथ पहले से चला आया हुआ सेव्यसेवक-भाव-सम्बन्ध यदि उस समय महाराज ग्वालियर अपने मन में लाते अथवा अधिक नहीं तो वे केवल स्वदेश-बन्धुत्व का नाताही जागृति रखकर, स्वराज्य स्थापित करने में उनका अभिनन्दन करने की इच्छा रखते तो शायद उस समय, वे राव साहब पेशवा को मदद दे देते। पर उन्होंने वैसा नहीं किया। उन्होंने, प्रत्यक्ष स्वराज्य संस्थापना और स्वधर्म-रक्षण करने की अभिलाषा रखनेवाले, पुण्य प्रतापवान पेशवा के वंशज राव साहब की बिनती नहीं स्वीकार की; और परकीय तथा परधर्मी ब्रिटिश सरकार के साथ अपना सच्चाई का बर्ताव कायम रखकर, उसकी सत्ता स्थापित होने में सहायता दी! भारतवर्ष के इतिहास में यह बात ध्यान देकर विचारने के योग्य है।

सेंधिया सरकार ने इस बात का पूर्ण रीति से निश्चय कर लिया कि बलवाइयों को बिलकुल सहायता न करेंगे और उनको किसी प्रकार का आश्रय न देंगे। इतनाही नहीं किन्तु उन्होंने कहा कि "बलवाइयों से युद्ध

करके हम उन्हें पराजित करने के लिए तैयार हैं"। दीवान दिनकरराव बड़े अनुभवी और धूर्त पुरुष थे। वे विचार कर रहे थे कि अपना भीतरी हेतु बलवाइयों को एकदम जताना न चाहिए; और अपनी ओर से पहले उनके ऊपर धावा न करके बड़ी युक्ति से शहर की रक्षा करना चाहिये; अँगरेजी सेना की सहायता पाते ही एकदम बलवाइयों का नाश करना चाहिए। इसी विचार के अनुसार वे अपने पोलिटिकल एजंट मेजर मेकफर्सन से पत्रव्यवहार भी कर रहे थे। इस लिए उन्होंने, जब तक सर ह्यू रोज़ साहब की फौज न आजाय तब तक, अपनी सब फौज जहां की तहां बनी रखने का विचार किया; केवल थोड़ी सी चुनी हुई मराठी फौज आगे बढ़ाकर बलवाइयों को वहीं स्थिर रखने का प्रबन्ध किया। परन्तु सेंधिया-सरकार की सेना के सिपाहियों और उनके अफसरों के मन शुद्ध न थे। ये सब लोग बलवाइयों के हितचिन्तक थे। कुछ थोड़ी मराठी पलटन महाराज ग्वालियर की ओर थी। इसी कारण इन सब में परस्पर द्वेषभाव और मत्सर भी था। फौजी सरदारों में नित्य नयी नयी सलाह हुआ करती थी। ३१ तारीख को प्रात:काल सेंधिया-सरकार को सरदारों ने सलाह दी कि ८००० फौज और २४ तोपें लेकर मुरार की छावनी से बलवाइयों पर हमला करना चाहिये और उन्हें मार भगाना चाहिए। दीवान साहब को यह विचार पसन्द नहीं आया। उन्होंने वैसा न करके उस दिन तो सब फौज जहां की तहां बनी रखी। परन्तु आधी रात के समय सेंधिया महाराज को फिर किसीने उलटी पट्टी पढ़ा दी और शीघ्रही बलवाइयों पर चढ़ाई करने के लिये सलाह दी। दीवान साहब की गैरहाज़िरी में, महाराज ने, तरुणाई के जोश में आकर, इस विचार का अनुमोदन कर दिया! इससे, राव साहब पेशवा को ग्वालियर-महाराज से सहायता मिलना तो एक ओर रहा; उलटा १ जून को उनकी सेना से टक्कर मारने का प्रसंग आ पड़ा!!

ता० १ जून को प्रात:काल महाराज जयाजीराव स्वयं फौजी पोशाक पहिन, कमर में तलवार लटका कर घोड़े पर सवार हुए। वे अपनी सब सेना को साथ लेकर, मुरार के पूर्व ओर दो मील पर, बहादुरपुर नामक गांव में

बलवाइयों से मुकाबला करने के लिये समरांगण में जा डटे। इस समय उनके साथ ६००० पैदल, १२०० सिलेदार लोगों की घाटीवाली पलटन और ८ बड़ी बड़ी प्रचण्ड तोपें थीं। उन्होंने सेना का क्रम बड़ी चतुरता और प्रबन्ध के साथ लगाया। सेंधिया सरकार का तोपखाना प्राचीन समय से सर्वप्रसिद्ध था। जान पेरू, सवाई सिकन्दर, जान बत्तीस, आदि फरा-सीसी युद्धकुशल गोलन्दाज सरदारों ने उनके तोपखाने की जो व्यवस्था पहले से कर रक्खी थी वह उस समय तक कायम थी। सेंधिया महाराज ने बलवाइयों को उड़ा देने के लिये सब से आगे यही तोपखाना रक्खा। सहस्त्ररश्मि सूर्यनारायण का उदय होतेही उनके आरक्त बिम्ब को लजाने के लिये, उन प्रचण्ड तोपों से हजारों लाल लाल भड़कीले अग्नि गोलों की वर्षा शत्रुओं पर शुरू हो गई।

पेशवा की सेना के अग्रभाग पर एकाएक मुरार की ओर से गोले आ आकर गिरने लगे। यह हाल देखकर आगे की फौज के मुख्य अफ़सर ने बिगुल बजा कर सेना को युद्ध के लिये चेताया। और एक जासूस के द्वारा पेशवा के तम्बू में यह खबर भेजी कि सेंधिया की फौज लड़ाई के लिये सिर पर आ पहुँची; इस लिये अब आप अपनी फौज को भी लड़ाई के लिये बहुत जल्द हुक्म दें। राव साहब पेशवा और तात्या टोपे को इस बात का ध्यान भी न था कि सेंधिया महाराज हमारे ऊपर चढ़ाई के लिये आरहे हैं। इसके प्रतिकूल इधर के प्राय: सभी राजनितिज्ञों को इस बात का विश्वास था कि ये गोलों की आवाजें नहीं हैं; तोपों की सलामी हो रही है; सेंधिया महाराज अपने पूर्व-सम्बन्ध को याद करके पेशवा साहब का प्रेमपूर्वक स्वागत करने के लिये आ रहे हैं! यही समझ कर पेशवा की ओर से सेना को लड़ाई के लिये तैयार होने की आज्ञा नहीं दी गई! इतने ही में सेंधिया के तोपखाने के गोलन्दाजों ने लगातार खूब जोर से मार शुरू की। अब पेशवा की सेना में एकदम गड़बड़ मच गया; लोग इधर उधर भगने लगे। यह देखते ही रावसाहब पेशवा एकदम घबड़ासे गये और बड़े सोच में पड़े। परन्तु महाराणी लक्ष्मीबाई ने उस समय उनका पक्ष बड़ी दृढ़ता के साथ सँभाला।

यद्यपि महारानी साहब राव साहब पेशवा को उत्साहित कर के ग्वालियर की ओर लाई थी तौ भी रानी साहब के इच्छानुसार कुल सेना की व्यवस्था उन्हींके हाथों से नहीं हो पाई थी ! रानी साहब स्वयं बड़ी शूरवीर और चतुर थीं; इसी कारण उनकी सलाह राव साहब मानते थे; पर राव साहब में आत्मप्रतिष्ठा का एक विशेष औगुण था, इससे रानी साहब के मन के मुताबिक सब बातें वास्तव में नहीं होती थी। यही कारण था कि उस समय भी पेशवा की सेना का प्रबन्ध ढीलाढाला था।

जब रानी साहब ने देखा कि सेंधिया सरकार की तोपों के मार अकस्मात् पेशवा की फौज हैरान है तब उन्होंने बड़े आवेश के साथ अपने वहीं दो तीन सौ घोड़सवार एकदम आगे निकाले; और क्रोध से तड़पती हुई नागिन की तरह उन्होंने सेंधिया के तोपखाने पर हमला किया। इधर तात्या टोपे ने भी अपनी सेना के भिन्न भिन्न भाग करके उन्हें तोपों की मार से बचाया। महारानी लक्ष्मीबाई अपने वीर और रणपटु सवारों के साथ ज्योंही सेंधिया के तोपखाने पर टूट पड़ीं त्योंही गोलन्दाज लोग तोपें छोड़कर भग गये। सेंधिया की ओर की दूसरी सेनाएं भी तात्या टोपे को और उनकी सेना को देखकर भाग गईं। केवल महाराज जयाजीराव, शूरता के आवेश में आकर, अपनी घाटवाली पलटन को आगे लाकर विरोधियों से युद्ध करने लगे। एक दल की ओर रणांगण में अच्छी तरह जमा हुआ, एक तरुण राजकुमार और उसकी खासी हजार-बारह सौ सिलेदार पलटन, और दूसरे दल की ओर एक दुर्दैव-पंक में फँसी हुई अबला और थोड़े से उसके रणशूर सवारों का अपूर्व सामना हुआ ! जयाजी महाराज के अन्तःकरण में अंग्रेजी सर्कार की स्नेहबुद्धि खूब प्रज्वलित हो उठी थी; इससे उनकी वीरश्री पर अति सुन्दर रंग खिला था, और इधर महारानी लक्ष्मीबाई के मृदु हृदय में अँगरेजी सर्कार के जुल्मी बर्ताव के कारण भयंकर क्रोधाग्नि धधक उठी थी ; इस कारण उनके आवेश का विलक्षण प्रखर स्वरूप हो गया था। कुछ देर तक दोनों दलों की ओर से खूब तलवार पर तलवार बजी ! सेंधिया सर्कार के भड़कीली पोशाकवाले सिलेदार सिपाही

क्षण भर में हैरान हो गये; महारानी साहब के कस पर चढ़े हुए जवांमर्द सवार अपने शत्रुओं का स्वाहा करने लगे ! यह देखते ही सेंधिया महाराज जयाजीराव पीछे भगे और सीधा राजमहल का रास्ता पकड़ा ! अपने प्राण बचाने के लिए, धवलपुर के मार्ग से दीवान दिनकर-राव और दूसरे एक दो अपने विश्वासी सर्दारों को साथ ले, अपने मित्र अंगरेजी सर्कार के पास, आगरे के किले में आकर, उन्होंने शरण ली !

वास्तव में सेंधिया सर्कार ने उस समय अपनी राजभक्ति की बहुत रक्षा की और अपनी मित्रता का व्रत पालन करने के लिये उन्होंने अपने प्राणों की कुछ भी परवा न करके अपने प्राचीन मान्य सम्बन्धियों से भी युद्ध किया ! यह बात जिस प्रकार उनके लिये उस समय गौरव की हुई उसी प्रकार झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई ने अपने पराक्रम से, स्वराज्य स्थापन करने की अभिलाषा से, जो कीर्ति सम्पादन की वह सदैव अटल रहेगी। महाराज जयाजीराव सेंधिया कि जिनके शौर्य की बड़े बड़े यूरोपियन लोग तारीफ़ करें, जिनका लड़ाई का अग्यत सरंजाम अवलोकन करतेही शत्रु की छाती फट जाय और जिनके रथी महारथी शूर सरदारों को देख कर विजयश्री स्वयं वश हो जाय, ऐसे सेंधिया महाराज को रानी साहब के समान एक अबला ने, किसी प्रकार की विशेष सहायता न होने पर भी, केवल अपनी तलवार की जोर पर, संग्राम से भगा दिया--यह कोई सामान्य बात नहीं है ! इससे किसी संस्कृत कवि के कथनानुसार इस नियम की सत्यता, अच्छी तरह, सिद्ध होती है कि:—

'क्रिया सिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे'

अर्थात् 'बड़ों की कार्य-सिद्धि स्वयं उनके सच्चे पराक्रम से होती है; न कि केवल साधनों के साहित्य से।

महाराज जयाजीराव सेंधिया जब महारानी लक्ष्मीबाई से पराजित हो, ग्वालियर राजधानी छोड़ कर आगरे भाग गये तब राजमहल में बड़ा हाहाकार मचा। सरकार की सवारी हारकर आगरे भाग जाने की खबर

सुनते ही सब राजस्त्रियां आत्मसंरक्षण के लिये नरवर गांव में चली गईं।* उस गांव में सेंधिया सरकार के एक दो विश्वासू सरदार और पुराने रिसाले के कुछ स्वामिभक्त लोग थे उन्होंने उनकी बड़ी रक्षा की।

इधर विद्रोही लोगों ने बड़े आनन्द से शहर में प्रवेश किया। ग्वालियर-दरबार के जो सरदार और राजनीतिज्ञ भीतरी तौर से श्रीमान राव साहब पेशवा और तात्या टोपे आदि का अभीष्ट चिन्तन करते थे उनको इस विजय का हाल सुनकर बड़ा आनन्द हुआ; उन्होंने इन लोगों का आगमन सुनकर अपनी आदरबुद्धि प्रगट करने में कोई आगा पीछा नहीं सोचा! श्रीमान् राव साहबही को अपना मुख्य धनी समझ कर ग्वालियर की बिथरी हुई फौज ने उनके स्वागत के लिये तोपों की सलामी दी। और उनको किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न करके लश्कर राजधानी में आने दिया। श्रीमान पेशवा बड़े ठाठ से, मांगलिक वाद्य बजवाते हुये, अपने लवाजमा के साथ सेंधिया के राजमहल में पधारे और वहीं अपना डेरा डाला। महारानी लक्ष्मीबाई लश्कर के पास नवलखा नामक बाग में उतरीं। श्रीमान पेशवा के साथ के और दूसरे सरदार तथा मित्र शहर के भिन्न भिन्न महलों में उतरे। सारांश, श्रीमान राव साहब पेशवा को बिना विशेष परिश्रम, थोड़ेही समय में, सेंधिया सरकार की राजधानी मिल गई और वहां उनकी स्वतंत्रता-दर्शक विजय-पताका फहराने लगी।

शहर पर अधिकार होतेही तात्या टोपे ने ग्वालियर के किले की तरफ कुछ सेना भेजी। किले के अधिकारी तात्या साहब से पहलेही से मिले हुए थे, इस लिये किले पर अधिकार करने में उन्हें कुछ भी प्रयास नहीं पड़ा।

---

* सेंधिया महाराज की राजस्त्रियां जिस समय ग्वालियर से नरवर गईं उस समय एक चमत्कारिक बात हुई। जिस समय ये स्त्रियां राजमहल से निकलीं उस समय शहर में विरोधियों की धूमधाम मच रही थी। उन स्त्रियों को यह खबर मिली कि महाराज तो राजमहल में हैं और उनके ऊपर बड़ा भयानक प्रसंग आ पड़ा है! यह सुनते ही उनमें से 'गजराजा' नाम की एक शूर स्त्री एकदम घोड़े पर सवार हुई और हाथ में नंगी तलवार लेकर महाराज को ढूंढने के लिये बड़ी भीड़ से निकल कर राजमहल की ओर चली। वहां जाने पर जब उसे महाराज के सुरक्षित आगरे पहुँच जाने का सच्चा हाल मिल गया तब वह लौट पड़ी! वास्तव में इस बात से मालूम होता है कि उसमें कितना धैर्य था।

तात्या टोपे की सेना के पहुँचते ही किलेवालों ने दरवाजे खोलकर सारा किला उनके स्वाधीन कर दिया। ग्वालियर के समान जंगी और पहाड़ी किला तथा अगणित युद्ध-सामग्री पाकर तात्या साहब को अत्यन्त हर्ष हुआ; उनको इस बात का गर्व भी हुआ कि ऐसे अजित किले के अप्रतिम सामर्थ्य के आगे अब हमारी बराबरी कौन कर सकता है!

किला और शहर ले लेने पर, विद्रोहियों ने ग्वालियर में बड़ा उपद्रव मचाया। पहले तो उन्होंने रेजिडेन्सी पर धावा कर के उसे जला दिया और वहां का सारा माल असबाब लूट लिया। इसके बाद सेंधिया सरकार के पुराने राजमहल पर और उनके अंगरेज-हितैषी सरदारों के महलों पर उन्होंने धावा किया और उनका सत्यानाश करना आरम्भ किया। उन्होंने राजमहल का विध्वन्स करके दीवान दिनकरराव, सरदार बलवन्तराव और माहुरकर आदि मुखिया दरबारी लोगों की हवेलियां मिट्टी में मिला दीं। इतनाही नहीं किन्तु उन्होंने अपनी द्रव्यतृष्णा तृप्त करने के लिये शहर लूटना भी आरम्भ कर दिया। परन्तु सौभाग्य से, जब श्रीमान रावसाहब पेशवा ने इस बात का सख्त हुक्म दिया कि शहर-वालों को लूटो मत और उन्हें तकलीफ मत दो तब कहीं जाकर यह लूट-मार कुछ बन्द हुई। *

ग्वालियर विजय करके विद्रोहियों ने, और खास कर रावसाहब पेशवा ने, सोचा कि अब सेंधियाशाही गई और पेशवाई आई! सब दरबारियों को अनुकूल जानकर रावसाहब ने ग्वालियर के सब सर्दारों और जागीरदारों को इकट्ठा किया। फौज के अफसर भी जमा हुए। सेंधिया महाराज ने जिन चार सरदारों को बलवाई समझ कर कैद कर रखा था उन्हें श्रीमान ने छुड़ा दिया और उनको सुन्दर वस्त्रादि दिये।

*इस विषय में अंगरेजी ग्रन्थकारों का कुछ आधार मिलता है। मेजर मैकफर्सन कहते हैं:—

"The Raosaheb prevented plunder; confiscated only the houses of the Diwan, Balwantrao, and Mohurkur"—*Memorials*, *P. 334*.

इन सब की सलाह से आसपास के अनुकूल राजाओं को निमंत्रणपत्र भेजे गये। इस प्रकार सब तैयारी करके श्रीमान ने खुद अपने को सिंहासनारूढ़ करने का शुभ मुहूर्त निश्चय किया!

३ तारीख को **फूलबाग** में बड़ा जंगी दरबार हुआ। पेशवा साहब के अनुकूल हुए सब सरदार, राजनीतिज्ञ, सिलेदार आदि अपने अपने योग्य स्थानों में सुशोभित हुये। तात्या टोपे और उनके नीचे के सब फौजी सरदार अपनी अपनी पोशाक पहनकर सभा में हाजिर हुये। खुद श्रीमान राव साहब भी, पेशवाई राजसी पोशाक पहन, मस्तक में सिर-पेंच और कलँगी रख, कानों में मोतियों के चौकड़े और गले में मोतियों के हार तथा रत्नमाला पहनकर, सम्पूर्ण वैभव के साथ, चोबदार और बन्दीगणों की मंगलध्वनि के साथ दरबार में पधारे। इसके बाद यथाविधि ताजीम और दरबारी लोगों के मुजरे होकर पेशवा महाराज सिंहासनारूढ़ हुए। श्रीमान ने आनन्द में आकर सब अपने अनुकूल सरदारों का अभिनन्दन किया और उनको बड़े बड़े वस्त्रालंकार देकर सन्मान किया। रामराव गोविन्द नामक एक सज्जन को प्रधान मंत्री के वस्त्र दिये और तात्या टोपे को सेनापति नियत कर उन्हें एक रत्नजटित तलवार दी। इसके बाद अष्ट प्रधान नियत करके उन्हें योग्यतानुसार अधिकार दिये। फौजी लोगों को २० लाख रुपया बाँट दिया। चारों ओर आनन्दही आनन्द देख पड़ने लगा। श्रीमान् राव साहब ने सेंधिया सरकार के अचानक मिले हुए धन का खूब उपयोग किया। नित्य ब्राह्मण-भोजन होने लगे। सैकड़ों भिक्षुकों को उत्तम उत्तम भोजन मिलने लगा। पाकशालाओं में हजारों आदमी ब्राह्मण-भोजनही के लिए नौकर रखे गये। इस प्रकार राजमहल में नित्य नये नये उत्सव होने लगे। राव साहब पेशवा, तात्या टोपे आदि सुख में निमग्न होकर अपने कर्तव्य को बिलकुल भूल गये।

यह हाल देखकर महारानी लक्ष्मीबाई को बहुत खेद हुआ! उन्होंने राव साहब से बारम्बार यही कहा कि आप इस समय ये सब सुख-साज बन्द कीजिए; यह समय उत्सव और आनन्द करने का नहीं

है; युद्ध के लिए तैयार होने का है। परन्तु राव साहब पेशवा ने महारानी साहब की बातों पर कुछ भी ध्यान न दिया। इस पर रानी साहब ने फिर यह उपदेश किया कि " आप इस समय विजय के आनन्द में मग्न हैं; पर यह बात अच्छी नहीं है। संधिया का सब खजाना और सेना आपके आधीन है। इसका यदि अच्छा उपयोग नहीं किया जायगा तो आपकी सब आशायें धूल में मिल जायँगी। अंगरेज लोग बड़े धूर्त और उद्योगी हैं। इस बात का कुछ ठीक नहीं है कि वे कब हम लोगों पर चढ़ाई कर दें। यदि आप ऐसेही अचेत पड़े रहेंगे तो नाश होने में देर न लगेगी। इससे आप अब यह ऐश-आराम छोड़िये और सेना की तैयारी में लगिये। फौजी लोगों की तनखाह बढ़ाकर उन्हें उत्साहित करना चाहिए। यह समय व्यर्थ नष्ट करने का नहीं है। बड़ी कठिनता से कार्य-साधन के लिए अनुकूल समय मिला है; अतएव अब आप, सावधानी के साथ युद्ध की तैयारी करके अपने कर्त्तव्य में लगें।" दुर्भाग्यवश पेशवा के मन पर इस उपदेश का कुछ भी असर न हुआ। वे बराबर उसी आनन्द में मग्न रहे। ब्राह्मण-भोजन भी वैसाही चलता रहा। तात्या टोपे भी अपनी बलवान सेना के घमंड में बने रहे; उन्होंने तो यहां तक समझ लिया कि अब हमारी सेना का मुकाबला अंगरेज लोग करही नहीं सकते!

इधर काल्पी-युद्ध के बाद सर ह्यू रोज साहब विश्राम लेने के लिये बम्बई जानेवाले थे। उन्होंने भिन्न भिन्न अँगरेज वीरों के अधीन भिन्न भिन्न पलटनें करके चारों ओर विद्रोहियों को नाश कर देने का प्रबन्ध कर दिया था। कर्नल रॉबर्टसन सेना सहित ग्वालियर की ओर भेजे गये थे। १ जून को रॉबर्टसन साहब की ओर से विद्रोहियों के ग्वालियर पहुँचने की खबर सर ह्यू रोज साहब को मिली। यह खबर लगतेही उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ; उन्होंने बहुत सी गोरी और काली फौज, घोड़सवार और तोपखाना आदि मेजर स्टुवर्ट के अधीन करके, रॉबर्टसन साहब की मदद के लिये भेजा। यह फौज ग्वालियर पहुँचने न पाई थी कि ४ जून को रोज साहब को यह दुःखदायक समाचार मिला

कि विरोधियों ने ग्वालियर जीत लिया और वहां के महाराज आगरे भाग गये। यह सुनते ही रोज़ साहब बहुत चिन्तित हुए और घबड़ाये; उनकी सब आशाओं पर पानी फिर गया। झांसी और काल्पी के जीतने से जो आनन्द उन्हें हुआ था उसे वे क्षण भर के लिये भूल गये। कहां तो वे बम्बई विश्राम लेने के लिये जा रहे थे और कहां उन्हें इस बड़ी भारी चिन्ता ने आ घेरा। पर वे बड़े दृढ़ और साहसी वीर थे। वे धैर्य रख कर फिर विद्रोहियों को पराजित करने के लिये तैयार हुये। इसमें सन्देह नहीं कि इस समय यदि सर ह्यू रोज़ के समान वीर, पराक्रमी और चतुर योद्धा विरोधियों से सामना करने के लिये तैयार न होता तो ग्वालियर में श्रीमान रावसाहब पेशवा-द्वारा पुनरुज्जीवित किया हुआ पेशवाई का वृक्ष जोरदार हो जाता और उसकी जड़ें दक्षिण तक जम जातीं! *

* इन दिनों बरसात के कारण, ग्वालियर पर चढ़ाई करके विद्रोहियों के नाश करने में अंगरेजी फौज के लिये बहुत सी अड़चनें थीं। इन अड़चनों को दूर करके ग्वालियर पर चढ़ाई करना उनके लिए बहुत आवश्यक था। मैलेसन के समान अंगरेजी इतिहासकारों ने कबूल किया है कि यदि उनको थोड़ासा विलम्ब लग जाता तो तात्या टोपे के समान पातालयंत्री पुरुष अपनी अतर्क्य और अलौकिक बुद्धि से न जाने क्या कर डालता। अंगरेज सरकार का भाग्य बहुत अच्छा था कि ऐसे बिकट प्रसंग में सर ह्यू रोज के समान योद्धा उसे मिल गया। मैलिसन साहब ने इस भयानक प्रसंग का वर्णन करते हुए कहा है:—

"No one could foresee the extent of evil possible if Gwalior were not promptly wrested from rebel hands. Grant them delay and Tantia Topi, with the immense acquisition of political and military strength secured by the possession of Gwalior, and with all its resources in men, money and material at his disposal, would be able to form a new army on the fragments of that beaten at Kalpi, and to provoke a Mahratta rising throughout India. It might be possible for him, using the dexterity of which he was a master, to unfurl the Peishwá's banner in southern Mahratta countries." *Malleson's History of the Indian Mutiny. Vol. V. p. 150.* इसका भावार्थ यह है:—

यह बात कोई नहीं जानता था कि यदि ग्वालियर बलवाइयों के हाथ से शीघ्र न छीन लिया जाता तो कितनी हानि होती। यदि कुछ भी देर हो जाती तो तात्या टोपे काल्पी की लड़ाई में हारी हुई सेना को एकत्र करके, बहुत बड़ी फौज तैयार कर लेता और सारे हिंदुस्थान में मरहटों का बलवा खड़ा कर देता; क्योंकि, ग्वालियर का किला उसके हाथ में आ जाने से, उसके पास राजकीय और फौजी शक्ति बहुत आ गई थी। और उस के पास धन, जन तथा लड़ाई का दूसरा बहुतसा सामान इकट्ठा हो गया था। यह बात भी सम्भव है कि वह, अत्यन्त चतुर होने के कारण, मरहटा प्रान्तों में पेशवाई का झंडा खड़ा कर देता।

सर ह्यू रोज ने बहुत जल्द गवर्नर जनरल लार्ड केनिंग को तार-द्वारा इस बात की सूचना दी कि मैं स्वयं ग्वालियर पर धावा करके वहां का किला और वह शहर अपने अधिकार में कर लेने के लिये तैयार हूं। लार्ड केनिंग ने रोज साहब का उत्साह देख कर ग्वालियर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी और उन्हींको इस युद्ध का भी सेनापति नियत किया। सर ह्यू रोज ने ज्योंही फिर अपने कर्त्तव्य का स्वीकार किया त्योंही जनरल नेपियर, जो उनकी जगह पर आ रहे थे, दोयम सेनापति बन गये और बड़े उत्साह के साथ उन्हें मदद देने की प्रतिज्ञा की। इससे मालूम होता है कि अंगरेज लोग राष्ट्र-कार्य के लिये आपस में कितने प्रेम से बर्ताव करते हैं।

पांच तारीख को सर ह्यू रोज और ब्रिगेडियर जनरल नेपियर ने अपनी अपनी सेना को, कई कई भाग करके, भिन्न भिन्न अफसरों के सिपुर्द किया। और ग्वालियर पर चढ़ाई करने के लिए उपयुक्त मार्ग निश्चित किये। मेजर आर को हैदराबाद कंटिंजंट फौज देकर दक्षिण की ओर बलवाइयों को दबाने के लिए ग्वालियर और सीपरी के बीच पनिहार के पास भेजा। ब्रिगेडियर स्मिथ को राजपुताना फील्ड फोर्स की नवीन सेना का अफसर नियत कर के ग्वालियर के पूर्व ओर पाँच मील पर कोटे की सराय की ओर भेजा। कर्नल रिडेल के साथ में बहुत सा तोपखाना देकर आगरा और ग्वालियर के रास्ते पर भेजा। स्वयं रोज साहब और जनरल नेपियर ने बहुत सी सेना लेकर कई ओर से मुरार की छावनी पर धावा करने का विचार किया। ६ जून को सर ह्यू रोज साहब ने काल्पी से ग्वालियर की ओर प्रस्थान किया। इस समय इनके साथ मध्यभारत के पोलिटिकल एजंट सर रॉबर्ट हामिल्टन और ग्वालियर के रेजिडेन्ट मेकफर्सन साहब भी थे। इन दोनों साहबों से रोज साहब को ग्वालियर का भीतरी हाल और मारके की जगहों की जानकारी अच्छी तरह से हो गई; और समय समय पर सलाह लेने का भी अच्छा मौका मिल गया। अँगरेजी सेना बड़े वेग से जा रही थी। ११ जून को इन्दुरखी गांव में स्टुवर्ट साहब की पहली ब्रिगेड से भेट हुई। दोनों सेनाएं

पहूज नदी पार कर के उस पहाड़ी प्रदेश में खूब तेजी से, पर परिश्रम के साथ, जा रही थीं। रास्ता बहुत विकट होने के कारण यद्यपि सेना के लोगों की दुर्दशा हो गई थी तौ भी उन्होंने अपना साहस नहीं छोड़ा और सेनापतियों के आज्ञानुसार वे अपनी मैजल बराबर ते करते गये। अँगरेजी सेना का यह उत्साह और साहस देखकर रोज़ साहब का मन और भी बढ़ गया।

१६ जून को प्रातःकाल सरकारी सेना बहादुरपुर नामक गांव में, जहां सेंधिया महाराज की हार हुई थी, जा पहुँची; वहां से उसे ग्वालियर के प्राचीन, प्रचंड और पहाड़ी किले का भीमरूप देख पड़ने लगा। रोज साहब ने सूक्ष्म रीति से विद्रोहियों के बलाबल का निरीक्षण किया। वहां से उन्होंने, विविधि वृक्षों से घिरे हुए, मुरार छावनी के उच्च प्रदेश को जब देखा तब मालूम हुआ कि वह कुल प्रदेश विरोधियों ने ले लिया है और उन्होंने छावनी के अग्रभाग में घुड़सवार सेना का रिसाला, दाहनी ओर तोपखाना और बाईं ओर पैदल फौज आदि रखकर खूब घमासान तैयारी कर रक्खी है। यह हाल देखकर अँगरेज़ वीरों ने भी अपनी सेना के कई भाग कर के तोपों के हथियारबन्द दृढ़ मोरचे तैयार किये। अंगरेजी फौज के ठहरने के लिए भी कोई अच्छा मुकाम न था; इस लिए सर ह्यू रोज साहब ने सोचा कि सब से पहले अपनी रणशूर ८६ वीं पलटन को आगे कर के मुरार की छावनी पर हमला करना चाहिये।

इस समय मुरार की छावनी में जो फौजें थीं वे सब सेंधिया सरकार की नामी फौजों में से थीं। सेंधिया सर्कार की दूसरी फौजें, तोपखाने और खास रिसाले भी बलवाइयों के अधीन थे। परन्तु राव साहब पेशवा और तात्या टोपे के अंधाधुंध कारबार के आगे इन युद्ध-सामग्रियों की ओर किसीका ध्यानही न था। महारानी लक्ष्मीबाई ने, कई दफे, पेशवा साहब को इनका ध्यान भी दिलाया; पर वहां कौन किसकी सुनता था! ग्वालियर की कंटिंजंट फौज, और अवध प्रान्त के रुहेले तथा पठान लोगों की सेनाएं भी शहर के आसपास पड़ी थीं। परन्तु किसीका भी प्रबन्ध

चतुरता से नहीं किया गया था। इस कारण विरोधियों की ओर, फौज और युद्ध-सामग्री अधिक होने पर भी, देख-भाल के बिना, उनका होना न होना बराबर था।

अंगरेजी सेना मुरार के समीप तक आ भी गई; परन्तु राव साहब पेशवा और उनके सेनापति तात्या टोपे को इसकी बिलकुल खबर न हुई। ये सब विजय-महोत्सव के आनन्द में मग्न थे। राव साहब पेशवा के पूर्वजों ने महाराष्ट्र-राज्य-पताका भारत में अधिकांश अपने वीर योद्धों के जोर से, और तलवार के जोर से, फहराई थी; पर राव साहब को उस समय इस बात का बिलकुल ध्यान न था; वे समझते थे कि इस बार दान पुण्य और ब्राह्मण-भोजन केही बल पर स्वराज्य स्थापित हो सकेगा। जब अंगरेजी सेना ने अच्छी तरह से अपना सब प्रबन्ध कर लिया तब कहीं पेशवा साहब को इस बात की खबर लगी! उन्होंने तुरन्तही तात्या टोपे को फौज तैयार करने के लिये आज्ञा दी और अपना दान, पुण्य और ब्राह्मण-भोजन का क्रम बराबर वैसाही चलने दिया!

तात्या टोपे यद्यपि युद्धविद्या में बहुतही निपुण थे; परन्तु इस समय उनको भी राव साहब के साथ ऐश-आराम की सूझी थी—वे भी उनके साथ राजसी ठाठ में पड़े थे। शायद वे समझते थे कि अब पेशवाई का जमाना फिर आगया; यदि अंगरेज लोग हमारे ऊपर चढ़ाई करेंगे तो आसपास के राजा लोग सब हमारी मदद करेंगे। पर यह केवल उनका भ्रम मात्र था। जब तात्या साहब ने देखा कि इस समय कोई मदद देनेवाला नहीं है तब उन्होंने फौजी पोशाक पहनकर जगह जगह मोर्चाबन्दी करने का हुक्म अपनी सेना को दिया। और स्वयं दौड़ धूप कर मुरार की छावनी के बचाव करने का प्रयत्न किया। परन्तु उनका यह सब प्रयत्न बेकार हुआ; क्योंकि सर ह्यू रोज़ साहब ने अकस्मात हमला कर दिया; बलवाइयों की फौज एकदम घबड़ा गई! विद्रोहियों की इस सेना में अधिकांश वेही लोग थे जो महाराज सेंधिया के विरोधी थे। इस सेना ने अंगरेजी सेना पर बड़ी वीरता से गोलों का बरसाना शुरू किया। पर सर ह्यू रोज़ साहब ने मारके के

स्थान पहलेही से रोक रखे थे; इस लिए विरोधियों को लाचार होकर युद्ध-स्थल छोड़ना पड़ा! बलवाइयों में से कितनेही शूर वीर लोगों ने इस समय भी अपना पराक्रम दिखलाया। हैदराबाद कंटिंजंट फौज लेकर ऐबट साहब ने जब विद्रोहियों पर हमला किया तब ये शूर वीर एकदम उस अंगरेजी फौज पर टूट पड़े और खूब दृढ़ता के साथ युद्ध किया। ७१ वीं हाइलैंडर्स पलटन के बहुत से अंगरेजों को इन वीरों ने यमलोक भेजा! इस युद्ध में लेफ्टिनेन्ट नीव को इन विरोधी वीरों ने नीचा दिखाया और उनको घायल किया! अन्त में बम्बई की २५ वीं नेटिव इन्फेंट्री के अधिकारी ले० रोज ने अपने पराक्रम से विद्रोहियों को हराया। बलवाइयों की ओर रणभीरु और धोखेबाज आदमी अधिक थे। इसी कारण इस ओर के सच्चे शूर वीर लोगों की वीरता का भी कोई उत्तम परिणाम नहीं निकला! सच्चे योद्धा अपना तेज दिखाते हुये पतन पाते रहे! मुरार में दो घंटे तक यह भयंकर युद्ध होता रहा; अन्त में अंगरेजी सेना की जीत हुई। विद्रोही लोग मुरार की छावनी छोड़ कर भग गये। अंगरेजों ने उसे अपने अधिकार में कर लिया और खूब आनन्द के साथ वहीं अपने डेरे डाले *।

* बलवाइयों की ओर के सेना-धुरंधर सेंधिया सर्कार की फौज के भरोसे पर खूब उछल रहे थे और उनको अपने पराभव का कुछ भी डर न था। परन्तु, कहते हैं कि, अंगरेजी सेना की ओर के धूर्त और युक्तिवान अफसरों ने उनकी इस भ्रान्ति को बड़ी खूबी के साथ दूर किया। सर रॉबर्ट हैमिल्टन और मेजर मैकफर्सन दो पोलिटिकल अफसर सर ह्यू रोज़ की सेना के साथही थे। उन्होंने ग्वालियर की सेना का भीतरी हाल जानकर जयाजी महाराज को आगरे से बुलवा लिया। और माफी का इश्तहार देकर यह प्रगट कर दिया कि सेंधिया सर्कार की तरफ से हम लड़ते हैं! अर्थात् सेंधिया महाराज के अंगरेजों की ओर होने के कारण, बलवाइयों से मिले हुये सेंधिया सरकार के फौजी अफसरों को, अपने मालिक के विरुद्ध लड़ना पसन्द नहीं हुआ! उनके मन में तुरंत ही स्वामिनिष्ठा का मोह उत्पन्न होगया और समराङ्गण में आतेही उनको अर्जुन की तरह:— 'अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्'— यह विचार उत्पन्न हो गया। इसी कारण उन्होंने अपने स्वामी के विरुद्ध लड़ाई करने का विचार छोड़ दिया! अर्थात् उन्होंने शंकित अन्तःकरण से यह विचार किया इसीलिये बलवाइयों की हार होने में कुछ देर नहीं लगी! यह बात विशेष ध्यान में रखने योग्य है। इस स्वामिनिष्ठा (?) के लिए सेंधिया सर्कार के इन सरदारों की कौन तारीफ न करेगा!

जब यह समाचार लश्कर में पहुँचा कि मुरार की छावनी अँगरेजों ने जीत ली तब वहां बड़ा हाहाकार मचा। श्रीमान राव साहब पेशवा एकदम घबड़ा गये और बहुत जल्द अपनी फौज को उत्तेजन देने के लिये बाहर निकले। बांदावाले नवाब भी अपना मिजाज सम्हालकर शहर के मोरचों का बंदोबस्त करने लगे। तात्या टोपे पहलेही से अपने कैंप में जाकर सेना का प्रबन्ध कर रहे थे। उन्होंने जगह जगह तोपों के मोर्चे लगा रखे; घोड़सवारों के रिसाले और पैदल पलटनें यथास्थान विभाजित कर दीं; और बड़ी धूमधाम से लड़ाई की तैयारी करने लगे। उन्होंने महारानी लक्ष्मीबाई से, बड़ी नम्रता से भेटकर के, पहले की तरह युद्ध में सहायता करने के लिये बिनती की; और बड़े अदब के साथ उन्होंने फौज का बन्दोबस्त करने की सलाह ली।

रानी साहब ने फौज की व्यवस्था करने के लिए, पहलेही बहुतसी उत्तम उत्तम सम्मतियां दी थीं; पर पेशवा साहब उस समय पेशवाई की पुनः स्थापना करने के महोत्सव में मग्न थे! उन्होंने कर्म सिद्धि के दुर्लभ समय को क्षणिक ऐश्वर्योपभोग के सामने नाश कर दिया! राव साहब पेशवा की इस आत्मनाशक कृति से रानी साहब को बहुत खेद हुआ। उनके सब मनोर्थ एक प्रकार से कुम्हला गये। परन्तु जब तात्या टोपे ने उदास मन से और दीन वाणी से रानी साहब की प्रार्थना की तब उनका अन्तःकरण भर आया और उन्होंने अभय वाणी से तात्या टोपे से कहा कि आज तक हजारों उपाय रचकर इतना जो परिश्रम किया गया उसका अब कोई फल निकलता हुआ नहीं देख पड़ता! ऐन मौके पर जो सलाह हमने दी वह श्रीमान के दुराग्रह और विजय-रंग के कारण बेकार हो रही है! अंगरेजी सेना सिर पर आगई है तौ भी अपनी सेना का अभी कोई प्रबन्धही नहीं है। ऐसी दशा में, उनसे सामना करके हम लोगों को यश की आशा रखना व्यर्थ है! तथापि ऐसे समय धीरज छोड़ना भी अच्छा नहीं है। आप लोग अपनी फौजें युद्ध के लिए सामने निकालिये; और चारों ओर अपने चतुर सर्दारों द्वारा बन्दोबस्त करके शत्रुओं को रोकिये। मैं अपना कर्तव्य करने के लिए तैयार हूं; आप अपना कर्तव्य करिये; सब ठीक है!!"

रानी साहब के ये वीरोत्साह-प्रेरक वचन सुनतेही तात्या टोपे का तेज भड़क उठा और उन्होंने हर्षपूर्वक रानी साहब के वचन मानें और उनको ग्वालियर की पूर्व ओर की रक्षा का भार सौंपकर वे स्वयं दूसरी फौजों का बन्दोबस्त करने लगे। महारानी लक्ष्मीबाई ने इसे अपना अन्तिम युद्ध समझकर अद्वितीय रणोत्साह से, अपनी फौज की जंगी तैयारी बहुत जल्द शुरू की। * वे अपनी सदैव की फौजी पोशाक धारण करके अपने उमदा और चतुर घोड़े पर सवार हुई। वे अपनी प्राणप्रिय रत्नजटित तलवार म्यान से निकालकर एक युद्धपटु योद्धा के समान अपनी फौज की कवायद लेने लगी। उनका उस समय का वह भव्य स्वरूप, वह गम्भीर स्वर और कट्टर स्वाभिमान देखकर उनके सैनिकों

---

* इस विषय में एक अंगरेज महाशय ने लिखा है:—

"* * * * But little preparation was made for the defence of the fort; and it is probable that both Tantia Tope and the Ranee concurred in resolving to abide by the old Maharatha tactics, and avoid shutting themselves up within walls. Therefore they disposed their forces so as to observe and hold the roads leading upon the city from Indoorkee Seepree, and the north; the necessary arrangements being effected mainly under the direction and personal supervision of the Ranee, who, clad in military attire, and attended by a picked and well-armed escort, was constantly in the saddle, ubiquitous and untiring."—*Letter from Bombay Correspondent. Times, August 3rd, 1858.*

"* * * * किले की रक्षा के लिए कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया गया था। जान पड़ता है कि तात्या टोपे और रानी ने मराठों की पुरानी चाल चलने और किले में अपने को बन्द न कर लेनेही का निश्चय किया था। इस लिये उन्होंने अपनी सेना का ऐसा प्रबन्ध किया था कि इन्दुरखी, सिपरी और उत्तर की ओर से शहर में आने सड़कें रोक ली जावें। युद्ध का मुख्य और आवश्यक प्रबन्ध केवल रानी साहब की आज्ञा और देखभाल से किया गया था। रानी साहब सदा फौजी पोशाक पहनकर और अपने साथ चुने हुये हथियारबन्द सवार लेकर, घोड़े पर सवार हुये सब जगह हाजिर रहती थीं और बड़े परिश्रम के साथ प्रबन्ध किया करती थीं।

के अन्तःकरण वीरश्री से भर गये। और शत्रुओं पर एकदम धावा करके विनाश कर देने के लिये उन्हें आवेश चढ़ आया! उस समय का महारानी लक्ष्मीबाई का महालक्ष्मीके समान प्रखर जाज्वल्यमान स्वरूप और संग्राम-प्रदेश में, प्रतापाग्नि की धूमधारा के समान झलकनेवाली उनकी तलवार की दिव्य चमक, देखकर किसका हृदय न थर्रा उठा होगा?

१४ जून को ब्रिगेडिर स्मिथ, अपनी सेना के साथ, आंतरी नामक मुकाम में आ पहुँचे। वहां मेजर आर से उनकी मुलाकात हुई। इन दोनों वीरों ने सर ह्यू रोज़ के आज्ञानुसार ग्वालियर से आग्नेय ओर पांच मील पर कोटा की सराय नामक गांव में अपनी सेनाएं लाकर वहां से शहर पर हमला करने का निश्चय किया। इन दोनों अंगरेजी वीरों ने बड़ी बारीकी के साथ ग्वालियर की सेना और उसके प्रबंध की देख भाल शुरू की। इधर के मोरचे रानी साहब के अधिकार में थे; उन्होंने बड़ी दृढ़ता के साथ अपनी व्यूह-रचना की थी—उन्होंने आगे के, पहाड़ी ऊंचे नीचे प्रदेश में बड़े बन्दोबस्त के साथ अपनी सेना का क्रम लगाया था। महारानी लक्ष्मीबाई ने अपनी सब सेना के आगे साहसी लोगों का छबीना रखकर, उनके पीछे थोड़े थोड़े अन्तर से, लाल रिसाले के घोड़सवार और पैदल पलटनें बड़ी खूबी के साथ खड़ी की थीं। इसके अतिरिक्त उन्होंने सब मार की जगहें रोक ली थीं और एक ऊंचे स्थल में तोपें भी खूब लगा रखी थीं। इस कारण उनके इस व्यूह को पार करके जाना अंगरेजों के लिये और भी दुःसाध्य हो गया था।

१७ तारीख को ब्रिगेडियर स्मिथ ने लड़ाई का बिगुल बजा कर युद्ध का प्रारम्भ किया। अंग्रेजी सेना के आगे बढ़तेही रानी साहब ने अपने गोलन्दाजों को इशारा देकर तोपों की मार शुरू कर दी। उनकी तोपों की मार शुरू होतेही अंग्रेजी सेना के छक्के छूट गये और सेनानी लोग पीछे हटने लगे। यह देखतेही रानी साहब के कट्टर रणशूर मुसल्मान सवार एकदम आगे दौड़े और बड़ी बहादुरी के साथ युद्ध करने लगे। ब्रिगेडियर स्मिथ ने जब देखा कि अब हमारी सेना मार की जगह में पड़ गई है तब उन्होंने एक चाल यह खेली

कि रानी साहब की सेना के अग्रभाग के वीरों को अपनी ओर भगा कर बीच में मैदान खाली कर लिया; इसके बाद बड़ी चतुरता से उन्होंने कई तरफों को अपनी सेना भेजी और अपने घोड़सवारों के द्वारा रानी साहब के मोरचे तोड़ने का प्रयत्न किया। अंग्रेज घोड़सवार बड़े आवेश के साथ विरुद्ध दल पर हमला करने के लिये निकले! इधर रानी साहब के छबीना के वीर सवारों से उनका सामना हुआ; घनघोर युद्ध शुरू हुआ। दोनों दलों ने अपनी अपनी युद्ध-कुशलता की पराकाष्ठा दिखा दी! महारानी साहब के वीर सवारों ने आवेश में आकर बड़ा भयंकर युद्ध किया; वे अपनी अपनी तलवारें म्यान से खींचकर प्राणों का भय छोड़ कर, विजयश्री पाने की लालसा से, अंगरेज शत्रुओं पर एक दम टूट पड़े। खमाखम तलवारें बजने लगीं। अंगरेज वीर अपने प्राणों से हाथ धो बैठे थे कि इतने में कर्नल रेन्स और कर्नल पेली ६५ वीं पलटन के बे-थके शूर और बम्बई की १० वीं नेटिव इन्फेंट्री आगे निकाल कर, एक दम झोंका देते हुए विरोधियों के पार्श्व भाग पर चढ़ धाये! इधर के वीरों पर चारों ओर मार पड़ने लगीं; इस लिये उनको पीछे हटना पड़ा। अंगरेजों की विलक्षण युक्ति, कावेबाजी और अगणित सेना के आगे थोड़े से सवारों का पराक्रम कहां तक कामयाब होगा?

कर्नल रेन्स और ब्रिगेडियर स्मिथ अपने अपने घोड़सवारों को साथ लिये हुये, शत्रुओं के दल को फोड़ कर, आगे बढ़ जाने का विचार कर रहे थे। इधर महारानी लक्ष्मीबाई ने जब देखा कि हमारी सेना कुछ पीछे हटने लगी है तब वे घोड़े पर सवार होकर तलवार चमकाती हुई अपनी सेना के अग्रभाग की ओर गईं और अपनी आवेशयुक्त वाणी से सैनिक वीरों के अन्तःकरण में उत्साह जागृत करने लगीं। रानी साहब की स्वयंसिद्ध योग्यता, अटल निश्चय और तेजःसामर्थ्य आदि विशिष्ट गुणों की उनके सैनिकों पर ऐसी छाप बैठी कि वे वीर खूब उत्साहित हो, अपने प्राणों को हथेली पर रख, अँगरेजी सेना से तुमुल युद्ध करने के लिए तैयार हो गये। रानी साहब की ओर यद्यपि उत्तम

योद्धों की संख्या बहुत अधिक नहीं थी; परन्तु जितने वीर थे उनमें रणोत्साह का वायु संचार कर गया था। अर्थात् रानी साहब के हाथ में जितना प्रबन्ध था वह बहुत अच्छा था। उधर राव साहब पेशवा, तात्या टोपे तथा दूसरे बड़े बड़े सरदार भी अपनी अपनी फौजें तैयार किये हुए शहर के दूसरे मोर्चों पर जमे हुए थे। उनकी फौजों में विशेष करके सेंधिया सरकार के लोगोंही की अधिक भरती थी। इसलिये बाहर से देखने में तो भारी तैयारी देख पड़ती थी; पर वास्तव में उनकी सेना में अब भी अच्छी व्यवस्था नहीं थी।

१७ तारीख कोही अंगरेज सेनापति हरएक तरफ से ग्वालियर पर चढ़ाई करके उसे जीतने का प्रयत्न करने लगे। कोटे की सराय के पास से, ऊंची नीची जमीन से होकर, जो रास्ता फूलबाग तक गया है उसी राहे से, विरोधी दल को फोड़ते हुए, फूलबाग पर हमला करने के उद्देश से, ब्रिगेडियर स्मिथ ने अपनी जोरदार सेना आगे बढ़ाई। अंगरेजी सेना को आगे बढ़ते देख कर रानी साहब ने तुरंतही अपनी फौज को लड़ने के लिये आज्ञा दी। चारों ओर से रण-वाद्य बजने लगे, आकाश-मंडल बाजों से गूंज उठा। रानी साहब के कट्टर सवार कराल काल के समान रोष में आकर, अपना अनुपम युद्ध-कर्तव्य दिखाने के लिये, अपनी प्रिय स्वामिनी के साथ एकदम आगे बढ़े और अंगरेजी सेना से छाती भिड़ाकर घोरतर युद्ध शुरू किया। महारानी लक्ष्मीबाई के मुख पर इस समय रण-शूरता की अनुपम छटा छा रही थी। उनके नेत्र तेज से देदीप्यमान हो रहे थे। वे शत्रुओं के प्रति क्रोध के आवेश में आकर सैनिकों में अपूर्व उत्साह भर रहीं थीं। सारे दिन वे युद्ध में भिड़ी रहीं और बहुत से अंगरेज वीरों को उन्होंने यमपुरी का मार्ग दिखा दिया। ब्रिगेडियर स्मिथ ने भी बड़ी वीरता से युद्ध किया। दोनों दलों के बहुत से वीर कट कट कर गिरने लगे। चारों ओर रण-गर्जना छा गई। आकाश-मंडल धूल की गुंग से भर गया। उस समय की युद्ध-प्रबलता का वर्णन करना कठिन है। रानी साहब ने, वीरता के साथ, अपनी सेना को उत्साहित करके अंगरेज वीरों को युद्ध में छका दिया। अन्त में बड़े बड़े युद्ध-कुशल अंगरेजी

वीर हताश हो गये। जब उन्होंने देखा कि अब रानी साहब का यह दुर्भेद्य सैन्य-व्यूह फोड़ कर जाना असम्भव है तब वे पीछे लौट पड़े और लाचार होकर उस दिन उन्हें युद्ध बन्द करना पड़ा!

१८ तारीख आई। महारानी साहब की रण-कुशलता देख कर अंगरेज सेनापति वीरों को निराशा के योग से और भी अधिक स्फूर्ति चढ़ आई; वे अपनी सेना की कवायद लेकर दूसरी ओर से ग्वालियर पर चढ़ाई करने के लिए आगे बढ़े। इतने में कर्नल रैन्स साहब का दल भी उन्हें मिल गया। दोनों वीरों ने अपनी अपनी पैदल सेना को बड़ी चतुरता के साथ बीहड़ में छिपा रखने की युक्ति निकाल कर, आठवीं हुजार्स पलटन के घोड़सवारों द्वारा, विरुद्ध दल पर कई तरफों से हमला करने का विचार किया। उन्होंने कर्नल हिक्स और कप्तान हेनेज के समान बड़े बड़े धीर वीरों की मदद लेकर अपने शत्रुओं पर असह्य मार करने की तजवीज की। सारे अंगरेज सेनाधिकारी युद्ध को तैयार होकर, विजय-लालसा से, शत्रुओं को स्वाहा करने के लिये निकले।

इधर रानी साहब भी अपने दल के साथ लड़ाई के लिए तैयार हुईं। उन्होंने अपनी फौजी पोशाक धारण की। सिर में जरीदार चन्देरी-बर्सा, अंग में तमामी अँगरखा, पायों में बढ़िया पायजामा और गले में सुन्दर मोतियों का कंठा पहन कर वह साक्षात् रणलक्ष्मी, अथवा रण-चंडिका, एक देखाऊ सुन्दर घोड़े * पर आरूढ़ हुईं और अपनी कराल करवाल, अर्थात् तेज तलवार, निकालकर उसके दिव्य तेज से अपनी फौज का प्रबन्ध करने लगीं। चारों ओर से अँगरेजी सेनाओं ने, बड़े वेग के साथ, ग्वालियर पर धावा किया। सर ह्यू रोज ने एक तरफ से विद्रोहियों पर हमला किया और दूसरी ओर से ब्रिगेडियर स्मिथ, अपने प्रचण्ड दल के साथ, रानी साहब की सेना पर, कई दिशाओं से, बार

* रानी साहब का पहला घोड़ा दो दिन लगातार युद्ध करने के कारण थक गया था। इस कारण उसे विश्राम के लिये छोड़कर वे सोंधिया सरकार के घोड़साल से यह सुन्दर देखाऊ घोड़ा लाई थीं। वहां के लोग कहते हैं कि यह देखने में तो ऐंठदार था, पर लड़ाई में बिलकुल निरुपयोगी और भद्दा था।

किया। रानी साहब अनुपम आवेश के साथ, अपने वीर सवारों सहित, अँगरेजी दल से लड़ने लगीं। वे अपने कट्टर जवांमर्द घोड़सवार और परम विश्वासू दो चार अपने सेवक साथ लेकर, अँगरेजी सेना पर एकदम टूटही तो पड़ीं। और इधर क्रोध से भरे हुए अँगरेजी हुज़ार्स सेना के सवार भी आगे बढ़े। दोनों दल सम्मुख हुए और घनघोर युद्ध शुरू हुआ। पहले पहल बन्दूकों की भरमार शुरू हुई; क्रोध से भरे हुये दोनों दलों के लड़वैयों ने हद कर दी। रानी साहब विद्युल्लता के समान अपनी सेना में चमकती थीं। उनकी धीरता और शूरता परमावधि को पहुँच चुकी थी। उनके सवार उत्साह से दौड़े; और जी जान होमकर उन्होंने अपनी सिपहगिरी की पराकाष्ठा कर दी। उनके साथ लड़नेवाली अँगरेजी सेना के सरदार भी बड़े बहादुर थे, उन्होंने भी अपना अच्छा पराक्रम दिखाया। वे रानी साहब की सेना पर बड़े वेग से टूट पड़ते और अपनी वार से बहुतसे लोगों को यमपुरी भेज देते थे। परन्तु इससे महारानी ‡ लक्ष्मीबाई

‡ रानी साहब के इस अन्तिम युद्ध का बयान करते हुए G. L. D. नामक एक लेखक ने इस प्रकार लिखा है:—

" She was surprised in her camp near the city of Kotaki-Sarai in Gwalior. When this took place, Ranee Lakshmibai and her sister, who also was a lady of remarkable valour and beauty, were seated together in the camp in male attire and drinking sherbet Immediately the beautiful Ranee went over the field and made a firm stand against the array of Sir Hugh Rose. She led her troops to repeated and fierce attacks, and though her ranks were pierced through and gradually thinner and thinner, the Ranee was seen in the foremost rank, rallying her shattered troops and performing prodigies of valour. But all was of no avail. The camel corps, pushed up by Sir Hugh Rose in person broke her last line. Still the dauntless and heroic Ranee held her own. "—

The National Guardian, December 14, 1891.

इस लेख से जान पड़ता है कि महारानी साहब के साथ उनकी बहन भी थी। परन्तु यह भूल है। उनके साथ में मुन्दर और काशी नाम की दो दासियां थीं। वे दोनों भी बहुत खूबसूरत थीं। महारानी साहब की तरह उन दोनों ने भी मर्दानी पोशाक पहनी थी। उपर्युक्त लेखक ने शायद इन्हींमें से किसीको रानी साहब की बहन मान लिया हो।

का साहस भंग न होकर उलटा और भी दृढ़ हो जाता था और वे स्वाभिमान के तेज से भड़क अपने घोड़सवारों को उत्तेजित करके अपने शत्रुओं पर टूट पड़ती थीं—वे अपना क्षात्र तेज दिखलाकर अपना गौरव कायम रखती थीं। इस प्रकार होते होते दोनों दलों की सेनायें खूब लड़ीं; मनुष्य हताश हो गये; आकाश-मंडल धूल से छा गया; सूर्य भगवान के दर्शन दुर्लभ हो गये। परन्तु विजय-यशश्री किसीके भी वश नहीं हुई!

सर ह्यू रोज साहब ने मुरार की ओर से राव साहब पेशवा की फौज पर चढ़ाई करके उनके दो मोर्चे छीन लिये। यह समाचार जब महारानी की सेना में पहुँचा तब सब लोग घबड़ाये। इस ओर की पैदल सेना के सरदार न जाने किस कारण से एकदम कच्ची खा चुके थे। ये सरदार सेंधिया सरकार की ओर से आकर विरोधियों में मिले थे। उनके घबड़ा जाने पर रानी साहब और उनके सवार, बड़े साहस के साथ बराबर, युद्ध करते रहे। यद्यपि अंगरेजों की असह्य मार के कारण इस ओर के बहुत से शूर घायल होकर गिर पड़े थे तौ भी पीछे की पैदल सेना और तोपखाने की आशा पर रानी साहब को कोई चिन्ता नहीं थी; परन्तु अन्त में वह भी आशातन्तु टूट गया और इस निर्वाण के अवसर पर उन्हें, केवल अपनी पानीदार तलवार को छोड़ कर, दूसरा कोई आश्रय नहीं रहा!

ब्रिगेडियर स्मिथ ने दूसरी ओर से महारानी की पैदल फौज और तोपखाने पर धावा करने के लिये कर्नल हिक्स और कप्तान हेनेज को भेजा। उन्होंने महारानी लक्ष्मीबाई की पैदल फौज और तोपखाने पर बड़ी युक्ति से हमला किया। पर यह कचुवाई हुई फौज अंगरेजी फौज को देखतेही अचानक भाग गई! इस कारण अंगरेजों को अनायासही दो तोपें और बहुतसी युद्ध-सामग्री मिल गई। कुल अंगरेजी सेना इस विजय-उत्साह के आनन्द में आकर महारानी साहब के साथ बड़े जोर से लड़ने लगी।

चारों ओर से अंगरेजी सेना ने विद्रोहियों को घेर लिया और उन पर तोपों और बन्दूकों की मार होने लगी। बलवाइयों के शूर सरदार इस

मार की ओर बिलकुल ध्यान न देकर भी, अपने चार हाथ दिखलातेही थे। पर उनकी सेना का प्रबन्ध किसी काम का न था; वे युद्धविद्या जानतेही न थे। अंगरेजों की भारी मार के सन्मुख उनका टिकाव न होता था; फिर ऐसी फौज के बल पर कोई अपनी शूरता कैसे दिखा सकता है? श्रीमान राव साहब पेशवा के भाग्य में स्वराज्य-सुख नहीं बदा था; फिर ग्वालियर में भी उनके दल को विजय क्यों मिले? अंगरेजी सेना में युद्धकला-चातुर्य्य विशेष था; उनकी युक्ति, पालिसी और कर्त्तव्य निश्चित होने के कारणही सदैव उनकी जीत होती रही। पराक्रम से जो यश नहीं मिलता था उसे वे युक्ति से प्राप्त करते थे। 'उपायेन हि यत्कुर्यात्तन्न शक्यं पराक्रमैः' का नियम पद पद पर उनमें देख पड़ता था; फिर उनके इस गुण का आनन्ददायक परिणाम क्यों न हो? अर्थात् इस बात के कहने की कोई जरूरत नहीं कि युद्ध-शास्त्र की निपुणता के आगे केवल शूरता का तेज कैसे पड़े? चतुरता और कपट के आगे केवल तलवार का प्रभाव क्या पड़ सकता है? और दैव की अनुकूलता के आगे दुर्दैव की क्या चल सकती है? अस्तु।

जब रानी साहब ने देखा कि अपनी मूर्ख फौज, ऐसे संकट के समय में, धीरज छोड़ कर, अथवा और किसी कारण से, भाग गई तब उनका अन्तःकरण दुख से भर गया; और उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि कि इसका परिणाम कुछ अच्छा नहीं होगा। अंगरेजी सेना चारों ओर प्रचण्ड सागर की तरह फैली हुई थी और उनके गोलों की भयंकर भरमार से बलवाइयों की तमाम सेना की दुर्दशा हो रही थी। इन घबड़ाये हुए विद्रोहियों को सत्यानाश करने के लिये अंगरेजी सेना एकदम टूट पड़ती थी। चारों ओर घोर और भयंकर चिल्लाहट मची हुई थी। ऐसी बुरी दशा में महारानी साहब, किसी तूफान में फँसे हुए कर्णधार की तरह, अपने बचे हुए दस बीस सवारों के साथ अंगरेजी सेना के पंजे से छूटने का प्रयत्न कर रहीं थीं; परन्तु दुर्दैव के कारण उनका कुछ वश न चला!

तारीख १८ जून सन १८५८ (जेष्ठ शुक्ल ७ सम्वत १९१४) के दिन सहस्ररश्मि सूर्यनारायण, दोनों दलों के वीरों का अतुल पराक्रम

देख कर, उनको सूर्य-मण्डल भेद कर* स्वर्गद्वार जीतने की आज्ञा देने के लिये खूब प्रज्वलित हो बैठे थे। दोनों दलों के योद्धा लोग प्राणों पर आ-कर अपने पराक्रम की हद दिखा रहे थे। ब्रिगेडियर स्मिथ, कप्तान हेनेज आदि योद्धा, आठवीं हुजार्स पलटन के शूर सिपाहियों के साथ, महारानी साहब के मुकाबले में घोर युद्ध कर रहे थे। महारानी लक्ष्मीबाई की पोशाक मर्दानी होने के कारण, और चारों ओर रणधूल की गुंग छाई रहने के कारण, अंगरेज वीरों ने उनको प्रत्यक्ष पहचान नहीं पाया। इस समय अंगरेजी सेना चारों ओर दल बादल की तरह छाई हुई थी—उसने अब यह प्रतिज्ञा की कि जो सामने पड़ेगा उसीको जीतकर फूलबाग पर अधिकार करना चाहिये। रानी साहब अपनी दो तीन दासियां, एक दो विश्वासू सर-दार और कुछ सवारों के साथ, अंगरेजी दल के घेर से निकलकर दूसरी अपनी प्रबल सेनाओं में मिल जाने का प्रयत्न करने लगीं। परन्तु अंगरेजी पलटन के कट्टर हुजार्स सिपाहियों ने रानी साहब का उद्देश सिद्ध न होने दिया! रानी साहब ने बहुत प्रयत्न किया; पर अंगरेज वीरों से चारों ओर घिर जाने के कारण और अपने दुर्भाग्य से, शत्रुओं के घेर से उनका इस प्रकार निकलना असम्भव हो गया! दोनों दलों के लोग प्राणों का भरोसा छोड़ कर लड़ने लगे और तलवारों की चमक से युद्धस्थल प्रकाशमान होने लगा। अंगरेज वीर अंधाधुंध गोलियां बरसा रहे थे और कितनेही अंगरेज तलवारों से विद्रोहियों का स्वाहा कर रहे थे। महारानी लक्ष्मीबाई ने इस अघोर संग्राम में अपनी शूरता का अद्वितीय प्रभाव दिखाया; उन्होंने भी बड़ी चतुरता के साथ अपनी तलवार के हाथ शत्रुओं पर फेरे; अंगरेज वीर खपाखप कटकर गिरने लगे। अनेक अंगरेज वीरों को उन्होंने अपनी तलवार से कंठस्नान कराया! कुछ अवकाश पातेही अपनी तलवार फेरती हुई, एकदम शत्रु-सेना के घेर से उन्होंने अपना घोड़ा द्रुतगति से बाहर निकाला; इशारा पातेही

*पुराणों में लिखा है कि धरती पर पतन होकर मरनेवाले वीरों को सूर्य-मंडल भेद कर फिर स्वर्ग प्राप्त होता है:—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्य-मंडल भेदिनौ।
परिव्राट् योगयुक्तश्च रणेचाभिमुखे हतः॥

घोड़े ने चौकड़ी भरी। इतनेही में ब्रिगेडियर स्मिथ ने हुजार्स सेना के कुछ चुने हुए सवारों को उनके पीछे चित्ते की तरह छोड़ा। वे अपनी गोलियां चलाते हुए रानी साहब के पीछे दौड़े। चपल गति से जानेवाली तेजस्विनी रानी साहब की, दुर्दैव के कारण, उन सवारों के आगे कुछ न चली। पीछे से रानी साहब के एक गोली लगी; जिससे वे किंचित् शिथिल हो गईं। देखते ही देखते वे सवार रानी साहब के पास पहुँच गये। दोनों दलों के थोड़े से वीरों में एक छोटासा युद्ध मच गया।

तीन दिन तक बराबर तुमुल युद्ध करने के कारण रानी साहब कुछ थक गई थीं; परन्तु उनका स्वाभिमान और रणोत्साह कुछ विलक्षणही था इसी कारण उन्होंने अंगरेजों की इतनी विस्तृत सेना को भी कुछ नहीं समझा। सर ह्यू रोज़ आदि अंगरेज वीरों को रानी साहब की युद्ध-निपुणता अच्छी तरह से मालूम हो गई थी। इतनाही नहीं किन्तु झांसी के प्रबल युद्ध से सब अंगरेज वीरों को उनके पराक्रम का बड़ा भारी कौतूहल हो रहा था; इस लिये ऐसी अलौकिक शौर्यशालिनी स्त्री को पकड़ लेने की इच्छा अनेक अंगरेजों को थी। परन्तु बलवाइयों के इतने बड़े सैन्यसागर में इस दिव्य स्त्रीरत्न का पता लगना दुर्घट था। रानी साहब का अन्तःकरण स्वाभिमान से पूर्ण था; उन्होंने निश्चय कर लिया था कि मृत्यु होने पर भी परधर्मियों के स्पर्श से अपने पवित्र शरीर को कलुषित न होने दूंगी। उन्होंने अपने साथ की पुरुषवेशधारिणी मुन्दर और काशी नामक दो दासियों से, और रामचंद्र-राव तथा रघुनाथसिंह आदि स्वामिभक्त सेवकों से, कह रक्खा था कि 'युद्ध में मैं यदि पतन हो जाऊं तो मेरी देह का ऐसा प्रबंध करना कि जिसमें म्लेच्छों का उसे स्पर्श भी न हो, फिर वे उसकी विडम्बना कैसे करेंगे ? मेरी यह इच्छा जब तुम पूर्ण करोगे तभी तुम सच्चे स्वामिभक्त होगे!' रानी साहब के ये शब्द उपर्युक्त दास दासियों के हृदयपट पर खचित हो गये थे इसी कारण वे सब युद्ध में सदैव उनके साथ छाया की तरह रहते थे। धन्य है ऐसे स्वामिभक्त सेवकों को जो अपनी स्वामिनी के लिये, प्राणों को हथेली पर रक्खे हुए, सदा साथ रहे। इस समय भी ये सब स्वामिभक्त दास दासी अपनी प्रिय स्वामिनी के पीछे पीछे अपने प्राण

निछावर किये हुए घोड़ों पर दौड़ रहे थे। बालक दामोदरराव, रामचन्द्रराव देशमुख के घोड़े पर, बड़े प्रबन्ध के साथ थे।

हुज़ार्स सवार रानी साहब के इस छोटेसे समूह पर भयानक मार कर रहे थे। रानी साहब पर जो सवार वार कर रहा था उसे उन्होंने बड़ी चतुरता से अपनी तलवार का स्वाद चखाया और एकदम अपना घोड़ा आगे बढ़ाया। इतनेही में उनकी दीन दासी मुन्दर करुणस्वर से एकाएक चिल्ला उठी– "बाई साहब! मरी! मरी!! मरी!!!"। ये शब्द रानी साहब के कानों में पड़तेही, उनको इतना दुख हुआ कि मानों उनके हृदय पर किसीने शस्त्रप्रहार कर दिया हो! वे एकदम झोंके के साथ पीछे लौट पड़ीं और अपनी प्रिय दासी को यमपुरी पहुँचानेवाले पाषाणहृदयी अँगरेज वीर को अच्छा बदला दिया–रानी साहब ने उसी दम उसे भी यमपुरी का मार्ग दिखा दिया और एकदम लौट कर फिर आगे की ओर भागने लगीं। वायु फटकर फिर मिले न मिले कि इतनी देर में उनका घोड़ा पीछे के हुज़ार्स सवारों की मार से निकल जाता; पर उनके आगे एक छोटासा नाला पड़ जाने के कारण वह दिखाऊ अड़ियल घोड़ा वहीं अड़ गया! (रानी साहब का खास घोड़ा, दो दिन युद्ध में श्रम करने के कारण, अथवा गोली लगकर बीमार होजाने के कारण, इस समय उनके पास नहीं था; यह घोड़ा सेंधिया सरकार के अस्तबल का था) यह हाल देखतेही रानी साहब घबड़ाईं और उन्हें मालूम हो गया कि अब हमारी इतिश्री हुई। उन्होंने घोड़े को आगे बढ़ाने के लिये, बड़ी चतुरता के साथ, बहुत यत्न किये पर कुछ फल न हुआ– हो कैसे–जान पड़ता है कि उनका दुर्दैव जलप्रवाह के रूप में उन्हें रोक रहा था! महाभरती युद्ध में महारथी कर्ण के रथचक्र जिस प्रकार पृथ्वी में जम गये थे और टलते नहीं थे–वही हाल इस समय महारानी लक्ष्मी-बाई का हुआ।

बारम्बार, घोड़े को पुचकार कर के, उन्होंने नाला पार करने के लिये प्रयत्न किया; पर उस हठी घोड़े ने एक न सुनी–वह विन्ध्याचल की

तरह अचल रहा ! रानी साहब के सब सवार शत्रु-दल की असह्य मार से मारे गये थे; इस समय उनके साथ पांच चार स्वामिनिष्ठ सेवकों को छोड़कर और कोई न था ! ऐसे कठिन अवसर में हुजार्स पलटन के पिछले सवार रानी साहब के इस छोटे से समूह पर एकदम आ टूटे। ऐसा तो हो नहीं सकता कि उन अँगरेज सवारों ने रानी साहब को पहचान कर उन पर हमला किया हो; क्योंकि वे उन्हें सजीव पकड़ना चाहते थे। परन्तु जान पड़ता है कि उन्होंने यह जानकर उन पर तलवार चलाई होगी कि यह बलवाइयों की तरफ का कोई वीर योद्धा है। कोई कोई कहते हैं कि उन हुजार्स वीरों को, रानी साहब का चमकदार मोतियों का बहुमूल्य कंठा देखकर, लोभ आ गया था इसलिए उन्होंने उन पर हमला किया ! * अस्तु किसी इच्छा से भी कहो; पर उन कट्टर भीमकर्मा सवारों ने, ऐसे बुरे मौके में, उस अबला पर एकदम वार किया ! इसमें कुछ भी शंका नहीं ! इस समय रानी साहब की क्या दशा हुई होगी—उसे शब्दों से व्यक्त करना असम्भव है !

वे कट्टर सवार बिजली की तरह रानी साहब पर टूट पड़े। रानी साहब ने इसकी कुछ भी परवा न करके बड़ी चालाकी के साथ अपनी तलवार चारों ओर फेरी और आवेश के साथ अपनी रक्षा के लिए प्रयत्न किया। रानी साहब का धीरज मेरु की तरह अटल था इसी कारण झंझावात की तरह उन अंगरेज सवारों का हमला पहले पहल बेकार हुआ !

---

* एक ग्रन्थकार लिखता है:—

"Flying at length from the field where she had lost what she valued more than Jhansi or the memory of her family, i, e, her revenge, an English dragoon, it is said cut her down, taking her for a sowar and tempted by the necklace over her jacket."

—*Dalhousie's Administration of British India. P. 153.*

बदला लेने का मौका, जिसे वे झांसी या अपने घराने की कीर्ति से भी महत्त्व का समझती थीं, हाथ से छूट जाने पर जब वे रणभूमि से भाग रही थीं तब, कहते हैं कि, एक अँगरेज सवार ने मोतियों के कंठे के लालच से उन्हें मार डाला।

" न पादपोन्मूलन शक्ति रंह: शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य "
इस कविकुलगुरु की उक्ति के अनुसार जिस तरह हवा में बड़े बड़े वृक्षों के उखाड़ डालने की शक्ति चाहे भलेही हो; पर पर्वत पर उसका कुछ वश नहीं चलता उसी प्रकार अंगरेज सवार प्रबल जरूर थे, परन्तु रानी साहब के तेजस्वी स्वरूप के आगे उनकी प्रबलता उस समय व्यर्थ गई ! अंगरेजी सवारों के टूट पड़तेही रानी साहब ने, अपने अतुल खड्ग-प्रताप से, उनके संहार करने का प्रयत्न किया और अपने अलौकिक रण-चातुर्य से उन्हें चकित कर दिया ! परन्तु वे जोशीले सवार बड़े बहादुर थे। इस कारण वे रानी साहब की मार से बच गये। परन्तु इस पुरुष वेशधारी प्रबल स्त्री योद्धा का अपार धैर्य देखकर उन्हें और भी अधिक त्वेष चढ़ आया और उन्होंने बड़ी सिताबी से अपनी तलवार का जोरदार हाथ रानी साहब के सिर पर चलाया ! इस वार को रोकने के लिए महारानी लक्ष्मीबाई ने बड़ी चपलता से अपनी तलवार आगे चमकाई और उस चोट को बचाया ! उस समय विद्युल्लता के समान दिव्य ज्योति की छटा छा गई। इधर रानी साहब अपने कुछ सेवकों के साथ अकेले और उधर जंगी हुज़ारस कट्टर सवार ! दोनों ओर से खमाखम तलवार बजी। रानी साहब ने इस समय भी कई योद्धाओं को घायल किया ! उन्होंने अपने पराक्रम की हद कर दी ! और अन्त में "अबला सो अबला" सिद्ध होने का समय आ पहुँचा !! एक जवांमर्द सवार ने रानी साहब के खड्ग-प्रभाव की कुछ भी परवा न करते हुये, मौका पाकर, शीघ्रता के साथ, उनके मस्तक पर पीछे की ओर से वार किया ! जाल में फँसे हुए सिंह के बच्चे पर मतवाला हाथी जैसे शुंड-प्रहार करे वैसाही हाल हुआ ! इस प्रखर वार से रानी साहब के सिर का कुल दाहिना हिस्सा विच्छिन्न हो गया और उनका एक नेत्र बाहर आ गया ! इतनेही में एक सवार ने रानी साहब की छाती में किर्च हूल दी ! इस प्रकार रानी साहब के शरीर पर कई बड़े बड़े घाव हो गये और

उनकी दशा बहुत खराब हो गई *! ऐसी दशा में क्या कोई वीर शत्रु से पूरा पूरा बदला लेने के लिए समर्थ हो सकता है? कदापि नहीं! इतना होने पर भी अपना अलौकिक अन्तिम युद्ध-चातुर्य्य प्रगट करके रानी साहब ने अपना वध करने की इच्छा रखनेवाले को—उस शूर अंगरेज योद्धा को—तत्क्षण उचित प्रायश्चित्त दिया-अर्थात् उसी समय उन्होंने अपनी रक्त-प्यासी तलवार से उसे बलि दे दिया और अपना क्षत्रिय धर्म पूर्ण रीति

* "Among the fugitives in the rebel ranks was the resolute woman, who alike in council and in the field, was the soul of the conspirators. Clad in the attire of a man and mounted on horse-back, the Ranee of Jhansi might have been seen animating her troops throughout the day. When inch by inch the British troops pressed through the defile, and when reaching its summit Smith ordered the Hussars to charge, the Ranee of Jhansi boldly fronted the British horsemen. When her comrades failed her, her horse, in spite of her efforts, carried her along with the others. With them she might have escaped, but that her horse, crossing the canal near the cantonment, stumbled and fell. A hussar close upon her track, ignorant of her sex and her rank, cut her down. She fell to rise no more. That night her devoted followers determined that the English should not boast that they had captured her even dead, burned the body."

—*History of the Indian Mutiny.*

इसका भावार्थ यह है:—बलवाइयों की सेना से जो लोग भाग गये थे उनमें एक अत्यन्त धैर्यशीला स्त्री थीं। वह युद्ध करने और सलाह देने में बलवाइयों की मुख्य आत्मा थीं। मर्दानी पोशाक पहने घोड़े पर सवार झांसी की रानी अपने सेना को उत्साहित करती हुई देख पड़ती थीं। जब एक एक इंच अँगरेजी सेना जोर से आगे बढ़ रही थी और जब स्मिथ साहब ने अपने हुजार्स सवारों को फैर करने की आज्ञा दी तब झांसी की रानी ने बड़ी बहादुरी और हिम्मत के साथ उनका सामना किया। जब रानी के साथी साथ छोड़ कर भाग गये तब उनका घोड़ा उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें ले गया। उन लोगों के साथ भाग कर रानी भी बच सकती थीं; परन्तु जब उनका घोड़ा कन्टून्मेन्ट के पास नाला पार कर रहा था तब वह ठोकर खाकर गिर पड़ा। ठीक उसी समय एक अँगरेज घोड़सवार ने, जो रानी का पीछा करते हुए चला आ रहा था, उन्हें मार डाला। साथियोंने उनका शरीर उसी रात को अग्नि में भस्म कर दिया जिससे अँगरेज लोग इस बात का घमंड न करने पावें कि उन्होंने झांसी की रानी के मृत शरीरही को छू लिया।

से सार्थक किया! धन्य है वह शूरता और धन्य है वह साहस!! *

महारानी लक्ष्मीबाई ने इस प्रकार अपना पराक्रम दिखलाया; परन्तु उनके शरीर में जो घाव हो गये थे उनसे उनकी शक्ति एकदम चली गई और उन्हें मालूम हो गया कि अब उनका अन्तकाल नजदीक आ गया। †

---

* मि० मैकफर्सन लिखते हैं:—

"She was seated, drinking sherbet, 400 of the 5th Irregulars near her, when the alarm was given that the Hussars approached, forty or fifty of them came up, and the rebels fled save about fifteen. The Ranee's horse refused to leap a canal, when she received a shot in the side, and then sabrecut on the head but rode off. She soon after fell dead, and was burnt in a garden close by."

—*Memorials of Service in India. P. 335.*

इसका भावार्थ यह है:—झांसी की रानी अपने डेरे में बैठे शरबत पी रही थीं। उनके साथ चार सौ सिपाही भी थे। उस समय यह सूचना दी गई कि अँगरेज सवार निकट आ पहुँचे। विद्रोही वहां से भगने लगे। महारानी का घोड़ा नाला न पार कर सका। उसी समय उनके शरीर में एक गोली लगी और सिर में तलवार का घाव भी लगा। परन्तु वे वैसीही चली गईं। अन्त में वे घोड़े पर से गिर कर मर गईं और उनका शरीर समीपही के एक बाग में भस्म कर दिया गया।

† रानी साहब की मृत्यु का हाल उत्तर हिन्दुस्थान के लोग कई तरह से बतलाते हैं। पर उन्हें काल्पनिक दंतकथाओं के सिवाय अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता। कोई कोई कहते हैं कि रानी साहब ने जब देखा कि अपना अन्त नहीं होता तब वे घास के किसी ढेर में कूद पड़ीं और छतली के तोड़ से उसे जलाकर वे उसीमें मर गईं। कुछ लोग कहते हैं कि वे लड़ाई में मरीं। कोई कहते हैं कि जब उन्होंने अपने मारनेवाले शत्रु का बदला ले कर उसे मारा तब इसी गड़बड़ में उनका भी अन्त हुआ! सारांश यह कि अनेक लोग अनेक तरह की आख्यायिकायें बतलाते हैं। परन्तु इन बातों का कोई प्रमाण नहीं। अनेक प्रमाणों से तो यही बात सिद्ध होती है कि जख्मी होने पर उनके सेवकों ने, बड़ी होशियारी के साथ, उनके आज्ञानुसार सब प्रबन्ध किया है। कोई कोई यह भी कहते हैं कि उनके मरने पर सब प्रबन्ध राव साहब पेशवा ने किया है; पर यह बात तो बिलकुल विश्वास-योग्य नहीं है; क्योंकि उस समय राव साहब पेशवा उनके पासही न थे! खुद दामोदरराव अपने अनुभव से, और रामचन्द्रराव के बतलाने पर, जो कुछ बतलाते हैं वही सब से अधिक विश्वसनीय है। अब एक यह बड़ा प्रश्न पैदा होता है कि उस गड़बड़ में, और वैसी आपत्ति के समय, रानी साहब का यह प्रबन्ध करने का मौका उन लोगों को कैसे मिला? पर इसके समाधान

जब उन्होंने देखा कि अब यदि हम यहां से शीघ्र निकल न चलेंगी तो युद्ध-स्थलही में हमारा देहपात हो जायगा और म्लेच्छ लोग इसका स्पर्श करेंगे तब तुरन्तही उन्होंने अपने परम विश्वासू सरदार रामचन्द्रराव देशमुख को इशारा दिया ! रामचन्द्रराव बड़े स्वामि-भक्त थे। रानी साहब की ऐसी बुरी दशा देखकर उनका हृदय पिघल गया; वे गद्गद् कंठ होकर आँसू बहाने लगे। भयंकर जख्मों के कारण रानी साहब को बहुत विकल

के लिए बहुतसी बातों का आधार मिलता है। अव्वल तो रानी साहब की फौजी और मर्दानी पोशाक होने के कारण अंगरेज लोगों को उनका पताही नहीं चला। इस कारण, इच्छा रखने पर भी, वे रानी साहब को पकड़ नहीं सके। रानी साहब ने अन्त में जब दो तीन सिपाहियों को मारा तब शायद बाकी सवार डर कर पीछे लौट गये; जान पड़ता है कि इसी बीच में रानी साहब और रामचन्द्रराव से बातचीत हुई और यह प्रबन्ध हुआ। एक अंगरेजी ग्रन्थकार ने इनकी मृत्यु का हाल लिखते हुए इनको फ्रांस देश की जान आफ आर्क नामक शूर स्त्री की उपमा दी है; उसने तो यहां तक लिखा है कि जख्मी होने के बाद रानी साहब ने अपने लोगों को जवाहिर आदि रत्न बाँटे हैं ! यह ग्रन्थकार लिखता है:—

"This Indian Joan of Arc was dressed in a red jacket and trousers and white turban. She wore a Scindia's celebrated pearl necklace which she had taken from his treasury. As she lay mortally wounded in her tent, she ordered those ornaments to be distributed among her troops. The whole rebel army mourned her loss." —*Clyde and Strathnairn.*

रानी साहब के जखमी होने की खबर अंगरेजों को बिलकुल नहीं मिली ! इस कारण रानी साहब की अन्त्यक्रिया उनके सेवकों ने खूब प्रबन्ध के साथ की। इस बात का एक और भी सबूत एक अंगरेजी ग्रन्थ से मिलता है। मि० मार्टिन लिखते हैं:—

"No English eye marked her fall. The Hussars, unconscious of the advantage they had gained, and scarcely able to sit on their saddles from heat and fatigue were, for the moment, incapable of further exertions, and retired, supported by a timely reinforcement. Then, it is said, the remnant of the faithful body-guard (many of whom had perished at Jhansi)

देखकर वे उन्हें संग्राम-भूमि के पासही एक पर्णकुटी में ले आये। यह कुटी गंगादास बाबा की थी। वहां जातेही रानी साहब को बहुत प्यास लगी। उनको गंगाजल पान कराया गया! इस समय उनका शरीर रक्त से बिलकुल लाल हो गया था; घावों की वेदना बहुत हो रही थी; पर तो भी उनके मुख पर एक प्रकार की अलौकिक वीरश्री खेल रही थी।

---

gathered around the lifeless forms of the Ranee and her sister, who dressed in male attire, and riding at the head of their squadrons, had fallen together, killed either by part of a shell, or as is more probable by balls from the revolvers with which the Hussars were armed. A funeral pyre was raised and the remains of the two young and beautiful women were burnt, according to the custom of the Hindus."—*British India. P. 489.*

इसका भावर्थ यह है:—किसी अंगरेज ने उन्हें मरते नहीं देखा। अंगरेज घोड़सवार यह बात न जानते थे कि वे किसका पीछा कर रहे हैं। वे थकावट और कड़ी धूप के कारण घोड़े पर बहुत देर तक बैठ भी न सकते थे। इस लिये वे अधिक परिश्रम न कर के लौट गये। उस समय रानी के विश्वासपात्र सेवकों ने उनके और उनकी बहन के मृत शरीर को चिता लगाकर भस्म किया। उनकी बहन भी मर्दानी पोशाक पहन कर उनके साथ लड़ रही थी। और उन्हींके साथ गोली लगने से मर गई।

परन्तु इस बयान में दो गलतियां है। अव्वल तो इसमें कहा गया है कि रानी साहब के साथ उनकी बहन थी सो गलत है। वह वास्तव में उनकी बहन न थी, दासी थी। दूसरे इसमें लिखा है कि रानी साहब गोली लगकर मरी हैं—सो भी ठीक नहीं है! क्योंकि उपर्युक्त बयान बलवे के समय, अर्थात् १८५८ के साल में, प्रगट हुई बातों के आधार पर लिखा गया है, इस लिये बहुत सम्भव है कि यह समझ गलत हो। रानी साहब बन्दूक की गोली से नहीं मरीं; किन्तु घोड़े के धोका दे देने से घायल हुई हैं। इस बात के बहुत से सबूत पाये गये हैं। इसके सिवाय उपर्युक्त बयान लिखनेवाले ग्रन्थकारही ने, रानी साहब की मृत्यु के समय हाजिर रहनेवाले एक आदमी के कथनानुसार, यह टिप्पणी दी है।—

" When the Hussars surprised the camp, the ladies were seated together, drinking sherbet. They mounted and fled. But the horse of the Ranee refused to leap a canal, and she

रानी साहब ने अपने प्राणप्रिय पुत्र दामोदरराव की ओर वात्सल्य भाव से देखकर अपने नेत्र शीतल किये और अन्त में उनको जगत्पालक ईश्वर को सौंप कर स्वयं परलोक का मार्ग स्वीकार किया! जेष्ठ शुक्ल ७

---

received a shot in the side and sabrecut on the head; but still rode till she fell dead from her saddle, and was surrounded and burnt."

इसका भावार्थ यह है:—जिस समय अंगरेज घोड़सवारों ने डेरे पर हमला किया उस समय स्त्रियां बैठे शरबत पी रहीं थी। वे घोड़े पर बैठ कर भाग गईं। रानी का घोड़ा नाला पार न कर सका तब उनके शरीर में एक गोली और सिर पर तलवार का घाव लगा। तौ भी वे भागती चली गईं। अन्त में घोड़े से गिरकर मर गईं। उनके साथियों ने उनके शरीर को दहन कर दिया।

इसमें गोली लगकर मरना आदि लिखा है; परन्तु इस बात में सन्देह है। कुछ भी हो, किसी प्रकार से भी मरी हों; पर उनके मरने की खबर बहुत समय तक अंगरेजों को नहीं मिली। इस बात का एक और भी सबूत सिल्वेस्टर साहब के लिखने से मिलता है। उन्होंने रानी साहब की मृत्यु का हाल लिखते हुए कहा है:—

"Memorable too for another reason is this affair: the gallant Queen of Jhansi fell from a carbine wound, and was carried to the rear, where she expired and was burnt according to the custom of Hindoos. Thus the brave woman cemented with her blood the cause she espoused. It is as well it was so, and that, she did not servive to share the ignominious fate of Tantia Topee. The fact of her death was not known to us for some days, as she was attired as a cavalry soldier. Even the report was received with doubt until Sir Robert Hamilton established it irrefragably."—*The Campaign in Central India. P.* 183.

इसका भावार्थ यह है:—यह प्रसंग और भी एक कारण से स्मरण करने योग्य है, झांसी की रणशूर रानी कटार के घाव से गिर पड़ीं। उनके साथी उनको उठाकर ले गये। प्राण छूट जाने पर हिन्दू धर्म के अनुसार उन्होंने उनके मृत शरीर को दहन कर दिया। इस प्रकार इस शूर स्त्री ने मृत्यु पर्यन्त अपने पक्ष की सेवा की। यह बहुत अच्छा हुआ कि उनकी मृत्यु हो गई और तात्या टोपे के समान दुर्दशा और अपकीर्ति कराने के लिए वे इस संसार में न रहीं। उनकी मृत्यु का समाचार हमें कुछ दिनों तक मालूम ही न हुआ।

इन सब प्रमाणों से इतना तो जरूर सिद्ध होता है कि रानी साहब के तेहदार हेतु के अनुसार उनके स्वामिभक्त सेवकों ने अपना कर्तव्य सोला आना पूरा किया। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि उन्होंने अपनी स्वामिनी के पवित्र देह का म्लेच्छों से स्पर्श नहीं होने दिया और उनका अन्त्यसंस्कार विधिपूर्वक किया।

सम्वत् १६१४ को ग्वालियर के पास, समरांगण के बीच में, हिन्दुस्थान की अद्वितीय शौर्यगुणमंडित दिव्य स्त्रीरत्न झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई, इस लोक को त्याग कर अक्षय सुख पाने के लिए, स्वर्ग लोक को पधार गईं !!

रानी साहब का देहान्त होने के बाद रामचन्द्रराव देशमुख ने, अपनी स्वामिनी के आज्ञानुसार, अपना कर्तव्य अच्छी तरह से पूर्ण किया। उन्होंने बड़ी शीघ्रता और चतुरता के साथ, पास के एक घास के गंज से घास लेकर चिता तैयार की और उस पर रानी साहब का प्राणरहित पवित्र देह रखकर अग्नि-संस्कार कर दिया ! क्षण भरही में अग्नि की ज्वाला प्रदीप्त हुई और उसने महारानी लक्ष्मीबाई के सुकुमार शरीर को भक्षण कर लिया !! इस प्रकार उस अलौकिक पराक्रमी राजस्त्री ने, अपने क्षत्रियकुल के गौरव की अच्छे प्रकार रक्षा करके, अपना कृतसंकल्प पूरा किया !!



आठवां अध्याय

उपसंहार।

महा रानी लक्ष्मीबाई की मृत्यु हो जानेही से श्रीमान् राव साहब पेशवा आदि विद्रोहियों का ह्रास शुरू हुआ। रानी साहब की मृत्यु का हाल सुनतेही राव साहब पेशवा और तात्या टोपे को बहुत दुःख हुआ; वे बहुत घबड़ाये और उन्हें मालूम हुआ कि अपना दाहना हाथ गिर पड़ा! रानी साहब के समान तेजस्वी और पराक्रमी रत्न दुष्ट काल ने हरण कर लिया; इस कारण उन दोनों राजसी पुरुषों के रणोत्साह पर कालिमा लग गई; उनकी तीक्ष्ण बुद्धि मन्द पड़ गई और भागने के सिवाय उन्हें दूसरा और कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा! ठीक है। सच्चे सहायक के न रहने पर ऐसी दशा हो जाना कोई अचरज की बात नहीं। श्रीमान राव साहब पेशवा और तात्या टोपे, अंगरेजी सेना के पराक्रम और अपनी गाफिल सेना के धोखे से, हताश हो गये थे और इधर, सेंधिया सरकार के फौजी सर्दार जो बलवाइयों में आ मिले थे वे ऐन मौके पर स्वामिभक्ति दिखाने के लिए तैयार हो गये थे। इस कारण सर ह्यू रोज आदि अंगरेज सेनापतियों को ग्वालियर जीतने में कुछ बहुत समय नहीं लगा! रानी साहब के समान युद्ध-कुशल वीर समरांगण में पतन होतेही बलवाइयों की कुल सेना में उदासी छा गई। अंगरेजों की भयंकर मार के सामने उनके टिकाव की कोई आशा न रही। सब सेना इधर उधर भगने लगी! अंगरेज सेनापतियों को और भी आवेश चढ़ आया। उन्होंने लश्कर राजधानी पर बड़े बेग से हमला किया! सर ह्यू रोज ने

प्रण कर लिया था कि "सूर्य अस्त होने के पहलेही सेंधिया सर्कार की राजधानी जीत लूंगा"। इसी प्रतिज्ञा के अनुसार उन्होंने सायंकाल तक बाकी बचे हुए बलवाइयों से खूब युद्ध कर के विजय पाया और विद्रोहियों के क्षणिक यश का सत्यानाश कर के उनको भगा दिया।

१६ तारीख को सर ह्यू रोज़, सर रॉबर्ट हेमिल्टन और मेजर मैकफर्सन आदि विजयी योद्धों ने सेंधिया सर्कार की राजधानी लश्कर में प्रवेश किया और अपने परम विश्वासू दोस्त महाराज जयाजीराव सेंधिया को गद्दी पर बैठाने का, विजय-उत्साह के साथ, समारम्भ किया। ग्वालियर जीतने का हाल सुनकर लार्ड केनिंग ने बहुत हर्ष प्रगट किया। उन्होंने महाराज जयाजीराव को राज्यारूढ़ करने के लिए प्रसन्न चित्त से आज्ञा दी। लार्ड साहब ने चारों ओर अपने तेजस्वी राज-सूर्य का प्रकाश व्यक्त करने के लिए, और धन्यवाद पाने के लिए, तमाम हिन्दुस्थान में इस आनन्द-समाचार के तार दौड़ाये। इतनाही नहीं किन्तु उन्होंने कलकत्ते से एक ऐसा हुक्मनामा निकाला कि हिन्दुस्थान के प्रत्येक शहर में सेंधिया सर्कार का सम्मान करने के लिए तोपों की सलामी दी जाय। सेंधिया सर्कार की राजधानी लश्कर में खूब रोशनी हुई, सैकड़ों भोज दिये गये और अनेकों जलसे और दरबार हुए। श्रीमान जयाजीराव ने सर ह्यू रोज़ आदि सेनाधिकारियों को अपने फूलबागवाले महल में जंगी भोज दिये और उनका बड़ा गौरव किया! अंगरेजी वीरों की क्या पूछना है—उन्होंने भी खूब आनन्द मनाया!

श्रीमान राव साहब पेशवा और तात्या टोपे आदि विद्रोहियों ने कुछ दिनों तक अंगरेजी सेना को बहुत तंग किया। परन्तु तैलरहित दीपक जिस प्रकार निमिष मात्र के लिए प्रज्वलित होकर बुझ जाता है उसी प्रकार उनके सब प्रयत्नों का अन्त होगया! ग्वालियर से भगने के बाद श्रीमान राव साहब पेशवा, तात्या टोपे, और बांदावाले नवाब से जनरल नेपियर ने जो युद्ध जावरा अलीपुर में किया उसमें उन्होंने बलवाइयों के इन तीन अगुओं को बहुत हैरान किया। तब से ये लोग भगतेही रहे; इन्हें

एक दिन भी सुख नहीं रहा ! बांदावाले नवाब जल्द अँगरेजी सरकार की शरण में आये और उसका अभय-वरदान पाकर अपने प्राण बचाये ! परन्तु श्री मान राव साहब पेशवा और तात्या टोपे * ने बहुत दिनों तक,

---

* रसेल नामक 'लंडन टाइम्स' के सुप्रसिद्ध सम्वाददाता ने तात्या टोपे के विषय में, ता० ४ दिसम्बर सन १८५८ को, जो कुछ लिखा है उसके पढ़ने से सिद्ध होता है कि उस अलौकिक पुरुष के अद्भुत कृत्यों से परदेशी लोग तक बिलकुल थक हो गये थे। रसेल साहब ने तात्या टोपे के बारे में जो सुन्दर वर्णन किया है वह १७ जनवरी १८५९ के "लंडन टाइम्स" में छपा है; वह वर्णन अलभ्य और महत्त्व का है, इस लिये उसे हम यहां देते हैं:—

"Our very remarkable friend, Tantia Topee, is too troublesome and clever an enemy to be admired. Since last June he has kept Central India in a fervor. He has sacked stations, plundered treasuries, emptied arsenals, collected armies, lost them; taken guns from native princes, lost them; taken more lost them! Then his motions have been like forked lightning; for weeks he has marched thirty and forty miles a day. He has crossed the Narbada to and fro; he has marched between our columns, behind them and before them. Ariel was not more subtle aided by the best stage mechanism Up mountains, over rivers, through ravines and valleys, amid swamps, on he goes, backwards and forwards, and side ways and zi gzag ways now falling upon a post-cart, and carrying off the Bombay mails, now looting a village, headed and burned, yet evasive as Proteus."

इसका भावार्थ है कि, "हमारे सुप्रसिद्ध मित्र तात्या टोपे एक ऐसे शत्रु हैं कि जिनकी चतुरता और पीड़ा देने की अद्भुत शक्ति की प्रशंसा हम नहीं करे सकते। आपने गत जून महीने से मध्यभारत की एक अत्यन्त भयानक दशा बना रखी है। आपने बड़े बड़े शहर खजाने, बारूदखाने लूटे हैं, बहुत बड़ी सेना एकत्र की है और सब कुछ खो बैठे हैं; भयानक युद्ध किया और हार गये। हिन्दुस्थानी राजकुमारों से तोपें और बन्दूकें लीं और उन्हें खो दिया ! उनकी चाल बिजली के समान चपल है। एक दिन में ३०।४० मील की दौड़ लगाते हैं; वे कोई बार नर्मदा नदी के पार हुए हैं। हमारी सेना के बीच से, आगे और पीछे से, वे कई बार आये गये हैं। एरियल (शेक्सपियर के टेम्पेस्ट नामक नाटक में पिशाचरूपी एक पात्र) की चपलता भी इनके सामने कोई चीज नहीं। पहाड़ों के ऊपर, नदियों के पार, घाटियों और खोहों के भीतर वे बेधड़क चले जाते हैं; कभी आगे बढ़ते हैं; कभी पीछे हटते हैं; कभी इस ओर; कभी उस ओर; कभी बम्बई जानेवाली डाक गाड़ी को लूट लेते कभी गावँका गावँ लूटकर और जलाकर उजाड़ देते तो भी पीछा करने पर कभी पकड़े नहीं जाते।"

अंगरेजी फौज की चपलता परखने के लिए, अथवा यह कहिये कि अपनी भागने की अद्भुत चतुरता संसार में प्रसिद्ध करने के लिए, अंगरेजों की ओर के जनरल नेपियर, रॉबर्ट्स्, मिचोल, ब्रिगेडियर पार्क, समरसेट, वोम्प्र होनर, मीड, बेचर, और सदरलैंड आदि अनेक सेनानायकों को वर्ष डेढ़ वर्ष हैरान करके उनसे "तोब तोबा" बुलवा लेने में किसी प्रकार की कसर नहीं की! उन्होंने कुल हिन्दुस्थान में एक प्रकार का गड़बड़ मचा दिया; अनेक राजाओं को भयचकित कर डाला; बड़े बड़े अभिमानी सेनापतियों को नाच नचाया; सिंह के समान पीछा करनेवाले चपल वीरों को नजरबन्द कर दिया; क्षण क्षण में प्रगट और गुप्त होनेवाले पिशाच की तरह लीला रचकर बड़े बड़े योद्धाओं को लाचार कर दिया; और कुछ दिन तक अपने अघटित और विचित्र कृत्यों से सम्पूर्ण संसार को थक्क करके छोड़ा; परन्तु अन्त में उन दोनों की भी शोचनीय दशा हुई! ग्वालियर में स्वराज्य की पुनःस्थापना करनेवाले श्रीमान राव साहब पेशवा को जब कोई सहाय न रहा तब वे यतिरूप धारण करके पंजाब के वन में, अपनी दुर्दैव की अतर्क्य लीला का चमत्कार देखते हुये, आयु व्यतीत करने लगे। परन्तु सन् १८६२ में पकड़कर वे कानपूर लाये गये और ता० २० अगस्त को ब्रह्मावर्त (बिठूर) में उन्हें फांसी दी गई!! उनके सेनापति तात्या टोपे को अपने यशस्वी प्रभु का यह दुखकारक अन्त देखने या सुनने का मौका नहीं आया; क्योंकि अपने स्वामी की मृत्यु के पहलेही, ७ अप्रैल १८५९ को, राजपुताना के एक जंगल में वे पकड़ लिये गये थे। मेजर मीड नामक एक अंगरेज अफसर ने, सोते वक्त, राजा मानसिंह नामक तात्या टोपे के एक मित्र को वश में करके उसके द्वारा, उन्हें पकड़ा! और उसी महीने की १८ तारीख को सिप्री में उन्हें फांसी दी गई! इस अलौकिक पुरुष ने मरते समय, शान्त चित्त से, केवल इतनाही कहा कि "मैने जो कुछ किया वह सब श्रीमान पेशवा की आज्ञा से किया है। उसमें बुरा कुछ भी नहीं किया। इस लिए मुझे शीघ्रही परलोक भेजो"!

सन १८५७ में, अनेक राजनैतिक कारणों से, हिन्दुस्थान में अराजनिष्ठा के जो भयंकर बादल उठे थे वे, उस समय के अंगरेज वीरों

और राजनीतिज्ञों के पराक्रम और चतुराई से, बहुत जल्द नाश होगये। लार्ड केनिंग के समान चतुर राजनीतिज्ञ और सर ह्यू रोज़ के समान वीर पराक्रमी पुरुषों ने उस समय अंगरेज़ी राजसत्ता की, बड़ी युक्ति के साथ, रक्षा की। कुछ अंगरेज लोगों ने उस समय अपना स्वदेशाभिमान और अलौकिक चतुरता दिखाई। यह उनके लिये गौरव की बात है और दूसरों के लिये उनके ये गुण अनुकरणीय हैं। सब से अधिक राजनैतिक महत्व की बात जो उस समय अंगरेजी सर्कार ने की वह हिन्दुस्थान की प्रजा में परस्पर प्रेम-बन्धन है।

१ नवम्बर सन् १८५८ ई० को, महारानी विक्टोरिया की आज्ञा से, लार्ड केनिंग ने जो घोषणापत्र जारी किया उसीको हिन्दुस्थान में बृटिश सर्कार की अद्वितीय कृपा का पूर्ण प्रसाद समझना चहिये। इस घोषणापत्र में महारानी साहब ने अनेक वचन दिये हैं। उन वचनों से यह जरूर मालूम होता है कि महारानी विक्टोरिया हिन्दुस्थान को कितना चाहती थीं। वैसे भयंकर समय में इस घोषणापत्र ने बहुत काम किया! अर्थात् ब्रिटिश सर्कार के विरुद्ध प्रजाजनों के मन जो उस समय बिगड़ रहे थे वे इस घोषणापत्र के निकलने पर शान्त हो गये और अंगरेजी राज्य पर लोगों का विश्वास दृढ़ होगया।

इस घोषणापत्र के बाद लार्ड केनिंग साहब ने खुद कानपुर, आगरा, मेरठ, दिल्ली, लखनऊ, अम्बाला और जबलपुर आदि शहरों में जा जा कर बड़े बड़े दरबार किये। और लार्ड डलहौसी साहब की राजनीति से डरे हुए सब राजा महाराजा लोगों को अभय-वरदान दिया। ऐसे संकट के समय में, जिन्होंने सर्कार को मदद दी थी उन सब को, लार्ड केनिंग साहब ने मन से धन्यवाद दिया और चारों ओर शान्ति स्थापित करके, प्रजा के मन में ब्रिटिश सर्कार का प्रेम उत्पन्न किया।

सन् १८५७ के बलवे का एक और परिणाम हुआ। वह यह कि, सर्कार को देशी राजाओं की ईमानदारी और ब्रिटिश-

सत्ता-विषयक प्रेम का अच्छा अनुभव हो गया—सर्कार को इस बात का पूरा विश्वास हो गया कि संकट के समय में वे उसकी कैसी सहायता करते हैं। इससे सर्कार को बड़ी दया हो आई और उसने इन संस्थानिकों को दत्तक लेने का पूर्ण अधिकार देने का विचार किया। सब लोग यह अच्छी तरह समझ गये कि निजाम, सेंधिया, होलकर और पंजाब के सिख राजाओं की मदद के कारणही इस भयंकर प्रलय का जोर अधिक नहीं हुआ। इंगलेण्ड के मौंट स्टुअर्ट एल्फिन्स्टन के समान अनुभवी और चतुर राजनीतिज्ञ ने, दृढ़ता के साथ, कबूल किया है कि "यदि सेंधिया, निजाम और सिख सर्दारों की रियासतें अंगरेजी राज्य में मिला ली गई होतीं तो ब्रिटिश-राज-सत्ता को कहीं भी ठिकाना न था"*। इस प्रकार जब यह सिद्ध होगया कि इस देश की रियासतें कायम रखकर कुल प्रजा को सन्तुष्ट रखनाही अंगरेजी राज के दृढ़ रखने का एक मात्र उपाय है तब अंगरेजी सर्कार ने, बड़ी उदारता से, हिन्दुस्थान के सब संस्थानिकों को दत्तक लेने की आज्ञा दी†। इससे उन

* एल्फिन्स्टन साहब ने २० दिसम्बर सन १८५७ को सर एडवर्ड कोलब्रुक को एक पत्र लिखा है। उसमें उन्होंने साफ तौर से लिखा है:—

"I think the ardour for the consolidation of territory, concentration of authority, and uniformity of administration, which was lately so powerful, must have been a good deal damped by recent events. Where should we have been now if Scindia, the Nizam, and the Sikh Chiefs had been annexed?"

Asiatic Journal Vol. XVIII. P. 334.

† लार्ड केनिंग ने अपने दत्तक-सम्बन्धी ठहराव में स्पष्ट लिखा है कि "अंगरेजी राज्य से ईमानदारी और विश्वास के साथ बर्ताव करनेवाले देशी राजाओं की रियासतें यदि कायम रखी जायगी तो उनके द्वारा अपना बचाव होना अधिक सम्भव है। इतनाही नहीं किन्तु जिस समय हिन्दुस्थान पर कोई शक्ति चढ़ाई करेगी तब इन रियासतों से बहुत सहायता मिलेगी। इस लिये इन देशी राजाओं और उनके कुटुम्बों से उदारता और सम्मान के साथ बर्ताव करना चाहिए। और उन्हें इस बात की शंका भी न आने देना चाहिए कि मौका पाकर अंगरेजी सर्कार उनकी रियासतें छीन लेगी—उनको यह समझा देना चाहिए कि उनकी स्वतंत्रता सदैव कायम रहेगी"। लार्ड केनिंग कहते हैं:—

"The safety of our rule is increased, not diminished, by the maintenance of native Cheifs well-affected towards us. Should

सब को यह जानकर बड़ा हर्ष हुआ कि अब अपने प्राचीन घराने कायम रहेंगे। सेंधिया सर्कार के दर्बार में जब खबर पहुँची कि दत्तक लेने का हुक्म होगया तब वहां प्रत्यक्ष पुत्रजन्म कासा आनन्द मनाया गया। रीवा के महाराजा को जब दत्तक लेने की आज्ञा दी गई तब उन्होंने स्वयं लार्ड केनिंग के सामने कहा कि "हमारा क्षत्रिय कुल आज ११०० वर्षों से सर्वप्रसिद्ध हो रहा है। उसे नष्ट करने के लिये इस बीच में जो दुर्दैव का वायु बह रहा था वह आपकी अभय-वाणी से अब बिलकुल नष्ट हो गया। इसके लिये मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है।"

सन १८५७ के बलवे में अनेक देशी और विदेशी वीरों का जो पराक्रम देख पड़ा वह भी एक महत्व की बात है। इस प्रकार के वीररत्न जिस देश में पैदा हों उस देश को सचमुचही धन्य समझना चाहिए। सर ह्यू रोज, जॉन लारेन्स, नेपियर इत्यादि जिन वीरों ने हिन्दुस्थान में अपनी शूरता दिखाई है उनके विषय में इंगलैंड देश को बड़ा अभिमान है और वहां के लोग उन वीरों का यश गाने में सदैव तत्पर रहते हैं; इससे यह बात अच्छी तरह मालूम हो जाती है कि उन लोगों में स्वदेश-प्रीति कैसी जागृत है। हमारे देश के जिन वीर-रत्नों का बड़े बड़े प्रतिष्ठित और गुणवान अंग-रेजों ने अभिनन्दन किया है उनकी चरित-कथाएँ यदि हम लोग, अपने विशिष्ट गुणों की रुचि से, न मालूम कर लें तो, यह, स्वदेश के इतिहास के विषय में, अपनी बेफिक्री जाहिर करना है! सन १८५७ के बलवे में हिन्दु-स्थान की जिस स्त्रीरत्न ने, अपनी अलौकिक प्रभा से, सारे संसार को थक्क कर दिया है उसके शुद्ध गुणों के लिए, अपना अभिमान दिखा कर, उसे

---

the day come when India shall be threatened by an external enemy, or when the interest of England elsewhere may require that her Eastern Empire shall incur more than ordinary risk, one of our best main stays will be found in these Native States. But to make them so we must treat their Chiefs and influential families with consideration and generosity, teaching them that in spite of all suspicion to the contrary, their independance is safe, that we are not waiting for plausible opportunities to convert their country into British territory."

Adoption Minute, 30th April 1860.

इतिहास के अग्रस्थान में भूषित करना हमारा परम कर्तव्य है। तेजस्वी हीरा यदि किसी बुरी जगह में भी पड़ा हो तो रत्नपरीक्षक उसकी योग्यता कभी कम नहीं ठहरा सकता। झाँसी राज्य की अतुल पराक्रमी महारानी लक्ष्मीबाई यद्यपि, किसी कारण से, बलवाइयों के पक्ष में थीं तो भी इसमें कोई शंका नहीं कि, उनके--तेजस्विता, स्वाभिमान, शूरता और बुद्धि-चतुरता आदि--गुण प्रशंसनीय थे। सर ह्यू रोज के समान रणशूर योद्धा कि जिसकी शूरता का अर्ल आफ डर्बी, ड्यूक आफ केम्ब्रिज और लार्ड पामर्स्टन ने यश गाया, जिसके अतुल पराक्रम का वर्णन करते करते अनेक अंगरेज पत्र-सम्पादक स्तुति सरिता में डूब गये, जिसकी चतुरता और बहादुरी के बदले में "बैरन स्ट्रैदनेर्न आफ स्ट्रैदनेर्न ऐंड झांसी" अर्थात् स्ट्रैदनेर्न और झांसी के सर्दार का खिताब मिला और फील्ड मॉर्शल की पदवी मिली--उसी रण-धुरन्धर योद्धा के साथ, एक पर्दानशीन स्त्री ने, कितनेही दिनों तक, बराबर टक्कर लगाई और अपने अपूर्व तेज से चकित कर के उसकी ओर से धन्यवाद पाया--यह कोई ऐसी वैसी बात नहीं है। इससे सर ह्यू रोज का बड़प्पन और गुण-ग्राहकता भी अच्छी तरह मालूम होती है। ऐसे विजयी पुरुष ने जिस स्त्रीरत्न का अभिनन्दन किया, उसका प्रगट होना सन १८५७ के बलवे के सोचनीय इतिहास में एक स्मरणीय कौतुक है और इसमें कुछ भी शंका नहीं कि यह कौतुक इतिहास-प्रिय लोगों के लिये सदैव आनन्द का कारण होगा।

महारानी लक्ष्मीबाई ने, जिस पक्ष का स्वीकार किया था उसे छोड़ कर, यदि वे अंगरेजी सरकार की ओर से लड़तीं तो अंगरेजी राष्ट्र की ओर से उनका बहुत गौरव हुआ होता और उनके यश का पारावार न रहता। परन्तु ऐसा मौका नहीं आया; इसके लिये कोई क्या करे? परमेश्वर जैसी बुद्धि देता है उसी प्रकार सब बातें होती हैं। परमेश्वर की कृपा से जिसका उद्देश सिद्ध हो जाता है वही चतुर कहलाता है और उसकेही काम की सब तारीफ करते हैं। रानी साहब कई चमत्कारिक कारणों से---खास कर स्वराज्य कायम रखने की लालसा से---बलवाइयों में शामिल हुई, इस

लिये उनके विरुद्ध प्रलाप करने के लिये यदि कोई कोई अंगरेज इतिहासकार तैयार हुये तो इसमें कोई अचरज की बात नहीं; पर वैसा न करके जब अनेक अंगरेज ग्रन्थकार रानी साहब के गुणों का अभिनंदन करने के लिये तैयार होते हैं तब उन ग्रन्थकारों की इस उदारता के लिये धन्यवाद देकर, ऐसी सद्गुणी महारानी की, अपने देश के मानव-रत्नों में, सब से पहले गणना करना चाहिये।

रानी साहब के अनुपम गुणों के विषय में, बहुत से अंगरेज लोगों ने, आनन्द में आकर जो कुछ कहा है उस पर ध्यान देने से मालूम होता है कि मानों 'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः,' इस भवभूति कवि की उक्ति के अनुसार रानी साहब के गुणगणों को अपने हृदय-मन्दिर में श्रेष्ठ स्थान देकर स्तुतिसुगंधमय वाक्पुष्पों से उनकी पूजा की है। उनकी यह उदार कृति अवलोकन करके सब प्रत्येक देशाभिमानी सज्जन आनन्दित होंगे। सर ह्यू रोज़ के समान योद्धा ने, रहीम कवि के कहे हुए:—

'रहिमन सांचे शूर को बैरिहु करत बखान'

इस पद्य के अनुसार, सम्पूर्ण संसार में प्रगट कर दिया कि "रानी साहब की अति उच्च कुलीनता के कारण, आश्रित जनों और सैनिकों के साथ उनकी अपार उदारता के, कारण और बिकट प्रसंग में तनिक भी न डगमगानेवाली उनकी अद्वितीय धीरता के कारण उनका विशेष गौरव हुआ और उनके पक्ष को भयंकर स्वरूप प्राप्त हुआ*"! रानी साहब की मृत्यु का हाल सुन कर उसी वीर पुरुष ने शोक के साथ फिर कहा कि "ग्वालियर की लड़ाई का अतिशय महत्व का परिणाम झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई की मृत्यु है। वे जाति की अबला थीं तो भी प्रतिपक्ष की ओर, वे अति शूर और अति उत्तम सेनाग्रणी थीं"†! डा० लो ने ग्वालियर की जीत का हाल लिखते

* The high descent of the Ranee, her unbounded liberality to her troops and retainers, and her fortitude, which no reverses could shake, rendered her an influential and dangerous adversary. *Despatch. April 1858.*

† The most important result was the death of the Ranee of Jhansi, who although a lady, was the *bravest and best military leader* of the rebels.

हुए कहा है कि "हमारी सर्वव्यापक शत्रुओं की लड़ाई में जो सब से महत्व की बात हुई वह यह कि जी पर खेलनेवाले योद्धों से और उनकी वीर सेना से ग्वालियर जीता जा सका। इस लड़ाई में हमारे शत्रुओं का अतिशय दृढ़ निश्चयी, ग़ानीदार और प्रबल अगुआ—झांसी की रानी—पतन हो गई * " मार्टिन नामक इतिहासकार ने राजपूत वीरों से तुलना करते हुए रानी साहब की तेजस्विता के विषय में कहा है कि "लक्ष्मीबाई तरुणाई के जोश में और बहुत सुन्दर थीं; उनका मन उत्साहपूर्ण और शरीर सशक्त था; और सुप्रसिद्ध राजपूत वीर महाराना अमरसिंह (महाराना प्रतापसिंह का पुत्र और जहांगीर का प्रतिपक्षी) की तरह उनका प्रण था कि:—

"मनस्वी म्रियते कामं कार्पण्यं न तु गच्छति"

अर्थात् प्राण चाहे भलेही चले जायँ पर मानहानि न हो "†

सर एडविन आर्नोल्ड ने, अचरज और आनन्दपूर्वक, रानी साहब के पराक्रम का वर्णन करते हुए कहा है कि "जिस स्त्री के विषय में यह मालूम हुआ था कि वह राजकाज न चला सकैगी—और इसी कारण उसका राज भी बृटिश राज में मिलाया गया—वही स्त्री प्रचंड सेना का आधिपत्य स्वीकार करने के लिए पूर्ण समर्थ हुई! यह बात अब हमको मालूम हुई!" इतनाही नहीं किन्तु उसने रानी साहब की शूरता की प्रशंसा करके उनकी उपमा इँगलैंड की बोडिशिया नामक रणशूर रानी से

---

* The chefdoeuvre of the campaigns in India against our ubiquitous foes was the wresting of Gwalior from the hands of these desperate leaders and their well trained army in which victory their *most determined, spirited and influential head*—the Ranee of Jhansi—was slain. *Central India, P. 301*

† In the prime of life, exceedingly beautiful, vigorous in mind and body, Lakshmi Bai had all the pride of the famous Rajput prince the Rana Umra (the opponent of the Emperor Jahangeer) who,

"rather than be less cared not to be at all."

Indian Empire, P. 303

दी है। रानी बोडिशिया प्राचीन काल में रोमन लोगों से लड़ी थी*। डब्ल्यू. सी. टॉरेन्स नामक पार्लिमेण्ट के एक सभासद ने रानी साहब का वर्णन करते हुए फ्रान्स देश की जान आफ आर्क नामक स्त्रीरत्न से उनकी उपमा दी है। यह शूर स्त्री १५ वें शतक के बीच में हुई और बहुत प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थकार ने, बड़े अचरज के साथ, कहा है कि "तुमल और भयंकर युद्ध में भी, कई घंटों तक घनघोर युद्ध-परिश्रम करने पर भी, रानी साहब किसी प्रकार भी, रण से पीछे न हटतीं थीं †!" जस्टिन मेकार्थी ने अपनी सत्यप्रिय मधुरवाणी से, प्रतापशाली वीर-मण्डल में रानी साहब की गणना की है और

---

* We found that the woman from whom we had taken, as incapable of Government, the regency of a state, could at least command an army. Her name was the centre of the revolt in the North-west. She was the swarthy Boadicea of the Hindu and Mussalman levies; by her adroit intrigues Gwalior was nearly lost, and Central India with it. For weeks and months, after Delhi fell, her wonderful power of generalship kept the British columns under Sir Hugh Rose at the strain of effort and endurance, till at last she led her troops in open battle against us at Kalpee. Defeated there, she made another masterly effort against us at Gwalior, and it was not the fault of this able and passionate woman that her army broke that day, and fled in utter confusion. Armed and dressed as a cavalry officer, she led her ranks to repeated and fierce attacks, and when the camel corps, pushed at by Sir Hugh in person, broke her last line, she was among those who stood when hope was gone.

Dalhousie's Administration of British India.

Vol. II, P. 152.

† At the first note of insurrection in 1857, she took to horse, and for months in male attire headed bands, squadrons, and at length formidable corps of the Mahrattas, until she became in her way another Joan of Arc to her frenzied and fierce followers. No insurgent leader gave more trouble to the columns of Sir Hugh Rose; but not even in desperate and deadly fight, lasting for many hours, could she be persuaded to quit the field.

Empirein Asia. P. 376.

उनका अभिनन्दन करते हुए कहा है*कि "सर ह्यू रोज ने, उदार और विजयी योद्धा की तरह, बड़े आनन्द से सन्मानपूर्वक, रानी साहब को जो स्तुति पुष्पों की मनोहर माला समर्पण की है वह 'गुणी गुणं वेत्ति' के न्याय से बिलकुल ठीक है। इस माला में उन्होंने ये सुगन्धित पुष्प गूंथे हैं:—

"शत्रु-दल की ओर का सब से उत्तम मनुष्य यदि कोई है तो वे झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई हैं।"

इस प्रकार जिनके विमल गुणों की सुन्दर सुगन्ध से पश्चिमी लोगों के अन्तःकरण सन्तुष्ट होकर आनन्द से उल्लसित होरहे हैं उन अतुल पराक्रमी वीर्यशालिनी महारानी लक्ष्मीबाई के समान दिव्य स्त्रीरत्न यदि हमारे आर्यावर्त्त को सुशोभित करें और उनके अति उत्तम गुणों के प्रकाश से प्रत्येक राजनिष्ठ और स्वदेशाभिमानी पुरुष के अन्तःकरण में, उनके विषय में, यदि अभिमान और पूज्य बुद्धि उत्पन्न हो तो बड़े सौभाग्य की बात है। ऐसी

---

* One of those who fought to the last on the rebel side was the Rance or Princess of Jhansi whose territory as we have already seen, had been one of our annexations. She had plunged all her energies into the rebellion, regarding it clearly as a rebellion and not as a mere mutiny. She took the field with Nanasahib and Tantia Topee. For months after the fall of Delhi she contrived to baffle Sir Hugh Rose and the English. She led squadrons in the field. She fought with her own hands. She was engaged against us in the battle for the possession of Gwalior. In the uniform of the cavalry officer she led charge after charge and was killed among those who resisted to the last. Her body was found upon the field scarred with wounds enough in the front to have done credit to any hero. Sir Hugh Rose paid her the well-deserved tribute which a generous conqueror is always glad to be able to offer. He said in his general orders, that *the best man upon the side of the enemy was the woman found dead, the Ranee of Jhansi.*

History of our own times by Justin McCarthy M.P.111

अद्वितीय स्त्रीरत्नों की गुणमहिमा का अधिक वर्णन करने के लिए कौन समर्थ है ?*

---

* हमारे देश के भी कई सज्जनों ने रानी साहब के विषय में बहुत अच्छा लिखा है। उदाहरण के लिए यहां पर हम दो अवतरण देते हैं:—

"The extraordinary actions and heroism of this great lady shed an imperishable lustre on the ever memorable period of 1857. Ranee Lakshmi Bai, the flower of maiden chivalry, was a lady of 26 or 30 years of age, exceedingly beautiful and endowed with high spirit, enthusiastic courage and lofty patriotic fervour. She was remarkable also for her immaculate character, strength of mind and physical activity. A few years before the out-break of the rebellion of 1857, this charming beauty was seen on the musnad of Jhansi, governing the country like an accomplished ruler for the infant adopted son of her deceased lord Gangadhar Rao. The influence which this great lady had over her subjects was immense. On all hands she was regarded as a generous and able ruler."

The National Guardian, December 14, 1891.

अजमेर के 'राजस्थान समाचार' पत्र के सम्पादक ने महारानी लक्ष्मीबाई का संक्षिप्त जीवनचरित्र अपने पत्र में प्रकाशित किया था। उसमें उन्होंने लिखा है:—

"प्रिय पाठक ! दुःख दरिद्रता से पूर्ण हताश भारत की सोचनीय अवस्था में एकबार इस अपूर्व विषय का चिन्तन करो; कल्पना के सम्मोहन नेत्रों से एक बार भयंकरी महाशक्ति की ओर देखो, हृदय में अश्रुतपूर्व, अनाख्यातितपूर्व एक कैसे अनिर्वचनीय रस का संचार होगा—लक्ष्मीबाई वीर पुरुष के वेश में, घोड़े पर सवार होकर, अपनी मराठी सेना को चलाने लगी। ब्रिटिश सेना के साथ युद्ध होने लगा। लक्ष्मीबाई ने इस संग्राम में किसी प्रकार की कातरता नहीं दिखाई। उसने कई मास तक, असीम साहस से, अकुतोभय से अँगरेजों के साथ युद्ध किया। सुदक्ष ब्रिटिश सेनापति कई मास तक इस वीर्य्यवती वीरांगना के अद्भुत रणकौशल्य और असामान्य साहस से विस्मित होकर मुक्त कंठ से उसके यशोगान में तत्पर हुआ ! प्रथम युद्ध में लक्ष्मीबाई ने अपना असाधारण पराक्रम दिखलाया था। उसके संग्रामनैपुण्य से ब्रिटिश सेनापति सर ह्यू रोज का सैन्यदल भी विश्रृंखल और हतवीर्य हो गया था। इस वीरांगना के वीरत्व का यशोगान कौन न गायेगा ?

इस निर्जीव भारत में कौन सहृदय, इस ऐतिहासिक अनंतकीर्ति की कहानी को, अक्षय अक्षरों में लिख सकेगा ? भारत यथार्थही जगत् में अतुलनीय है। जिन्होंने महा संग्राम में नेपोलियन जैसे अलोक सामान्य वीर पुरुष को भी हतगौरव किया था; भारत की वीर रमणी उनके सैन्यदल को निर्मूल करने में कृतहस्त हुई है। प्रचंड निदाघ के भयंकर समय में भारत की महाशक्ति ब्रिटिश सेनापति की शक्ति नाश करने में उद्यत हुई

उस जगत्पालक प्रभु से हम विनीत प्रार्थना करते हैं कि वह सदैव भारतवर्ष को ऐसे पुरुष और स्त्रीरत्नों से सुशोभित करते रहे जिनसे देश का अनन्त उपकार हो और जिनके यश-प्रकाश से सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित हो। हम उस परमेश्वर को, इस लिये असंख्य धन्यवाद देते हैं कि जिसने महा कीर्तिमान स्वातंत्र्य-भक्त ब्रिटिश साम्राज्य हिन्दुस्थान पर कायम किया और अन्त में उसीसे हम इतनी प्रार्थना कर के इस चरित्र को समाप्त करते हैं कि इस साम्राज्य का फल हमारे लिए चिर कल्याण-कारी हो।

है। इस अपूर्व भाव की गम्भीरता जानना सब को साध्य नहीं है—बहुतसी सेना नाश हो गई तो भी लक्ष्मीबाई की तेजस्विता में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं हुई। उसने फिर से महा पराक्रम से कालपी में युद्ध किया; अन्त में कालपी अँगरेजों के हाथ में गई तो भी लक्ष्मीबाई का उत्सव तथा उद्यम नष्ट नहीं हुआ। जिन्होंने उसका राज्य लिया है, उसके पुत्र को सामान्य लोगों की दशा में डाला है; चाहे जैसे हो; उनकी क्षमता का नाश करना उसका एक मात्र उद्देश्य था। लक्ष्मीबाई ने इस उद्देश्यसिद्धि के लिए अपना जीवन उत्सर्ग किया। वीर रमणी की यह प्रतिज्ञा कभी स्खलित नहीं हुई थी—वीरत्व की इस उज्वल मूर्ति में किसी समय किसी प्रकार की कालिमा की छाया का स्पर्श नहीं हुआ था। ईस्वी सन् १८५८ की १७ जून को लक्ष्मीबाई ने ग्वालियर के आस पास अँगरेजी सेना के साथ लड़ाई की। फिर भैरवरव से "युद्धं देहि" कह कर ब्रिटिश सेनापति सर ह्यू रोज के सामने हुई। यह युद्ध उस वीर रमणी के जीवन का अन्तिम युद्ध था। इस युद्ध की अन्तिम घटिका में उस वीर रमणी का जीवनस्रोत स्वर्गीय अमृतप्रवाह में मिल गया। इस युद्ध में वीरांगना के असाधारण पराक्रम को देखकर सर ह्यू रोज ने कहा था कि "लक्ष्मी इ थी तो रमणी तथापि वह विपक्षियों में सब से अधिक साहसिनी और सब से अधिक रणपारदर्शिनी थी"। वीर पुरुष को अंगना का सच्चा गौरव मालूम था—इसीसे सम्मान के साथ प्रकृत पुरुष वरित्व की ऐसी गौरव-रक्षा करता है। इस भयंकर युद्ध में लक्ष्मीबाई और उसकी बहन अपनी सेना के आगे रहती थीं। दोनों कवच से आच्छादित, दोनों घोड़ों पर सवार और दोनों वीर पुरुष के वेश में सज्जित थीं। कई घंटे तक घोरतर युद्ध करने के बाद दोनों भगिनियें जब रणभूमि से फिर कर लौटी आती थीं तब विपक्षी तुरक सवार की गोली अथवा तलवार के आघात से दोनों के प्राण-वायु का अवसान हुआ। रणक्षेत्र में वीरांगनाद्वय का पतन ब्रिटिश सेनापति के नयनगोचर नहीं हुआ। अनामें रक्ताक्त देह पवित्र समरक्षेत्र में दृष्टि पड़ी। मृत देह की रक्षा के लिये लक्ष्मीबाई के विश्वासी देहरक्षक प्राणार्पण करने को चारों ओर खड़े थे। तत्काल चिता तैयार कीगई और देखते देखते परम सुन्दरी वीर रमणीयुगुल की देह भस्मपात हो गई। लक्ष्मीबाई के जीवन-नाटक का यह अन्तिम अंक कैसे गम्भीर भाव का उद्दीपक है! अपनी स्वाधीनता के लिए युवती वीर रमणी ऐसा असाधारण आत्मत्याग करे!

अहा! कैसे गम्भीर उद्देश्य का परिपोषक है! हा! इस गंभीर भाव से कौन न प्रमत्त होगा! इस गंभीर उपदेश के लिए कौन कान न देगा!"

समाप्त.